राजपूताने का इतिहास

दूसरी जिल्द

उदयपुर राज्य का इतिहास

चौथा अध्याय

महाराणा हंमीर से महाराणा सांगा
(संग्रामसिंह) तक

हंमीर

हंमीर (हंमीरसिंह) सीसोदे की एक छोटी जागीर का स्वामी होने पर भी बड़ा वीर, साहसी, निर्भीक और अपने कुल-गौरव का अभिमान रखनेवाला युवा पुरुष था। अपने वंश का परंपरागत राज्य पहले मुसलमानों और उनके पीछे सोनगरों के हाथ में चला गया, जो उसको बहुत ही खटकता था। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन के पिछले समय में उसके राज्य की दशा खराब होने लगी और उसके मरते ही तो उसकी और भी दुर्दशा हुई। दिल्ली की सल्तनत की यह दशा देखकर हंमीर के चित्त में अपना पैतृक राज्य पीछा लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, जिससे उसने मालदेव के जीतेजी उसके इलाक़े छीनकर अपनी जागीर में मिलाना आरंभ किया और उसके मरने पर उसके पुत्र जेसा के समय उसने गुहिलवंशियों की राजधानी चित्तोड़ को वि० सं० १३८३ (ई० स० १३२६) के आसपास[1] अपने हस्तगत कर लिया। तदनन्तर सारे मेवाड़ पर

(१) हंमीर के चित्तोड़ की गद्दी पर बैठने के निश्चित संवत् का अब तक पता नहीं लगा। भाटों की ख्यातों तथा कर्नल टॉड के 'राजस्थान' में उसकी गद्दीनशीनी का संवत्

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि क्षेत्रसिंह ने मालवे के स्वामी अमीशाह को चित्तोड़ के पास हराया था। तारीख़ फ़िरिश्ता में मालवे (मांडू) के सुलतानों का विस्तृत इतिहास दिया है, परन्तु उसमें वहां के सुलतानों की नामावली में अमीशाह का नाम नहीं मिलता, लेकिन शेख़ रिज़कुल्ला मुश्ताकी[1] की बनाई हुई 'वाक़ेआते मुश्ताक़ी' नामक तवारीख़[2] तथा 'तुज़ुके जहांगीरी[3]' से पाया

---

(१) रिज़कुल्ला मुश्ताकी का जन्म हि० स० ८९७ (वि० सं० १५४९=ई० स०१४९२) में और देहांत हि० स० ९८९ (वि० स० १६३८=ई० स० १५८१) में हुआ था, इसलिये वह पुस्तक उक्त दोनों संवतों के बीच की बनी हुई है।

(२) उक्त तवारीख़ में लिखा है—'एक दिन एक व्यापारी बड़े साथ (कारवाँ) सहित आया; अमीशाह ने अपने नियम के अनुसार उससे महसूल मांगा, जिसपर उसने कहा कि मैं सुलतान फ़ीरोज़ का, जिसने कर्नाल के क़िले को दृढ़ किया है, सौदागर हूं और वहीं अन्न ले जा रहा हूं। अमीशाह ने कहा कि तुम कोई भी हो, तुमको नियमानुसार महसूल देकर ही जाना होगा। व्यापारी बोला कि मैं सुलतान के पास जा रहा हूं, अगर तुम महसूल छोड़ दो, तो मैं तुमको सुलतान से मांडू का इलाक़ा तथा घोड़ा और खिलअत दिलाऊंगा। तुम इसको अच्छा समझते हो या महसूल को? अमीशाह ने उत्तर दिया कि यदि ऐसा हो, तो मैं सुलतान का सेवक होकर उसकी अच्छी सेवा करूंगा। इसपर उसने उसको जाने दिया। व्यापारी ने सुलतान के पास पहुंचने पर अर्ज़ की कि अमीशाह मांडू का एक ज़मींदार है और सब रास्ते उसके अधिकार में हैं, यदि आप उसको मांडू का इलाक़ा, जो बिलकुल ऊजड़ है, प्रदान कर फ़र्मान भेजें, तो वह वहां शांति स्थापित करेगा। सुलतान ने उसी के साथ घोड़ा और खिलअत भेजा, जिनको लेकर वह अमीशाह के पास पहुंचा और उन्हें नज़र करके अपनी भक्ति प्रकाशित की। तब अमीशाह ने रिसाला भरती कर मुल्क को आबाद किया। उसकी मृत्यु के पीछे उसका पुत्र हुशंग वहां का सुलतान हुआ, (इलियट्, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ४, पृ० ५५२)। मांडू का सुलतान हुशंग (अल्पखां) दिलावरखां का पुत्र था, इसलिये अमीशाह दिलावरखां का ही दूसरा नाम होना चाहिये।

(३) बादशाह जहांगीर ने अपनी तुज़ुक (दिनचर्या की पुस्तक) में धार (धारा नगरी) के प्रसंग में लिखा है कि अमीदशाह गोरी ने—जिसको दिलावरखां कहते थे और दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ (तुग़लक) के बेटे सुलतान मुहम्मद (तुग़लकशाह दूसरे) के समय जिसका मालवे पर पूरा अधिकार था—क़िले के बाहर मसजिद बनवाई थी, (अलग्ज़ैंडर रॉजर्स, 'तुज़ुके जहांगीरी' का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० ४०७)। फ़ारसी लिपि के दोष से 'तुज़ुके जहांगीरी' में 'नून' (ن) की जगह 'दाल' (د) लिखे जाने से अमीशाह का अमीदशाह बनगया है। शिलालेखों में अमीसाह, अमीसाहि पाठ मिलता है, जो अमीशाह का सूचक है, अतएव फ़ारसी का शुद्ध नाम अमीशाह होना चाहिये।

जाता है कि मांडू के पहले सुलतान दिलावरखां गोरी का मूल नाम अमीशाह था, अतएव उक्त महाराणा ने मालवे (मांडू) के अमीशाह अर्थात् दिलावरखां को—जो उसका समकालीन था—जीता था।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है—'खेतसी (क्षेत्रसिंह) ने बाकरोल[1] के पास दिल्ली के बादशाह हुमायूं को परास्त किया[2]' परन्तु इस महाराणा का दिल्ली के बादशाह हुमायूं से लड़ना संभव नहीं, क्योंकि हुमायूं की गद्दीनशीनी वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में और उक्त महाराणा की वि० सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में हुई थी। इस महाराणा के समय के दिल्ली के सुलतानों में हुमायूं नाम या उपनामवाला कोई सुलतान ही नहीं हुआ। अनुमान होता है कि भाटों ने, हुमायूं नाम प्रसिद्ध होने के कारण, अमीशाह को हुमायूंशाह लिख दिया हो और उसी पर भरोसा कर टॉड ने उसको दिल्ली का बादशाह मान लिया हो[3]। टॉड को हुमायूं और क्षेत्रसिंह दोनों की गद्दीनशीनी के संवत् भली भांति ज्ञात थे, परन्तु लिखते समय उनका मिलान न करने से ही यह भूल हुई हो।

ईडर के राजा रणमल्ल को क़ैद करना

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में लिखा है—'विजयी राजा क्षेत्रसिंह ने पराक्रमी शक (मुसलमान) पृथ्वीपति के गर्व को मिटानेवाले गुर्जर-मंडलेश्वर वीर रणमल्ल को कारागार (क़ैदखाने) में डाला[4]'। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति का कथन है कि 'राजाओं के समूह को हरानेवाला

(१) बाकरोल चित्तौड़गढ़ से अनुमान २० मील उत्तर के वर्तमान हमीरगढ़ का पुराना नाम है। महाराणा हंमीरसिंह दूसरे ने अपने नाम से उसका नाम हंमीरगढ़ रक्खा था।

(२) टॉ; रा, जि० १, पृ० ३२१।

(३) जैसे भाटों ने अमीशाह को हुमायूंशाह माना, वैसे ही 'वीरविनोद' में महाराणा रायमल के समय की एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) की प्रशस्ति में दिये हुए अमीशाह के पराजय के वृत्तांत पर से अमीशाह का निर्णय करने की कोशिश की गई; परन्तु उसमें सफलता न हुई, जिससे अमीशाह को अहमदशाह मान कर कई अहमदशाहों का समय उक्त महाराणा के समय से मिलाया, परंतु उनकी संगति ठीक न बैठी। तब यह लिखा गया कि 'हमने बहुत-सी फ़ारसी तवारीख़ों में ढूंढा लेकिन इस नाम का कोई बादशाह उस ज़माने में नहीं पाया गया, और प्रशस्तियों का लेख भी झूठा नहीं हो सकता, क्योंकि वे उसी ज़माने के क़रीब की लिखी हुई हैं' (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३०१-२)।

(४) सग्रामाजिरसीम्नि शौर्यविलसद्दोर्दंडहेलोल्लस–

पत्तन[1] का स्वामी दफ़रखान (ज़फरखां[2]) भी जिससे कुंठित हुआ था, वह शक-स्त्रियों को वैधव्य देनेवाला रणमल्ल भी इस(क्षेत्रसिंह)के कारागार में, जहां सौ राजा (यह अतिशयोक्ति है) थे, बिछौना भी न पा सका[3]'। एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से पाया जाता है कि 'खेतसिंह (क्षेत्रसिंह) ने ऐल (ईडर) के प्राकार (गढ़) को जीतकर राजा रणमल्ल को क़ैद किया, उसका सारा

चापप्रोद्गतबाणवृष्टिशमितारातिप्रतापानलः ।
धीरः श्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वांतक
स्फूर्जद्गूर्जरमंडलेश्वरमसौ कारागृहेवीवसत् ॥ २३ ॥
(चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

यही एकलिंगमाहात्म्य के राजवर्णन अध्याय में १८वां श्लोक है।

(१) पत्तन=पाटण, अनहिलवाड़ा। गुजरात के चावड़ा वंश के राजाओं की और उनके पीछे सोलंकियों की राजधानी पाटण थी। सोलंकी (बघेल) वंश के अंतिम राजा कर्ण (करणघेला) से अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात का राज्य छीना, तब से दिल्ली के सुलतान के गुजरात के सूबेदार पाटण में ही रहा करते थे, पीछे से गुजरात के सुलतान अहमदशाह (पहले) ने आसावल (आशापल्ली) के स्थान पर अहमदाबाद बसाया, तब से गुजरात की राजधानी अहमदाबाद हुई।

(२) ज़फ़रखां नाम के दो पुरुष गुजरात के सूबेदार हुए। उनमें से पहले को ई० स० १३६१ (वि० स० १४१८) में दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ तुगलक ने निज़ामुल् मुल्क के स्थान पर वहां नियत किया था, उसकी मृत्यु फ़िरिश्ता के कथनानुसार ई० स० १३७३ (वि० स० १४३०) में और 'मीराते अहमदी' के अनुसार ई० स० १३७१ (वि० स० १४२८) में हुई, उसके पीछे उसका पुत्र दरियाख़ां गुजरात का सूबेदार बना (बंब० गे० जि० १, भाग १, पृ० २३१)। ज़फ़रखां (दूसरा) मुसलमान बने हुए एक तवर राजपूत का वंशज था, उसको दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक (दूसरे) ने ई० स० १३९१ (वि० सं० १४४८) में गुजरात का सूबेदार बनाया और वह ईडर के राजा रणमल्ल से दो बार लड़ा था। दूसरी लड़ाई ई० स० १३९७ (वि० सं० १४५४) में हुई, जिसमें रण-मल्ल से संधि कर उसे लौटना पड़ा था (वही, पृ० २३३। ब्रिग्ज, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ७)। उसी समय के आसपास उसने दिल्ली से स्वतन्त्र होकर मुज़फ़्फ़र नाम धारण किया था, (डफ, क्रॉनॉलॉजी ऑफ इंडिया, पृ० २३४)। यदि रणमल्ल महाराणा के हाथ से क़ैद होने के पहले ज़फ़रखां से लड़ा हो, तो यही मानना पड़ेगा कि वह ज़फ़रखां (पहले) से भी लड़ा होगा।

(३) माद्यन्माद्यन्महेभप्रखरकरहतिक्षिप्तराजन्ययूथो
य पा(खा)नः पत्तनेशो दफर इति समासाद्य कुंठीव(ब)भूव ।

खज़ाना छीन लिया और उसका राज्य उसके पुत्र[1] को दिया[2]। इन कथनों का आशय यही है कि महाराणा क्षेत्रसिंह ने ईडर के राव रणमल्ल को क़ैद किया था। महाराणा हंमीर ने ईडर के राजा जैतकरण (जैत्रकर्ण) को जीता था, जिसका पुत्र रणमल्ल एक वीर राजपूत था। संभव है, उसने मेवाड़ की अधीनता में रहना पसंद न कर महाराणा क्षेत्रसिंह से विरोध किया हो, तो भी अन्य प्रमाणों से यह पाया जाता है कि वह (रणमल्ल) महाराणा के बंदीगृह से मुक्त होने के अनन्तर पुनः ईडर का स्वामी बन गया था, और गुजरात के सूबेदार ज़फ़रखां (दूसरे) से लड़ा[3] था।

सादल आदि को जीतना

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में लिखा है कि जिस क्षेत्रसिंह की सेना की रज से सूर्य भी मंद हो जाता था, उसके सामने सादल आदि राजा अपने २ नगर छोड़कर भयभीत हुए, तो क्या आश्चर्य है[4]? सादल कहां का राजा था, यह निश्चित रूप से नहीं जाना गया, परन्तु ख्यातों से

मोच मल्लो रणादिः शककुलवनितादत्तवैधव्यदीक्षः
कारागारे यदीये नृपतिशतयुते सत्तरं नापि लेभे ॥ १९६ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)

यही 'एकलिंगमाहात्म्य' के राजवर्णन अध्याय का श्लोक १०१ है।

(१) रणमल्ल का पुत्र और उत्तराधिकारी पुंज (पूजा) था।

(२) *प्राकारमेलमभिभूय विधूय वीरा–*
नादायकोशमखिलं खलु खेतसिंहः ।
काराधकारमनयद्रणमल्लभूप–
मेतन्महीमकृत तत्सुतसात्मसह्य ॥ ३० ॥

(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११९)।

(३) देखो ऊपर पृ० ५६६, टि० २।

(४) *यात्रोत्तुंगतुरंगचंचलखुराघातोत्थितैरेणुभिः*
सेहे यस्य न लुप्तरश्मिपटलव्याजात्प्रताप रविः ।
तच्चित्रं किमु सादलादिकनृपा यत्पाक्[ता]स्तत्प्रसु–
स्त्यक्त्वा[?] स्वानि पुराणि कस्तु बालिना सूक्ष्मो गुरुर्वा पुरः ॥ १९९ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति। यही 'एकलिंगमाहात्म्य' में १०४था श्लोक है।

टोड़े (जयपुर राज्य में) के राजा सातल (सादल) का उक्त महाराणा का समकालीन होना पाया जाता है, संभव है, उसी को जीता हो।

कर्नल टॉड और क्षेत्रसिंह

टॉड के राजस्थान मे महाराणा क्षेत्रसिंह के हुमायूं (अमीशाह) को जीतने के अतिरिक्त यह भी लिखा है—'उक्त महाराणा ने लिल्ला (लल्ला) पठान से अजमेर और जहाज़पुर लिये तथा मांडलगढ़, दसोर (मंदसोर) और सारे छप्पन को फिर मेवाड़ मे मिलाया। उसका देहांत अपने सामंत, बंबावदे के हाड़ा सरदार, के साथ के झगड़े में हुआ, जिसकी पुत्री से वह विवाह करनेवाला था'। यह कथन भी ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि लल्ला पठान उक्त महाराणा का समकालीन नहीं, किन्तु उसके पांचवें वंशधर महाराणा रायमल का समसामयिक था और उसको उक्त महाराणा के कुंवर पृथ्वीराज ने मारा था, जैसा कि आगे महाराणा रायमल के प्रसंग मे बतलाया जायगा। अजमेर और जहाज़पुर महाराणा कुंभकर्ण ने अपने राज्य में मिलाये थे, न कि क्षेत्रसिंह ने। मांडलगढ़ का क़िला महाराणा क्षेत्रसिंह ने तोड़ा, परन्तु हाड़ों के अधीन हो जाने के कारण उसे छीना नहीं, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। दसोर (मंदसोर) लेने का हमें कोई दूसरा प्रमाण नहीं मिला। इसी प्रकार बंबावदे के हाड़ा (लालसिंह) के हाथ से उक्त महाराणा के मारे जाने की बात भी निर्मूल है।

महाराणा की मृत्यु

महाराणा क्षेत्रसिंह का देहांत वि० सं० १४३६ (ई० स० १३८२) में हुआ। इतिहास के अंधकार में बूंदी के भाटों ने इस विषय में एक झूठी कथा गढ़ंत कर ली जिसका आशय 'वंशप्रकाश' से नीचे उद्धृत किया जाता है—

'बूंदी के राव हामा ने अपनी पोती की सगाई कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) से कर दी। फिर अपने पुत्र वरसिंह को राज्य तथा दूसरे पुत्र लालसिंह को क़स्बा गैणोली जागीर मे देकर वि० सं० १३६३ (ई० स० १३३६) में वह काशी चला गया। लालसिंह ने गैणोली में रहकर अपनी पुत्री का विवाह कुंवर खेतल से करना चाहा। चितोड़ से एक बड़ी बरात गैणोली मे पहुंची और व्याह के दूसरे दिन शराब पीते समय दोनों तरफ़वाले अपनी २ बहादुरी की बातें करने लगे। चारण बारू ने महाराणा (हंमीरसिंह) की बहुत प्रशंसा की,

तब लालसिंह ने कहा—'हमने सुना है कि पहले चित्तोड़गढ़ में चार हाथवाली एक पत्थर की पुतली निकली थी, जिसका एक हाथ सामने, एक आकाश (स्वर्ग) की ओर, एक ज़मीन की तरफ़ और एक गले से लगा हुआ था। जब महाराणा ने उसके भाव के संबंध में पूछा, तब तुमने निवेदन किया कि पुतली यह बतलाती है कि आप जैसा दानी और शूरवीर न तो पृथ्वी पर है, और न आकाश (स्वर्ग) में, जो हो, तो मेरा गला काटा जाय। यह बात केवल तुमने ही बनाई थी, क्या ऐसा दानी तथा शूरवीर और कोई नहीं है ? तुम जो मांगो, वही मैं तुम्हें देता हूं। यदि मेरा सिर भी मांगो, तो वह भी तैयार है। मेरे जमाई को छोड़कर और कोई लड़ने को आवे, तो बहादुरी बतलाई जाय। यदि तुम कुछ न मांगो तो तुम नालायक हो, और मैं न दूं तो मैं नालायक हूं। पुतली तो पत्थर की है, अतएव उसके बदले में तुम्हें अपना सिर कटाना चाहिये'। यह सुनकर बारू ने लज्जापूर्वक डेरे पर जाकर अपने नौकर से कहा कि मैं अपना सिर काटता हूं, तू उसे लालसिंह के पास पहुंचा देना। यह कहकर उसने अपना सिर काट डाला, जिसको उस नौकर ने लालसिंह के पास पहुंचा दिया। इससे लालसिंह को बड़ी चिन्ता हुई। जब यह समाचार चित्तोड़ में पहुंचा, तब महाराणा (हंमीर) ने अपने कुंवर (क्षेत्रसिंह) को कहलाया कि जो तू मेरा पुत्र है, तो लालसिंह को मारकर आना। यह सूचना पाकर लालसिंह और बरसिंह ने अपने जमाई को समझाया कि इस छोटी-सी बात पर आपको लड़ाई नहीं करनी चाहिये। कुंवर ने उनके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया और लड़ाई छेड़ दी, जो एक वर्ष तक चली। उसमें लालसिंह के हाथ से कुंवर क्षेत्रसिंह मारा गया, बरसिंह के ६ घाव लगे और लालसिंह की पुत्री अपने पति के साथ सती हुई। सेना लौटकर चित्तोड़ पहुंची, जिसके पूर्व ही महाराणा (हंमीरसिंह) का देहांत हो गया था। सेना के द्वारा कुंवर क्षेत्रसिंह के मारे जाने के समाचार पाकर उसका पुत्र (महाराणा हंमीर का पौत्र) लाखा (लक्षसिंह) चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा[1]।

वंशप्रकाश का यह सारा कथन कल्पित ही है। यदि कुंवर क्षेत्रसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मारा गया होता, तो उसका नाम मेवाड़ के राजाओं की

(१) वंशप्रकाश, पृ० ७३, ७४-७८।

नामावली में न रहता। हम ऊपर बतला चुके हैं कि उसने राजा होने पर कई लड़ाइयां लड़ी थीं, और अट्ठारह वर्ष राज्य किया था। क्षेत्रसिंह का विवाह लालसिंह की पुत्री से होना और उस समय तक महाराणा हंमीरसिंह का जीवित रहना भी सर्वथा कपोल-कल्पना है; क्योंकि महाराणा हंमीरसिंह का समकालीन बूंदी का राव देवीसिंह (देवसिंह) था, जिसके पांचवें वंशधर लालसिंह की पुत्री का विवाह उक्त महाराणा की जीवित दशा में हुआ हो, यह किसी प्रकार संभव नहीं। क्षेत्रसिंह का विवाह हाड़ा देवीसिंह के कुंवर हरराज की पुत्री बालकुंवर से होना ऊपर बतलाया जा चुका है। यह सारी कथा भाटों की गढ़न्त है और उसपर विश्वास कर पिछले इतिहास लेखकों ने[1] अपनी पुस्तकों में उसे स्थान दिया है, परन्तु जाँच की कसौटी पर यह निर्मूल सिद्ध होती है।

महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) के ७ पुत्र—लाखा, भाखर[2], माहप (महीपाल), भवणसी (भुवनसिंह), भूचर[3], सलखा[4] और सखरा[5]—हुए। इनके सिवा एक खातिन पासवान (अविवाहिता स्त्री) से चाचा और मेरा उत्पन्न हुए[6]।

महाराणा की सन्तति

इस महाराणा ने पनवाड़ गांव (अब जयपुर राज्य में) एकलिंगजी के मंदिर को भेट किया[7]। इसके समय का अब तक केवल एक ही शिलालेख मिला है,

(१) कर्नल टॉड ने क्षेत्रसिंह का अपने सामन्त बंबावदे के हाड़ा के हाथ से मारा जाना लिखा है (टॉ, रा, जि० १, पृ० ३२१)। वीरविनोद में कुछ हेर-फेर के साथ वही बात लिखी है, जो वंशप्रकाश से मिलती हुई है, परन्तु विश्वास योग्य नहीं है।

(२) भाखर के भाखरोत हुए।

(३) भूचर के भूचरोत हुए।

(४) सलखा के सलखणोत हुए।

(५) सखरा के सखरावत हुए।

(६) महाराणा के कुल पुत्रों के नाम नैणसी की ख्यात में उद्धृत किये गये हैं (पत्र ४, पृ० २)। ये ही नाम मेवाड़ की ख्यातों आदि में भी मिलते हैं। (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३०३)।

(७) *ग्रामं···· ···· पनवाडपुरं च खेतनरनाथः।*
सततसपर्यासंभृतिहेतोर्गिरिजागिरीशयोरदिशत् ॥ ३२ ॥

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति—भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११९।

जो वि० सं० १४२३ (ई० स० १३६६) आषाढ वदि १३ का है[1]।

लक्षसिंह (लाखा)

महाराणा क्षेत्रसिंह के पीछे उसका पुत्र लक्षसिंह (लाखा) वि० सं० १४३९ (ई० स० १३८२) में चित्तोड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है—'युवराज पद पाए हुए लक्ष ने रणक्षेत्र में जोगादुर्गाधिप[2] को परास्त कर उसके कन्यारूपी रत्न, हाथी और घोड़े छीन लिये[3]'। जोगादुर्गाधिप कहां का स्वामी था, इसका निश्चय नहीं हो सका। यह घटना लक्षसिंह के कुंवरपदे की होनी चाहिये।

जोगादुर्गाधिप को विजय करना

इस महाराणा के समय बदनोर के पहाड़ी प्रदेश के मेरों (मेरों) ने सिर उठाया, इसलिये महाराणा ने उनपर चढ़ाई की और उन्हें परास्त करके उनका वर्धन (बदनोर) नाम का पहाड़ी प्रदेश अपने अधीन किया। वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है कि उग्र तेजवाले इस राणा का रणघोष सुनते ही मेदों (मेरों) का धैर्य-ध्वंस हो गया, बहुतसे मारे गये और उनका वर्धन (बदनोर) नाम का पहाड़ी प्रदेश छीन लिया गया[4]।

मेरों पर चढ़ाई

(१) यह शिलालेख गोगूंदा गांव (उदयपुर राज्य में) में शीतला माता के मंदिर के द्वार पर छबने में खुदा है।

(२) प्रशस्ति का मूलपाठ 'जोगादुर्गाधिपं' है, जिसका अर्थ 'जोगा दुर्ग का स्वामी' या 'जोगा नामक गढपति' हो सकता है। संभवतः पहला अर्थ ठीक हो।

(३) *जोगादुर्गाधि[प यः] समरभुवि पराभूय लक्षः क्षितींद्रः*
कन्यारत्नान्यहार्षीत्सहगजतुरगैर्योवराज्य प्रपन्नः ।
प्रत्यूहव्यूह मोह·· ·· ········ ················ ॥ ३५ ॥
(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११९)।

(४) *मेदानाराद्भल्लसादुल्लसत्त—*
द्भेरीधीरध्वानविध्वस्तधैर्यान् ।
कारं कारं योग्रहोदुग्रतेजा
दग्धारातिर्वर्द्धनाख्यं गिरींद्रम् ॥३६॥ (चित्तोड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति)।

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में भी यही २१२वां श्लोक है।

इस महाराणा के राजत्व काल में मगरा ज़िले के जावर गांव में चांदी की खान निकल आई, जिसमें से चांदी और सीसा बहुत निकलने लगा, जिससे राज्य की आय में बड़ी वृद्धि हो गई। इसी खान के कारण जावर एक अच्छा कस्बा बन गया, जहां कई मन्दिर भी बने। कई सौ बरसों तक यह खान जारी रही, जिससे राज्य को बड़ा लाभ होता रहा, किन्तु अब यह खान बहुत समय से बन्द है। अब तक खंडित मूसों के टुकड़ों के पहाड़ियों जैसे ढेर वहां नज़र आते हैं, जिनसे वहां से निकलनेवाली चांदी का अनुमान किया जा सकता है। वहां कुछ घर ऐसे भी विद्यमान हैं, जिनकी दीवारें ईंटों की नहीं, किन्तु मूसों की बनी हुई हैं।

जावर की चांदी की खान

मुसलमानों के राज्य में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थस्थानों में जानेवाले यात्रियों पर उनकी तरफ़ से कर लगा दिया गया था, जिससे यात्रियों को कष्ट होता था। इस धर्म-परायण महाराणा ने त्रिस्थली (काशी, प्रयाग और गया) को यवनों (मुसलमानों) के कर से मुक्त कराया[1]। यह पुण्य कार्य लड़कर किया गया हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु इसके विपरीत एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से पाया जाता है कि बहुतसी सुवर्ण-मुद्राएं देकर गया को यवन कर से मुक्त किया[2]। शृंगीऋषि के वि० सं० १४८५ के शिलालेख में लिखा है कि इस महाराणा ने घोड़े और बहुत-सा सुवर्ण देकर गया का कर छुड़ाया था[3]।

गया आदि का कर छुड़ाना

(१) *कीनाशपाशान् सकलानपास्यत्*
यस्त्रिस्थलीमोचनतः शकेभ्यः।
तुलादिदानातिभरव्यतारी–
क्षदयाख्यभूपो निहतप्रतीपः॥ २०७॥
(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

(२) *गयातीर्थं व्यर्थीकृतकथ(था)पुराणस्मृतिपथ*
शकैः क्रूरालोकैः करकटकनिर्यत्रणमधात्।
मुमोचेदं मित्वा घनकनकटकैर्भवभुजां
सहप्रत्यावृत्या निगडमिह लक्षक्षितिपतिः॥ ३८॥
(भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० ११९)।

(३) *दत्वा···तुरगहेमनिचयास्तस्मै ग स्वामिने*

अलाउद्दीन खिलजी के हमले और खिज़रखां की हुकूमत के समय तोड़े हुए चित्तोड़ के महल, मन्दिर आदि को इस महाराणा ने पीछा बनवाया और कई तालाब, कुंड, किले आदि निर्माण कराये[1]। इसी महाराणा के राज्यसमय उदयपुर शहर के पास की पीछोला नाम की बड़ी झील एक धनाढ्य बनजारे ने बनवाई, ऐसी प्रसिद्धि है[2]।

सार्वजनिक कार्य

शिलालेखों से पाया जाता है कि इस महाराणा के पास धन संचय बहुत हो गया था, जिससे इसने बहुत कुछ दान और सुवर्णादि की तुलाएं कीं[3]। चीरवा

मुक्ता येन कृता गया करभराद्दर्पायनेकान्यत. ।

...................................॥ ११ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख—अप्रकाशित)।

नीतिप्रीतिभुजार्जितानि [बहु]शो रत्नानि यत्नादय

दायं दायममायया व्यतनुत ध्वस्तांतरायां गयां ।

तीर्थाना करमाकलय्य विधिनान्यत्रापि युक्ते धनं

प्रौढग्रावनिबद्धतीर्थसरसीजाग्रद्यशोंभोरुहः ॥ ३८ ॥

महाराणा मोकल का वि० सं० १४८५ का चित्तोड़ का शिलालेख (ए, इं; जि० २, पृ० ४१५ । भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ९८)।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२२; और वीरविनोद, भाग १, पृ० ३०८।

(२) देखो ऊपर पृ० ३११ ।

(३) *लक्ष सुवर्णानि ददौ द्विजेभ्यो*

लक्षस्तुलादानविधानदक्षः ।

एतत् प्रमाण विधिरित्यतोसा—

वजेन सायो(यु)ज्यसुखं सिषेवे ॥ ४० ॥

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११९)।

दाने हेम्नस्तुलाया मखभुवि बहुधा शुद्धिमापादि[ता]नां

भास्वज्जाबूनदानां कुतुकिजनभरैस्तर्किता राशयोस्य ।

सम्रामे लुंटितानां प्रतिनृपमहसां राशयस्ते किमेते

विंध्यं बंधुं समेतुं किमु समुपगताः साधु हेमाद्रिपादाः ॥ ४० ॥

महाराणा मोकल का वि० सं० १४८५ का चित्तोड़ का शिलालेख (ए, इं; जि० २, पृ० ४१५–१६ । भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९८)।

पुण्य कार्य

गांव एकलिंगजी को भेट किया[1] और सूर्यग्रहण में झोटिंग भट्ट[2] को पिप्पली (पीपली) गांव और धनेश्वर भट्ट को पंचदेवालय (पंच देवळा) गांव[3] दिया।

---

(१) *लक्षो वलक्षकीर्तिश्रीरुचनगरं व्यतीतरद्रुचिरं ।*
चिरवरिवस्यासंभृतिसंपत्तावेकलिंगस्य ॥ ३७ ॥

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति।

(२) झोटिंग भट्ट दशपुर (दशोरा) जाति का ब्राह्मण था। (*विप्रो दशपुरज्ञातिर-भूज्झोटिंगकेशवः*—घोसुंडी की बावड़ी की प्रशस्ति, श्लोक २५)। शिलालेखों में मिलनेवाले उसके वंश के परिचय से ज्ञात होता है कि भृगु के वंश (गोत्र) में वसन्तयाजी सोमनाथ नाम का विद्वान् उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र नरहरि आन्वीक्षिकी (न्याय) में निपुण होने के अतिरिक्त वेदविद्या में निपुण होने से 'इलातलविरंचि' (पृथ्वी पर का ब्रह्मा) कहलाया। उसका पुत्र कीर्तिमान केशव हुआ, जिसको झोटिंग भी कहते थे और जो अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुआ था। उसने महाराणा कुंभा के प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ की बड़ी प्रशस्ति की रचना करना प्रारंभ किया, परन्तु वह उसके हाथ से संपूर्ण न होने पाई, आधी बनी (कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति, श्लोक १८८–१९१—वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से)। अत्रि का पुत्र कवीश्वर महेश हुआ, जो दर्शनशास्त्र का ज्ञाता था। उसने अपने पिता की अधूरी छोड़ी हुई उक्त प्रशस्ति को वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ को पूर्ण किया। उसको महाराणा कुंभकर्ण ने दो हाथी, सोने की डंडीवाले दो चँवर और श्वेत छत्र दिया (वही, श्लोक १९२–९३)। फिर वह कुछ समय तक मालवे में रहा, जहां उसने वहां के सुलतान ग़यासशाह ख़िलजी के समय उसके एक मुसलमान सेनापति बहरों की बनवाई हुई खिड़ावदपुर (खड़ावदा गांव—इन्दौर राज्य के रामपुरा इलाके में) की बावड़ी की बड़ी प्रशस्ति की वि० सं० १५४१ कार्तिक सुदि २ गुरुवार को रचना की (बंब, ए. सो ज ; जि० २३, पृ० १२–१८)। वह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के दरबार का भी कवि रहा और वि० सं० १५४५ चैत्र सुदि १० गुरुवार के दिन उक्त महाराणा की एकलिंगजी के दक्षिण द्वारवाली प्रशस्ति, और वि० सं० १५६१ वैशाख सुदि ३ को उसी महाराणा की राणी शृंगारदेवी की बनवाई हुई घोसुंडी गांव (चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर में) की बावड़ी की प्रशस्ति बनाई। उसको महाराणा रायमल ने सूर्यग्रहण पर रत्नखेटक (रतनखेड़ा) गांव दिया (दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, श्लोक ६७), जिसको इस समय डूंमखेड़ा कहते हैं।

(३) *लक्षः क्षोणिपतिर्द्विजाय विदुषे झोटिंगनाम्ने ददौ*
ग्रामं पिप्पलिकामुदारविधिना राहूपरुद्धे रवौ ।
तद्वद्भट्टधनेश्वराय रुचिरं त पंचदेवालयं

ऐसा कहते हैं कि महाराणा लाखा की माता द्वारका की यात्रा को गई, उस समय काठियावाड़ में पहुंचते ही काबों ने, जो एक लुटेरी कौम है, मेवाड़ की सेना को घेर लिया और लड़ाई होने लगी। उस समय शार्दूलगढ़ का राव सिंह डोडिया अपने दो पुत्रों—कालू व धवल—सहित मेवाड़ी फ़ौज की रक्षार्थ आ पहुंचा। काबों के साथ की लड़ाई में वह (सिंह डोडिया) मारा गया। कालू और धवल ने मेवाड़ी सैन्य सहित काबों पर विजय पाई तथा राजमाता को अपने ठिकाने में ले जाकर घायलों का इलाज करवाया और यात्रा से लौटते समय वे दोनों भाई राजमाता को मेवाड़ की सीमा तक पहुंचा गये। राजमाता से यह वृत्तांत सुनने पर महाराणा ने इस कार्य को बड़ी सेवा समझकर धवल को पत्र लिख अपने यहां बुलाया और रतनगढ़, नन्दराय और मसूदा आदि ५ लाख की जागीर देकर अपना उमराव बनाया[1]। उक्त धवल के वंश में इस समय सरदारगढ़ (लावा) का ठिकाना है, जहां का राव उदयपुर राज्य के प्रथम श्रेणी के सरदारों में से है।

डोडियों का मेवाड़ में आना

कर्नल टॉड ने लिखा है—'महाराणा लाखा ने बदनोर की लड़ाई में मुहम्मदशाह लोदी को परास्त किया, वह लड़ता हुआ गया तक चला गया और मुसलमानों से गया को मुक्त करने में युद्ध करता हुआ मारा गया[2]'। टॉड का यह कथन संशय रहित नहीं है, क्योंकि प्रथम तो दिल्ली के लोदी सुलतानों में मुहम्मद नाम का कोई सुलतान ही नहीं हुआ, और दूसरी बात यह है कि उस समय तक लोदियों का राज्य भी दिल्ली में स्थापित नहीं हुआ था। संभव है, टॉड ने मुहम्मदशाह तुग़लक को, जो फ़ीरोज़शाह तुग़लक का बेटा था और ई० स० १३८९ (वि० सं० १४४६) में दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, भूल से मुहम्मद लोदी[3] लिख दिया हो, परंतु उस लड़ाई का उल्लेख मेवाड़ के किसी शिलालेख में नहीं मिलता। ऐसे ही मुसलमानों से लड़कर

कर्नल टॉड और महाराणा लाखा

अदाद्धर्म्ममतिर्जलेश्वरदिशि श्रीचित्रकूटाचलात् ॥ ३९ ॥

(दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स)।

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३०६।

(२) टॉ; रा, जि० १, पृ० ३२१–२२।

(३) वीरविनोद में बदनोर की लड़ाई में ग़यासुद्दीन तुग़लक का हारना लिखा है। (भा० १, पृ० ३०५–६), परंतु वह भी महाराणा लाखा (लक्षसिंह) का समकालीन नहीं था।

उक्त महाराणा का गया में मारा जाना भी माना नहीं जा सकता, क्योंकि ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि महाराणा लाखा ने बहुत-सा सुवर्ण देकर गया आदि तीर्थों को मुसलमानों के कर से मुक्त किया था।

टॉड राजस्थान में, बड़े व्यय से उक्त महाराणा का चित्तोड़ पर ब्रह्मा का मंदिर बनवाना भी लिखा है[1], जो भ्रम ही है। उक्त मन्दिर से अभिप्राय मोकलजी के मन्दिर से है, जिसे प्रारंभ में मालवे के परमार राजा भोज ने बनवाया था और जिसका जीर्णोद्धार वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) में महाराणा लाखा के पुत्र महाराणा मोकल ने करवाया था, जिससे उसको मोकलजी का मन्दिर (समिद्धेश्वर) कहते हैं (देखो ऊपर पृ० ३५४)। इस मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग और अनुमान ६-७ फुट की ऊंचाई पर पीछे की दीवार से सटी हुई शिव की तीन मुखवाली विशाल त्रिमूर्ति है। ब्रह्मा की मूर्तियों में बहुधा तीन ही मुख बतलाये जाते हैं (चौथा मुख पीछे की तरफ़ का अदृश्य रहता है)[2], इसी से भ्रम में पड़कर कर्नल टॉड ने उस शिव-मंदिर को ब्रह्मा का मंदिर मान लिया हो[3]। उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि इस महाराणा ने आंबेर के पास नागरचाल[4] के सांखले राजपूतों को परास्त किया था[5]।

---

(१) टॉ, रा; जि० १, पृ० ३२२।

(२) प्राचीन काल में राजपूताने में ब्रह्मा के मन्दिर भी बहुत थे, जिनमें से कई एक अब तक विद्यमान हैं और उनमें पूजन भी होता है। ब्रह्मा की जो मूर्ति दीवार से लगी हुई रहता है, उसमें तीन मुख ही बतलाये जाते हैं—एक सामने और एक एक दोनों पार्श्वों में (कुछ तिरछा); परंतु ब्रह्मा की जो मूर्ति परिक्रमावाली वेदी पर स्थापित की जाती है, उसके चार मुख (प्रत्येक दिशा में एक एक) होते हैं, जिससे उसकी परिक्रमा करने पर ही चारों मुखों के दर्शन होते हैं। ऐसी (चार मुखवाली) मूर्तियां थोड़ी ही देखने में आईं।

(३) वीरविनोद में भी महाराणा लाखा का लाखों रुपयों की लागत से ब्रह्मा का मंदिर बनाना लिखा है, जो टॉड से ही लिया हुआ प्रतीत होता है। (इस मंदिर के विशेष वृत्तान्त के लिये देखो ना० प्र० प; भा० ३, पृ० १-१८ में प्रकाशित 'परमार राजा भोज का उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक मेरा लेख)।

(४) जयपुर राज्य का एक अंश, जिसमें झूंझणूं, सिंघाना आदि विभागों का समावेश होता था।

(५) टॉ, रा, जि० १, पृ० ३२१। इस घटना का उल्लेख वीरविनोद में भी मिलता है, परंतु शिलालेखों में नहीं।

मंडोवर के राठोड़ राव चूंडा ने अपनी गोहिल वंश की राणी पर अधिक प्रेम होने के कारण उसके बेटे कान्हा को, जो उसके छोटे पुत्रों में से एक था, राज्य देना चाहा। इसपर अप्रसन्न होकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रणमल ५०० सवारों के साथ महाराणा लाखा की सेवा में आ रहा। महाराणा ने चालीस गांव देकर उसे अपना सरदार बनाया[1]।

राठोड़ रणमल का मेवाड़ में आना

इस महाराणा की वृद्धावस्था में राठोड़ रणमल की बहिन हंसबाई के संबंध के नारियल महाराणा के कुंवर चूंडा के लिये आये, उस समय महाराणा ने हँसी मे कहा कि जवानो के लिये नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढ़ों के लिये कौन भेजे? यह वचन सुनते ही पितृभक्त चूंडा के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि मेरे पिता की इच्छा नया विवाह करने की है। इसी से प्रेरित होकर उसने राव रणमल से कहलाया कि आप अपनी बहिन का विवाह महाराणा के साथ कर दीजिये। उसने इस बात को स्वीकार न कर कहा कि महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र होने से राज्य के अधिकारी आप हैं, अतएव आपके साथ शादी करने से यदि मेरी बहिन से पुत्र उत्पन्न हुआ, तो वह मेवाड़ का भावी स्वामी होगा, परंतु महाराणा के साथ विवाह करने से मेरे भानजे को चाकरी से निर्वाह करना पड़ेगा। इसपर चूंडा ने कहा कि आपकी बहिन के पुत्र हुआ, तो वह मेवाड़ का स्वामी होगा और मैं उसका सेवक बनकर रहूंगा। इसके उत्तर में रणमल ने कहा, मेवाड़ जैसे राज्य का अधिकार कौन छोड़ सकता है? यह तो कहने की बात है। इसपर चूंडा ने एकलिंगजी की शपथ खाकर कहा कि मैं इस बात का इकरार लिख देता हूं, आप निश्चिन्त रहिये। फिर उसने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आग्रह कर उनको नई शादी करने के लिये बाध्य किया और इस आशय का प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया कि यदि इस विवाह से पुत्र उत्पन्न हुआ, तो राज्य का स्वामी वही

चूंडा का राज्याधिकार छोड़ना

(१) मारवाड़ की ख्यात मे रणमल का महाराणा मोकल के समय मेवाड़ में आना और जागीर पाना लिखा है (जि० १, पृ० ३३), जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि रणमल के मेवाड़ में रहते समय उसकी बहिन हसबाई के साथ महाराणा लाखा का विवाह होना प्रसिद्ध है। महाराणा मोकल ने तो रणमल की सहायता कर उसको मंडोवर का राज्य दिलाया था।

होगा। महाराणा ने हंसबाई से विवाह किया, जिससे मोकल का जन्म हुआ[1]। महाराणा ने अन्तिम समय अपने बालक पुत्र मोकल की रक्षा का भार चूंडा पर छोड़ा, और उसकी अपूर्व पितृभक्ति की स्मृति के लिये यह नियम कर दिया कि अब से मेवाड़ के महाराणाओं की तरफ़ से जो पट्टे, परवाने आदि सनदें दी जावें या लिखी जावें, उनपर भाले का राज्यचिह्न चूंडा और उसके मुख्य वंशधर (सलूम्बर के रावत) करेंगे, जिसका पालन अब तक हो रहा है[2]।

---

(१) यह कथा भिन्न भिन्न इतिहासों में कुछ हेर-फेर के साथ लिखी मिलती है, परंतु चूंडा के राज्याधिकार छोड़ने पर महाराणा का विवाह रणमल की बहिन से होना तो सब में लिखा मिलता है।

(२) प्राचीन काल में हिंदुस्तान के भिन्न भिन्न राजाओं की सनदें संस्कृत में लिखी जाती थीं और उनके अंत में या ऊपर राजा के हस्ताक्षर होते थे, यही शैली मेवाड़ में भी रही। कदमाल गांव से मिला हुआ राजा विजयसिंह का वि० सं० ११६४ (?) का दानपत्र देखने में आया, जो संस्कृत में है। उसमें राजा के हस्ताक्षर तथा भाले का चिह्न, दोनों अंत में हैं। महाराणा हंमीर के संस्कृत दानपत्र की नकल वि० सं० १४०० से कुछ पीछे की एक मुक़द्दमे की मिसल में देखी गई, मूल ताम्रपत्र देखने को नहीं मिला। इन ताम्रपत्रों से निश्चित है कि महाराणा हंमीर तक तो राजकीय लिखावट संस्कृत थी और पीछे से किसी समय मेवाड़ी हुई। भाले का चिह्न पहले छोटा होता था (देखो ना० प्र० प, भा० १, पृ० ४५१ के पास कुंभा की सनद का फ़ोटो), जैसा कि उक्त महाराणा के आबू के शिलालेख और एक दानपत्र से पाया जाता है। पीछे से भाला बड़ा होने लगा और उसकी आकृति भी पलट गई। अनुमान होता है कि जब महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) ने 'हिन्दुसुरत्राण' विरुद धारण किया, तब से हस्ताक्षर की शैली मिट गई और मुसलमानों का अनुकरण किया जाकर सनदों के ऊपर भाले के साथ 'सही' होना आरंभ हुआ हो। उक्त महाराणा के आबू पर देलवाड़े के मंदिर के वि० सं० १५०६ के शिलालेख पर 'भाला' और 'सही' दोनों हैं परंतु नादिया गांव से मिले हुए वि० सं० १४६४ के एक ताम्रपत्र पर 'सही' नहीं है। पहले मेवाड़ के राजा सनदों पर हस्ताक्षर और भाला स्वयं करते थे। महाराणा मोकल के समय से भाले का चिह्न चूडा या चूंडा के मुख्य वंशधर (सलूंबर के रावत) करने लगे। पीछे से उनकी तरफ़ का यह चिह्न उनकी आज्ञा से 'सहीवाले' (राजकीय सनद लिखनेवाले) करने लगे। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के, जिसने वि० सं० १७५५ से १७६७ तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सरदारों ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूंडावतों की ओर से सनदों पर भाला होता है, तो हमारी तरफ से भी कोई निशान होना चाहिये। इसपर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ़ से भी कोई निशान बता दो, कि वह भी बना दिया जाय। इसपर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उस दिन से भाले के प्रारंभ का कुछ अंश छोड़कर भाले की छड़ से सटा एवं दाहिनी ओर झुका हुआ अंकुश का चिह्न भी होने लगा। महाराणा अपने हाथ से केवल 'सही' अब तक लिखते हैं।

बूंदी के इतिहास वंशप्रकाश में महाराणा हम्मीर की जीवित दशा में कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) का हाड़ा लालसिंह के हाथ से मारे जाने और हम्मीर के पीछे लाखा के मेवाड़ की गद्दी पर बैठने के कल्पित वृत्तान्त के साथ एक कथा यह भी लिखी है—"राणा लाखण (लाखा) के गद्दी पर बैठते ही लोगों ने यह अर्ज़ की कि यदि बूंदी का राव वरसिंह मदद पर न होता, तो गैणोली के जागीरदार (लालसिंह) से क्या हो सकता था ? इसपर महाराणा ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बूंदीवालों को न जीत लूंगा, तब तक भोजन न करूंगा। इसपर लोगों ने निवेदन किया कि यह बात कैसे हो सकती है कि बूंदी शीघ्र जीती जा सके। जब महाराणा ने उनका कथन स्वीकार न किया, तब उन्होंने कहा कि अभी तो मिट्टी की बूंदी बनाई जाय और उसमें थोड़ेसे आदमी रखकर उसे जीत लीजिये। इसके उत्तर में महाराणा ने कहा कि उसमें कोई हाड़ा राजपूत रखना चाहिये। उस समय हाड़ा कुंभकर्ण को, जो हालू (बम्बावदेवाले) का दूसरा पुत्र था और चन्द्रराज की दी हुई जागीर को छोड़कर महाराणा (हम्मीर) के पास आ रहा था, लोगो ने बनावटी बूंदी में रहने को तैयार किया और उसे यह समझा दिया कि जब महाराणा चढ़कर आवें, तब तुम शस्त्र छोड़ देना। इसके उत्तर में कुंभकर्ण ने कहा कि मैं हाड़ा हूं, अतएव बूंदी की रक्षा में त्रुटि न करूंगा। इस कथन को लोगों ने हँसी समझा और उसको थोड़ेसे लड़ाई के सामान के साथ उस बूंदी में रख दिया। उसके साथ ३०० राजपूत थे। जब महाराणा चढ़ आये, तब उसने अपने नौकरों से कहा कि राणाजी को छोड़कर जो कोई वार में आवे उसे मार डालो। अन्त में कुंभकर्ण अपने राजपूतों सहित लड़कर मारा गया। चन्द्रराज के पीछे उसका पुत्र धीरदेव बम्बावदे का स्वामी हुआ। राणा लाखण (लक्षसिंह, लाखा) ने धीरदेव को मारकर बम्बावदा छीन लिया और हालू के वंशजों के निर्वाह के लिये थोड़ी-सी भूमि छोड़ दी[1]"।

मिट्टी की बूंदी की कथा

वंशप्रकाश की यह सारी कथा वैसी ही कल्पित है, जैसा कि उसका यह कथन कि महाराणा हम्मीर के जीतेजी उसका ज्येष्ठ कुंवर क्षेत्रसिंह (खेता) मारा गया और उस(हंमीर)के पीछे उसका पौत्र लक्षसिंह (लाखा) चित्तोड़ के राज्य-सिंहा-

(१) वंशप्रकाश; पृ० ७८-८० ।

सन पर आरूढ़ हुआ। मैनाल के वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८६) के शिलालेख से ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि वहां का हाड़ा महादेव महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) का सरदार होने के कारण अमीशाह (दिलावरखां गोरी) के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा था; वही हाड़ा महादेव महाराणा लाखा के समय वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८६) तक तो जीवित और बम्बावदे का सामन्त था तथा उक्त संवत् के पीछे भी कुछ समय तक जीवित रहा हो। महाराणा लाखा की गद्दीनशीनी के समय अर्थात् वि० सं० १४३६ (ई० स० १३८२) में बम्बावदे का सामन्त चन्द्रराज नहीं किन्तु महादेव था, जो उक्त समय से सात वर्ष पीछे भी जीवित था, यह निश्चित है और महाराणा की सेना में रहकर अमीशाह के साथ लड़ने का अपने ही शिलालेख में वह गौरव के साथ उल्लेख करता है। हालू तो कभी बम्बावदे का स्वामी हुआ ही नहीं, न उसका पुत्र कुंभकर्ण हुआ और न वह महाराणा क्षेत्रसिंह की गद्दीनशीनी के समय विद्यमान था। ये सब नाम एवं मिट्टी की बूंदी की कथा भाटों ने इतिहास के अज्ञान में गढ़न्त की है। कूड़े-करकट के समान ऐसी कथा को इतिहास में स्थान देने का कारण केवल यही बतलाना है कि भाटों की पुस्तकें इतिहास के लिये कैसी निरुपयोगी हैं।

फ़िरिश्ता और मांडलगढ़

फ़िरिश्ता लिखता है—'हि० सन् ७६८ (ई० स० १३६६=वि० सं० १४५३) में मांडलगढ़ के राजपूत ऐसे बलवान हो गये कि उन्होंने अपने इलाके से मुसलमानों को निकाल दिया और ख़िराज देना भी बंद कर दिया। इसपर गुजरात के मुज़फ़्फ़रखां ने मांडलगढ़ पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया, परंतु क़िला हाथ न आया। ऐसे समय दुर्भाग्य से क़िले में बीमारी फैल गई, जिससे राय दुर्गा ने अपने दूतों को सन्धि के प्रस्ताव के लिये भेजा। क़िले पर के बच्चों और औरतों के रोने की आवाज़ सुनकर उसको दया आ गई, जिससे वह बहुत सा सोना और रत्न लेकर लौट गया'[1]।

उस समय मेवाड़ का स्वामी महाराणा लक्षसिंह था और मांडलगढ़ का

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ६। मुसलमान लेखकों की यह शैली है कि जहां मुसलमानों की हार होती है, वहां बहुधा मौन धारण कर लेते हैं अथवा लिख देते हैं कि बारिश हो जाने, बीमारी फैलने या नज़राना देने से सेना लौटा ली गई।

किला बम्बावदे के हाड़ों के अधीन था। यदि गुजरात का हाकिम मुज़फ़्फ़रख़ां (ज़फ़रख़ां) मांडलगढ़ पर चढ़ाई करता, तो मेवाड़ में प्रवेश कर चित्तोड़ के निकट होता हुआ मांडलगढ़ पहुंचता। ऐसी दशा में महाराणा लाखा (लक्ष-सिंह) से उसकी मुठभेड़ अवश्य होती, परंतु इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण स्थानों के नाम पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों में शुद्ध नहीं मिलते, जिससे उनमें स्थानों के नामों में बहुत कुछ गड़बड़ पाई जाती है। मण्डल (काठियावाड़ में), मांडलगढ़ (मेवाड़ में) और मांडू (माण्डवगढ़, मालवे में) के नामों में बहुत कुछ भ्रम हो जाता है। ख़ास गुजरात के फ़ारसी इतिहास मिराते सिकन्दरी की तमाम हस्तलिखित प्रतियों में मुज़फ़्फ़रख़ां की उपर्युक्त चढ़ाई का मांडू[1] पर होना लिखा है, न कि मांडलगढ़ पर, अतएव फ़िरिश्ता का कथन संशयरहित नहीं है।

महाराणा की मृत्यु

भाटों की ख्यातों, टॉड राजस्थान और वीरविनोद में महाराणा का देहान्त वि० सं० १४५४ (ई० स० १३९७) में होना लिखा है, परन्तु जावर के माताजी के पुजारी के पास एक ताम्रपत्र, वि० सं० १४६२ माघ सुदि ११ गुरुवार का, महाराणा लाखा के नाम का है[2]। आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में खड़े हुए विशाल लोहे के त्रिशूल पर एक लेख खुदा है, जिसका आशय यह है कि यह त्रिशूल वि० सं० १४६८ में धाणेरा गांव में राणा लाखा के समय बना, और नाणा के ठाकुर मांडण और कुंवर भादा ने इसे अचलेश्वर को चढ़ाया[3]। कोट सोलंकियान (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) से एक शिलालेख मिला है, जिसका आशय यह है–'सं० १४७५ आषाढ सुदि ३ सोमवार के दिन राणा श्री लाखा के

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ७७।

(२) इस ताम्रपत्र की एक नकल हमारे देखने में आई, जिसमें सं० १४६२ माह सुदी ११ गुरुवार लिखा हुआ था, परंतु उक्त संवत् में माघ सुदि ११ को गुरुवार नहीं, किन्तु शनि-वार था। ऐसी दशा में उक्त ताम्रपत्र की सचाई पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ऐसे ही मामूली आदमी की की हुई नकल की शुद्धता पर भी विश्वास नहीं होता। मूल ताम्रपत्र को देखकर उसकी जाँच करने का बहुत कुछ उद्योग किया गया, परंतु उसमें सफलता न हुई, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वह ताम्रपत्र सच्चा है या जाली।

(३) मूल लेख से यह आशय उद्धृत किया गया है।

विजय-राज्य समय आसलपुर दुर्ग में श्रीपार्श्वनाथ चैत्य का जीर्णोद्धार हुआ[१]"।

उपर्युक्त तीनों लेखों में से पहला (अर्थात् ताम्रलेख) तो खास मेवाड़ का ही है और दूसरे तथा तीसरे का संबंध गोड़वाड़ से है। उनसे राणा लाखा का वि० सं० १४७५ तक तो जीवित रहना मानना पड़ता है। महाराणा लाखा के पुत्र मोकल का पहला शिलालेख वि० सं० १४७८ (ई० स० १४२१) पौष सुदि ६ का मिला है, अतएव महाराणा लाखा का स्वर्गवास वि० सं० १४७६ और १४७८ के बीच किसी वर्ष हुआ होगा।

ख्यातों आदि में महाराणा लाखा के पुत्रों के ८ या ९ नाम लिखे मिलते हैं, जो ये हैं—चूंडा[२], राघवदेव,[३] अज्जा,[४] दूल्हा,[५] डूंगर,[६] गजसिंह,[७] लूंणा,[८] मोकल और बाघसिंह।

महाराणा लाखा के पुत्र

मोकल

महाराणा लाखा का स्वर्गवास होने पर राठोड़ रणमल की बहिन हंसबाई सती होने को तैयार हुई और चूंडा से पूछा कि तुमने मेरे कुंवर मोकल के लिये कौनसी जागीर देना निश्चय किया है। इसपर चूंडा ने उत्तर दिया कि माता, मोकल तो मेवाड़ का स्वामी है, उसके लिये जागीर की बात ही कौनसी

(१) मुनि जिनविजय, प्राचीन जैनलेखसंग्रह, भा० २, लेख सं० ३७०, पृ० २२१। यह संवत् मेवाड़ का राजकीय (श्रावणादि) संवत् है, जो चैत्रादि १४७६ होता है। उक्त चैत्रादि संवत् में आषाढ़ सुदि ३ को सोमवार था।

(२) चूंडा के वंशज चूंडावत कहलाये। मेवाड़ में चूंडावत सरदारों के ठिकाने ये हैं—सलूम्बर, देवगढ, बेगूं, आमेट, मेजा, भैंसरोड़, कुराबड़, आसींद, चावण्ड, भदेसर, बमोली लूंणदा, थाणा, बम्बोरा, भगवानपुरा, लसाणी और संग्रामगढ़ आदि।

(३) राघवदेव छल से मारा गया और पूर्वज (पितृ) हुआ, ऐसा माना जाता है।

(४) अज्जा के पुत्र सारङ्गदेव से सारङ्गदेवोत शाखा चली, इस शाखा के सरदारों के ठिकाने कानोड़ और बाठरड़ा हैं।

(५) दूल्हा के वंशज दूल्हावत कहलाए, जिनके ठिकाने भाणपुर, सैंमरड़ा आदि हैं।

(६) डूंगर के वंशज भाडावत कहलाये।

(७) गजसिंह के वंशज गजसिंहोत हुए।

(८) लूंणा के वंशज लूंणावत (माजपुर, कथारा, खेड़ा आदि ठिकानोंवाले) हैं।

है, मैं तो उसका नौकर हूं। इस समय आपका सती होना अनुचित है, क्योंकि महाराणा मोकल कम उम्र[1] हैं, अतएव आपको राजमाता बनकर राज्य का प्रबंध करना चाहिये। इस प्रकार चूंडा ने विशेष आग्रह करके राजमाता का सती होना रोक दिया। इसपर राजमाता ने चूंडा की पितृभक्ति और वचन की दृढ़ता देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और राज्य का कुल काम उसके सुपुर्द कर दिया। चूंडा ने मोकल को राज्यसिंहासन पर बिठाकर[2] सबसे पहले नज़राना किया।

धन्य है चूंडा की पितृभक्ति। रघुकुल में या तो रामचन्द्र ने पितृभक्ति के कारण ऐसा ज्वलन्त उदाहरण दिखलाया, या चूंडा ने। इसी से चूंडा के वंश का अब तक बड़ा गौरव चला आता है।

चूंडा वीर प्रकृति का पुरुष होने के अतिरिक्त न्यायी और प्रजावत्सल भी था। वह तन मन से अपने छोटे भाई की सेवा करने लगा और प्रजा उससे बहुत प्रसन्न रही। स्वार्थी लोगों को चूंडा का ऐसा राज्य-प्रबन्ध देखकर ईर्ष्या हुई, क्योंकि उसके आगे उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता था। राठोड़ रणमल भी चूंडा को अलग कर राजकार्य अपने हाथ में लेना चाहता था। इन स्वार्थी लोगों ने राजमाता के कान भरना शुरू किया और यहां तक कह दिया कि राज्य का सारा काम चूंडा के हाथ में है, जिससे वह मोकल को मारकर स्वयं महाराणा बनना चाहता है। ऐसी बात सुनकर राजमाता का मन विचलित हो गया और उसने पुत्र-वात्सल्य एवं स्त्री जाति की स्वाभाविक निर्बलता के कारण चूंडा को बुलाकर कहा, कि या तो तुम मेवाड़ छोड़ दो या तुम कहो जहां मैं अपने पुत्र को लेकर चली जाऊं। यह वचन सुनते ही सत्यव्रती चूंडा ने मेवाड़ का परित्याग करना निश्चय कर राजमाता से कहा कि आपकी आज्ञानुसार मैं तो मेवाड़ छोड़ता हूं। महाराणा और राज्य

चूंडा का मेवाड़-त्याग

(१) राज्याभिषेक के समय मोकल की अवस्था कितने वर्ष की थी, यह अनिश्चित है। ख्यातों में उसका पांच वर्ष का होना लिखा है, जो सम्भव नहीं। हमारे अनुमान से उस समय उसकी अवस्था कम से कम १२ वर्ष की होनी चाहिये।

(२) महाराणा लाखा के देहान्त और मोकल के राज्यभिषेक के संवत् का अब तक ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ। वि० सं० १४७६ (ई० स० १४१९) के आसपास मोकल का राज्याभिषेक होना अनुमान किया जा सकता है (देखो ऊपर पृष्ठ ५८२)।

की रक्षा आप अच्छी तरह करना। ऐसा न हो कि राज्य नष्ट हो जाय। फिर अपने छोटे भाई राघवदेव पर महाराणा की रक्षा का भार छोड़कर वह अपने भाई अज्जा आदि सहित मांडू के सुलतान के पास चला गया, जिसने बड़े सम्मान के साथ उनको अपने यहां रक्खा और कई परगने जागीर में दिये।

चूंडा के चले जाने पर रणमल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया और सैनिक विभाग में राठोड़ों को उच्च पद पर नियत करता रहा तथा उनको अच्छी अच्छी जागीरें देने लगा। महाराणा ने—अपने मामा का लिहाज़ होने से—उसके काम में किसी प्रकार हस्ताक्षेप न किया।

राव चूंडा के मरने पर उसका छोटा पुत्र काना मंडोवर का स्वामी हुआ; काना का देहान्त होने पर उसका भाई सत्ता मण्डोवर का राव हुआ। वह

रणमल को मंडोर का राज्य दिलाना

शराब में मस्त रहता था और उसका छोटा भाई रणधीर राज्य का काम करता था। कुछ समय बाद सत्ता के पुत्र नरवद और रणधीर में परस्पर अनबन हो गई। इसपर रणधीर रणमल के पास पहुंचा और उसको मंडोवर लेने के लिये उद्यत किया, रणमल ने महाराणा की सेना लेकर मंडोवर पर चढ़ाई कर दी। इस लड़ाई मे नरवद घायल हुआ और रणमल मंडोर का स्वामी हो गया। महाराणा मोकल ने सत्ता और नरवद, दोनों को अपने पास चित्तोड़ में बुला लिया और नरवद को एक लाख रुपये की कायलाणे की जागीर देकर अपना सरदार बनाया[1]।

दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुगलक ने ज़फ़रखां को फ़रहतुल्मुल्क की जगह गुजरात का सूबेदार बनाया। फिर दिल्ली की सल्तनत की कमज़ोरी देखकर हि०

फ़ीरोज़खां आदि को विजय करना और सांभर लेना

स० ७६८ (वि० सं० १४५३=ई० स० १३९६) में वह गुजरात का स्वतन्त्र सुलतान बन गया और अपना नाम मुज़फ्फ़रशाह रक्खा। उसका पुत्र तातारखां उसको गद्दी से उतारकर स्वयं सुलतान हो गया और अपने चाचा शम्सखां दन्दानी को अपना वज़ीर बनाया, परन्तु थोड़े ही समय बाद मुज़फ़्फ़रशाह के इशारे से उसने तातारखां को शराब में ज़हर देकर मार डाला। इस सेवा के बदले में मुजफ़्फ़रशाह ने शम्सखां

(१) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३१२-१३। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० ३२-३५।

को नागोर की जागीर दी। शम्सखां के पीछे उसका बेटा फ़ीरोज़खां नागोर का स्वामी हुआ। उसकी छेड़छाड़ देखकर महाराणा मोकल ने नागोर पर चढ़ाई कर दी। वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) के स्वयं राणा मोकल के चित्तोड़ के शिलालेख में लिखा है कि उक्त महाराणा ने उत्तर के मुसलमान नरपति पीरोज पर चढ़ाई कर लीलामात्र से युद्धक्षेत्र में उसके सारे सैन्य को नष्ट कर दिया[1]। इसी विजय का उल्लेख वि० सं० १४८५ के शृंगीऋषि के लेख[2] में और वि० सं० १५४५ की एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति[3] में भी मिलता है। फ़ारसी तवारीखों में फ़ीरोज़शाह के साथ की लड़ाई में महाराणा मोकल का हारना और ३००० आदमियों का मारा जाना लिखा है[4]। यह कथन प्रशस्तियों के समान समकालीन लेखकों का नहीं, किन्तु बहुत पिछले लेखकों का होने से विश्वास-योग्य नहीं है[5]।

वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है कि महाराणा ने सपादलक्ष[6] देश को बरबाद किया और जालंधरवालों[7] को कंपायमान किया।

(१) चित्तोड़ का शिलालेख, श्लोक ५१ (ए. इं., जि० २, पृ० ४१७)।

(२) *यस्यारो समभूत्पलायनपरः पेरोजखान. स्वयम्* ... । श्लोक १४।

(३) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२०, श्लोक ४४।

(४) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० १४८, टिप्पण ४।

(५) वीरविनोद में महाराणा की फ़ीरोज़खां के साथ दो लड़ाइयां होना माना है। पहली लड़ाई नागोर के पास जोताई के मैदान में होना, ३००० राजपूतों का खेत रहना और महाराणा का हारना फ़ारसी तवारीखों के अनुसार लिखा है। दूसरी लड़ाई जावर मुकाम पर होना और उसमें महाराणा की विजय होना बतलाया है (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३१४-१५), परन्तु वास्तव में महाराणा की फ़ीरोज़खां के साथ एक ही लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा की विजय हुई थी। अनुमान होता है कि कविराजा ने पहली लड़ाई का वर्णन फ़ारसी तवारीखों के आधार पर लिखा और दूसरी लड़ाई का शिलालेखों से, इसी से एक ही लड़ाई को दो भिन्न मानने का भ्रम हुआ हो।

(६) सांभर का इलाका पहले सपादलक्ष नाम से प्रसिद्ध था। सपादलक्ष के विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'राजपूताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम' शीर्षक मेरा लेख (ना. प्र. प; भा० ३, पृ० ११७-४०)।

(७) जालन्धर सामान्य रूप से त्रिगर्त (कांगड़ा, पंजाब में) प्रदेश का सूचक माना जाता है, परन्तु संभव है कि यहां प्रशस्तिकार पंडित ने जालन्धर शब्द का प्रयोग जालोर के लिये किया हो तो आश्चर्य नहीं। पंडित लोग गांवों और शहरों के लौकिक नामों को

शाकंभरी[1] (सांभर) को छीनकर दिल्ली को अपने स्वामी के संबंध में संशय-युक्त कर दिया, और पीरोज तथा मुहम्मद को परास्त किया[2]।

मुहम्मद कौन था, इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका। कर्नल टॉड ने उसको फ़ीरोज़ तुग़लक का पोता (मुहम्मदशाह का पुत्र महमूदशाह) मानकर अमीर तीमूर की चढ़ाई के समय उसका गुजरात की तरफ़ जाते हुए मेवाड़ में रायपुर के पास महाराणा मोकल से हारना माना है,[3] परंतु तीमूर ता० ८ रबि-उस्सानी हि० स० ८०१ (पौष सुदि ९ वि० सं० १४५५=ई० स० १३९८ ता० १८ दिसम्बर) को दिल्ली पहुंचा था. अतएव वह महाराणा मोकल का समकालीन नहीं हो सकता। शृङ्गीऋषि के वि० सं० १४८५ के शिलालेख में फ़ीरोज़शाह के भागने के कथन के साथ यह भी लिखा है कि पात्साह (सुलतान) अहमद भी रणखेत छोड़ कर भागा[4]। यह प्रशस्ति स्वयं महाराणा मोकल के समय की है, अतएव संभव है कि महाराणा गुजरात के सुलतान अहमदशाह (प्रथम) से भी जो उसका समकालीन था—लड़ा हो। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति तैयार करनेवाले पंडित ने भ्रम से अहमद को महम्मद लिख दिया हो।

वि० सं० १४४५ की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है—"बलवान् पक्ष

संस्कृत के साँचे में ढालते समय उनके रूपों को बहुत कुछ तोड़ मरोड़ डालते हैं।

(१) राजपूताने के चौहान राजाओं की पहली राजधानी नागोर थी और दूसरी शाकंभरी हुई, जिसको अब सांभर कहते हैं।

(२) *आलोड्याशु सपादलक्षमखिलं जालंधरान् कंपयन्*

ढिल्लीं शंकितनायकां व्यरचयन्नादाय शाकंभरीं।

पीरोजं समहंमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत्

कुंतव्रातनिपातदीर्णहृदयास्तस्यावधीद्दंतिनः ॥ २२१ ॥

कुंभलगढ़ का लेख (अप्रकाशित)।

कर्नल टॉड ने भी इस महाराणा के सांभर लेने का उल्लेख किया है (टॉ, रा, जि० १, पृ० ३३१)।

(३) वही, पृ० ३३१।

(४) *यस्याग्रे समभूत्पलायनपरः पेरोजखानः स्वयं*

पात्साहाह्मदुस्महोपि समरे संत्यज्य को······॥ १४ ॥

शृंगीऋषि का लेख।

वाले, शत्रु की लाखों सेना को नष्ट करनेवाले, बड़े संग्रामों में विजय पानेवाले और दूतों के द्वारा दूर दूर की खबरें जाननेवाले मोकल ने जहाजपुर के युद्ध में विजय प्राप्त की[1]"। यह लड़ाई किसके साथ हुई, यह उक्त लेख से नहीं पाया जाता। उस समय जहाजपुर का गढ़ बम्बावदे के हाड़ों के हाथ में था और ख्यातों में लिखा है कि महाराणा मोकल ने हाड़ों से बम्बावदा छीन लिया, अतएव शायद यह लड़ाई बम्बावदे के हाड़ों के साथ हुई हो[2]।

जहाजपुर की विजय

इस महाराणा ने चित्तोड़ पर जलाशय सहित द्वारिकानाथ (विष्णु) का मंदिर बनवाया[3] और समिद्धेश्वर (समाधीश्वर त्रिभुवननारायण) के मंदिर का जीर्णोद्धार[4] कराकर उसके खर्च के लिये धनपुर गांव भेट किया[5]। एकलिंगजी के मंदिर के चौतरफ़ का तीन द्वारवाला कोट बनवाया[6], बाघेला वंश की अपनी राणी गौरांबिका की स्वर्गप्राप्ति के निमित्त शृंगी ऋषि (ऋष्यशृङ्ग) के स्थान में वापी (कुण्ड)

महाराणा के पुण्य-कार्य

(१) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, श्लोक ४३ (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२०)।

(२) वीरविनोद में लिखा है—'इन महाराणा ने जहाजपुर मुकाम पर बादशाह फ़ीरोज़-शाह के साथ लड़ाई की, जिसमें बादशाह हारकर उत्तर की तरफ़ भागा', परंतु फ़ीरोज़शाह नाम का कोई बादशाह (सुलतान) उक्त महाराणा का समकालीन नहीं था। एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक ४४वाले पीरोज का संबंध नागोर के फ़ीरोज़ख़ां से ही है।

(३) चित्तोड़ का वि० सं० १५८५ का शिलालेख, श्लोक ६१–६३ (ए. इं, जि० २, पृ० ४१८–१६)।

(४) चित्तोड़ की उपर्युक्त प्रशस्ति इसी मंदिर के संबंध में खुदवाई गई है (वही, जि० २, पृ० ४१०–२१)।

(५) वही; जि० २, श्लोक ७३।

(६) येन स्फाटिकसच्छिलामय इव ख्यातो महीमंडले
प्राकारो रचितः सुधाधवलितो देवैकलिंग——।
······सत्कपाटविलसद्द्वारत्रयालंकृतः
कैलासं तु विहाय शंभुरकरोयत्राधिवासे मतिं ॥ १६ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख)।

बनवाई[1] और अपने भाई बाघसिंह के नाम से बाघेला तालाब का निर्माण कराया[2]। विष्णु-मंदिर को सुवर्ण का गरुड़ और देवी के मंदिर को सर्वधातु का बना हुआ सिंह भेट किया[3]। इस महाराणा ने सोने और चांदी के २५ तुलादान किये[4],

---

(१) *वाघेलान्वयदीपिकाजितरसुप्रख्यातहस्ता ······*

···गा···भूमिपालतनया पुण्यायुधप्रेयसी। ॥ २२ ॥

गौराम्बिकाया निजवल्लभायाः

सल्लोकसम्प्राप्तिफलैकहेतोः।

एषा पुरस्ता ···विभाडमृनो–

र्व्वापी निबद्धा किल मोकलेन ॥ २४ ॥ (शृंगीऋषि का शिलालेख)।

भाटों की ख्यातों में महाराणा मोकल की राणियों के जो नाम दिये हैं, वे विश्वास-योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनमें बाघेली गौराम्बिका का नाम ही नहीं है। वे नाम प्रामाणिक न होने से ही हमने उन्हें यहां स्थान नहीं दिया।

(२) *अथ बागेलावर्णन ।*

यदकारि मोकलनृपः सरोवरं त्वसदिंदिरानिलयराजिराजितं ।

उपगम्य भालनयनस्तदाशयं जलकेलये श्रयति नापरं पयः ॥ ३६ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

(३) *पक्षिराजमपि चक्रपाणये*

हेमनिर्मितमसौ ददौ नृपः ।···॥ २२५ ॥

यः सुधांशुमुकुटप्रियागणे

वाहनं मृगपतिं मनोरमं ।

निर्मितं सकलधातुभक्तिभिः

पीठरक्षणविधावित व्यधात् ॥ २२४ ॥

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति।

(४) *यः पंचविंशतितुला. समदाद्द्विजेभ्यो*

हेम्नस्तथैव रजतस्य च फद्यकानां ।···॥ १५ ॥

(शृंगीऋषि का लेख)।

इस श्लोक में 'फद्यक' (पदिक) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो चांदी के एक छोटे सिक्के का नाम है और जिसका मूल्य दो आने के करीब होता हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि राजपूताने के कुछ अंशों में अब तक दो आने को 'फदिया' (फद्यक) कहते हैं।

जिनमें से एक सुवर्ण तुलादान पुष्कर[1] के आदिवराह[2] (वराह) के मंदिर में किया था। इसने बांसनवाड़ा (अजमेर ज़िले में) और रामा गांव (एकलिंगजी के निकट) एकलिंगजी के भोग के लिये भेट किये[3] और जो ब्राह्मण कृषक हो गये थे, उनके लिये सांग (छः अंगों सहित) वेद पढ़ाने की व्यवस्था की[4]।

हि० स० ८३६ (वि० सं० १४९०=ई० स० १४३३) में अहमदाबाद का सुलतान अहमदशाह (पहला) डूंगरपुर राज्य में होता हुआ जीलवाड़े की तरफ़ बढ़ा[5] और वहां के मंदिर तोड़ने लगा। यह खबर सुनते ही महाराणा ने उससे लड़ने के लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय महाराणा खेता की पासवान (उपपत्नी) के पुत्र चाचा व मेरा भी साथ थे। एक दिन एक हाड़ा सरदार के इशारे से महाराणा ने एक वृक्ष की तरफ़ अंगुली करके उनसे पूछा कि इस वृक्ष का क्या नाम है। चाचा और मेरा

महाराणा की मृत्यु

(१) कार्त्तिक्यामथ पूर्णिमावरति यो योदात्तुला काञ्चनीं
शान्तज्ञ: प्रथम .. ..।
देवं पुष्करतीर्थमाक्षिणममुं नारायणं शाश्वतं
रूपेणादिवराहमुत्तमतरैः स्वर्णादिकैः पूजयन् ॥ १७ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख)।

(२) बादशाह जहांगीर अपनी दिनचर्या की पुस्तक (तुज़ुके जहांगीरी) में लिखता है—'पुष्कर के तालाब के चौतरफ़ हिन्दुओं के नये और पुराने मंदिर हैं। राणा संकर (सगर) ने, जो राणा अमरसिंह का चाचा और मेरे बड़े सरदारों में से है, एक मंदिर एक लाख रुपये लगाकर बनवाया था। मैं उस मंदिर को देखने के लिये गया; उसमें श्याम पत्थर की वराह की मूर्ति थी, जिसको मैंने तुड़वाकर तालाब में डलवा दिया' (तुज़ुके जहांगीरी का अलेग्ज़ैण्डर राजर्स-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० २५४)। पुष्कर का वराह का मंदिर शृंगीऋषि की प्रशस्ति के लिखे जाने के समय अर्थात् वि० स० १४८५ से पूर्व विद्यमान था। ऐसी दशा में यही मानना होगा कि राणा सगर ने उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार कराया होगा। वह मंदिर चौहानों के समय का बना हुआ होना चाहिये।

(३) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, श्लोक ४६ (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२०)।

(४) यो विप्रानमितान् हलं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलं
वेदं सागमपाठयत् कलिगलग्रस्ते धरित्रीतले। ..॥२१७॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

(५) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० १२०।

खातिन के पेट से थे और वृक्ष की जाति खाती ही पहिचानते हैं। महाराणा ने तो शुद्ध भाव से यह बात पूछी थी, परन्तु इसको अपमान समझकर चाचा और मेरा के कलेजे में आग लग गई। उन्होंने महाराणा को मारने का निश्चय कर महपा[1] (महीपाल) परमार आदि कई लोगों को अपने पक्ष में मिलाया और उनको साथ लेकर वे महाराणा के डेरे पर गये। महाराणा और उनके पासवाले उनका इरादा जानते ही उनसे भिड़ गये। दोनों पक्ष के कुछ आदमी मारे गये और महाराणा भी खेत रहे। यह घटना वि० सं० १४६० (ई० स० १४३३) में हुई[2]।

राणा मोकल के सात पुत्र—कुंभा,[3] खींवा[4] (क्षेमकर्ण), शिवा[5] (सुआ),

(१) देखो ऊपर पृ० २०५।

(२) कर्नल टॉड ने महाराणा मोकल के मारे जाने और महाराणा कुंभा के राज्याभिषेक का संवत् १४७५ (ई० स० १४१८) दिया है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३३), जो अशुद्ध है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि वि० स० १४८५ में इस महाराणा ने समिद्धेश्वर के मंदिर का जीर्णोद्धार कराकर अपनी प्रशस्ति उसमें लगवाई थी। इसी तरह जोधपुर की ख्यात में महाराणा मोकल का वि० सं० १४६५ में मारा जाना लिखा है (मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; पृ० ३५) वह भी विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि महाराणा कुंभकर्ण के समय के शिलालेख वि० सं० १४६१ से मिलते हैं—*संवत् १४६१ वर्षे कार्तिक सुदि २ सोमे राणाश्री-कुंभकर्णविजयराज्ये उपकेशज्ञातीय साह सहणा साह सारंगेन*······(यह शिलालेख उदयपुर राज्य के देलवाड़ा गांव में यति खेमसागर के पास रक्खा हुआ है)। *संवत् १४६२ वर्षे आषाढ सुदि ५ गुरौ श्रीमेदपाटदेशे श्रीदेवकुलपाटकपुरवरे श्रीकुंभकर्णराज्ये श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिपट्टे श्रीजिनसागरसूरिणामुपदेशेन श्रीउकेशवंशीयनवलक्षशाखामंडन सा०श्रीरामदेवभार्यासाध्वी नीमेलादे*···(आवश्यकबृहद्वृत्ति, दूसरे खंड का अंत—जैनाचार्य विजयधर्मसूरि, 'देवकुलपाटक', पृ० २२)। मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १६०० से पूर्व की घटनाएं और बहुतेरे संवत कल्पित ही हैं।

(३) महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र कुंभा सौभाग्यदेवी नामक राणी से उत्पन्न हुआ था—

श्रीकुंभकर्णोयमलभिसाध्व्या[:]
सौभाग्यदेव्या[:] तनयस्त्रिशक्तिः ॥ २३५ ॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

सौभाग्यदेवी का नाम भी भाटों की ख्यातों में नहीं मिलता।

(४) खेमकर्ण के वंश में प्रतापगढ़ (देवलिया) राज्य के स्वामी हैं।

(५) सुआ के सुआवत हुए।

महाराणा के पुत्र

सत्ता,[1] नाथसिंह,[2] वीरमदेव और राजधर—थे। उनमें से कुंभा (कुंभकर्ण) अपने पिता के राज्य का स्वामी हुआ।

महाराणा के शिलालेख

महाराणा मोकल के समय के अब तक तीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें से पहला जावर (मगरा ज़िले में) के जैन मंदिर के छबने पर खुदा हुआ वि० सं० १४७८ (ई० स० १४२१) पौष सुदि ६ का[3] और दूसरा एकलिंगजी से अनुमान ६ मील दक्षिण पूर्व मे शृंगीऋषि नामक स्थान की तिबारी में लगा हुआ वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) श्रावण सुदि ५ का है[4]। यह लेख टूट गया है और इसका एक टुकड़ा खो गया है; इसकी रचना कविराज वाणीविलास योगीश्वर ने की और सूत्रधार हादा के पुत्र फना ने इसे खोदा। तीसरा लेख—चित्तोड़ के शिवमंदिर (समिद्धेश्वर) मे लगा हुआ—वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२९) माघ सुदि ३ का है[5]। इसकी रचना दशपुर (दशोरा) ज्ञाति के भट्ट विष्णु के पुत्र एकनाथ ने की, शिल्पकार वीसल ने इसे लिखा और सूत्रधार मन्ना के पुत्र वीसा ने इसे खोदा।

कुंभकर्ण (कुंभा)

महाराणा मोकल के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र कुंभकर्ण, जो लोगों में कुंभा नाम से प्रसिद्ध है, वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में चित्तोड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा।

---

(१) सत्ता के वंशज कीतावत कहलाये।

(२) नैणसी की ख्यात में राजधर और नाथसिंह के नाम नहीं हैं, उनके स्थान में अदू और गदू नाम दिये हैं। अदू के वंश में अदूओत और गदू के वंश में गदूओत होना भी लिखा है।

(३) *संवत् १४७८ वर्षे पौष शु० ६ राजाधिराजश्रीमोकलदेवविजयराज्ये प्राग्वाट सा० नाना भा० फनीसुत सा० उतन भा० लीखू······*

(जावर का लेख अप्रकाशित)।

(४) यह लेख अब तक अप्रकाशित है।

(५) ए. इं; जि० २, पृ० ४१०-२१। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९६-१००।

इसके विरुद महाराजाधिराज, रायराय (राजराज), राणेराय, महाराणा,[1] राजगुरु,[2] दानगुरु, शैलगुरु,[3] परमगुरु,[4] चापगुरु,[5] तोडरमल्ल,[6] अभिनवभरताचार्य[7] और 'हिन्दुसुरत्राण'[8] शिलालेखादि में मिलते हैं, जो उसका राजाओं का शिरोमणि, विद्वान्, दानी और महाप्रतापी होना सूचित करते हैं।

महाराणा कुंभा ने गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले अपने पिता के मारनेवालों

---

(१) पहले चार बिरुद उक्त महाराणा के समय की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में दिये हुए हैं (*॥२३२॥ इति महाराजाधिराजमहाराणाश्रीमृगाङ्कमोकलेन्द्रवर्णनं ॥ अथ महाराजाधिराजरायरायराणेरायमहाराणाश्रीकुंभकर्णवर्णनं*)।

(२) राजगुरु अर्थात् राजाओं को शिक्षा देनेवाला।

(३) पर्वतों का स्वामी। गीतगोविन्द की टीका में 'सेलगुरु' पाठ है, जिसका अर्थ 'सेल' (भाला) नामक शस्त्र का उपयोग सिखलानेवाला है।

(४) *योयं राजगुरुश्च दानगुरुरित्युर्व्यां प्रसिद्धश्च यो योभौ शैलगुरुर्गुरुश्च परमःप्रोद्दामभूमीभुजां।·· ··· ··········· ····· · ·········॥ १४८ ॥*

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति—वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से। परमगुरु का अर्थ 'राजाओं का सबसे बड़ा गुरु' उक्त प्रशस्तिकार ने बतलाया है।

(५) चापगुरु=धनुर्विद्या का शिक्षक (गीतगोविन्द की टीका, पृ० १७४—निर्णयसागर-संस्करण)।

(६) तोडरमल्ल (तोडनमल्ल) के संबंध में यह लिखा मिलता है कि अश्वपति (हयेश), गजपति (हस्तीश), और नरपति (नरेश)—इन तीन बिरुदों को धारण करनेवाले राजाओं का बल तोड़ने में मल्ल के समान होने के कारण महीमहेन्द्र (पृथ्वी पर का इन्द्र) कुंभकर्ण तोडरमल्ल कहलाता था (*गजनरतुरगाधीशराजविजयतोडरमल्लेन*—गीतगोविन्द की टीका, पृ० १७४। *हयेशहस्तीशनरेशराजत्रयोल्लसत्तोडरमल्लमुख्य। विजित्य तानाजिषु कुंभकर्णो-महीमहेन्द्रो वि(बि)रुदं बिभर्ति ॥ १७७ ॥*—कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से)।

(७) यह बिरुद गीतगोविन्द की टीका (पृ० १७४) में मिलता है, और कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति (श्लोक १६७) में उसको 'नव्य(नवीन)भरत' कहा है।

(८) 'हिन्दुसुरत्राण' (हिन्दू सुलतान) का अर्थ हिंदू बादशाह (हिंदुपति पातशाह) है (*प्रबलपराक्रमाक्रान्तढिल्लीमण्डलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य*—राणपुर के जैन मंदिर का वि० सं० १४९६ का शिलालेख—भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११४)।

से बदला लेना निश्चय कर चाचा, मेरा आदि के छिपने की जगह का पता लगते ही उनको मारने के लिये सेना भेजने का प्रबन्ध किया।

राव रणमल का मेवाड़ में आना

महाराणा मोकल के मारे जाने का समाचार सुनकर मंडोवर के राव रणमल ने भी अपने सिर से पगड़ी उतारकर 'फैंटा' बांध लिया और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक चाचा और मेरा मारे न जावेंगे, तब तक मैं सिर पर पगड़ी न बांधूंगा। चित्तोड़ आकर वह दरबार में उपस्थित हुआ और महाराणा को नज़राना[1] किया। फिर वहां से ५०० सवार अपने साथ लेकर चाचा और मेरा को मारने के लिये पाइकोटड़ा के पहाड़ों की ओर चला, जहां वे अपने साथियों और कुटुम्बियों सहित छिपे हुए थे। पहले मेवाड़ में रहते समय राव रणमल ने कभी एक 'गमेती' (भीलों का मुखिया) को मारा था, जिससे भील लोग रणमल के शत्रु बन गये थे और इसी से वे चाचा व मेरा की सहायता करने लगे थे। उनकी प्रबल सहायता के कारण रणमल उनको मारने में सफल न हो सका और ६ मास तक वहां पड़ा रहा; अन्त में एक दिन वह उन भीलों को अपने पक्ष में लाने के उद्देश्य से अकेला उसी गमेती की विधवा स्त्री के घर पर गया। उस विधवा ने उसको पहिचानने पर कहा कि तुमने अपराध तो बहुत बड़ा किया है, परंतु अब मेरे घर आ गये हो, इसलिये मैं तुम्हें कुछ नहीं कहती। यह कहकर उसने उसे अपने घर में बिठा दिया, इतने में उस विधवा के पांच लड़के बाहर से आये। उनको देखकर माता ने कहा कि यदि तुम्हारे घर अब रणमल आवे, तो क्या करोगे? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि वह अपने घर पर आ जाय, तो हम उसे कुछ न कहेंगे। यह सुनकर माता ने अपने पुत्रों की बहुत प्रशंसा की और रणमल को भीतर से बाहर बुलाया। उस समय रणमल ने उस भीलनी को बहिन और भीलों को भाई कहा, इसपर भीलों ने पूछा, क्या चाहते हो? रणमल ने उनसे चाचा व मेरा की सहायता न करने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे उसके सहायक बन गये। इस प्रकार भीलों को अपना सहायक बनाकर उनको साथ ले वह पहाड़ों में गया, जहां एक कोट नज़र आया, जिसमें चाचा व मेरा रहते थे। रणमल अपने राजपूतों और भीलों सहित

(१) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३१६।

उसमें घुस गया। कुछ राजपूत तो चाचा, मेरा आदि को मारने के लिये गये और रणमल स्वयं महपा (पँवार) के घर पर पहुंचा और उसे बाहर बुलाया, परंतु वह तो स्त्री के भेष में पहले ही बाहर निकल गया था। जब रणमल ने उसे बाहर आने के लिये फिर कहा, तो भीतर से एक डोमनी बोली कि वह तो मेरे कपड़े पहनकर बाहर निकल गया है और मैं भीतर नंगी बैठी हूं। यह सुनकर रणमल वापस लौटा, इतने में उसके साथियों ने चाचा और मेरा तथा उनके बहुतसे पक्षकारों को मार डाला। फिर चाचा के पुत्र एका और महपा (पँवार) ने भागकर मांडू (मालवे) के सुलतान के यहां शरण ली[1]। इस प्रकार महाराणा ने अपने पिता के मारनेवालों से बदला लेकर अपनी क्रोधाग्नि शान्त की[2]।

फिर चाचा व मेरा के पक्षकार राजपूतों की लड़कियों को रणमल देलवाड़े में ले आया और उनको राठोड़ों के घर में डालने की आज्ञा दी। उस समय राघवदेव (महाराणा मोकल का भाई) भी वहां पहुंच गया। उन लड़कियों को राठोड़ों के घर में डालने का विचार ज्ञात होने पर वह बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उनको रणमल के डेरे से अपने डेरे में ले आया, जिससे रणमल और राघवदेव में परस्पर अनबन हो गई, जो दिन दिन बढ़ती गई। फिर रणमल ने महाराणा के सामने राघवदेव की बुराइयां करना आरंभ किया।

रणमल का प्रभाव बढ़ना और राघवदेव का मारा जाना

महाराणा के दरबार में रणमल का प्रभाव दिन दिन बढ़ता गया और वह अपने पक्ष के राठोड़ों को अच्छे अच्छे पदों पर नियुक्त करने लगा। चूंडा और अज्जा तो मांडू में थे और केवल राघवदेव महाराणा के पास था; उसको भी रणमल वहां से दूर करना चाहता था। उसके ऐसे बर्ताव से मेवाड़ के सरदारों को उसके विषय में सन्देह होने लगा, परंतु महाराणा का कृपापात्र होने से वे उसका कुछ न कर सकते थे।

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१४।

(२) असमसमरभूमीदारुणः कुंभकर्णः
करकलितकृपाणैर्वैरिवृन्दं निहत्य।
चलितरुधिरपूरोच्चालकल्लोलिनीभिः
शमयति पितृवैरोद्भूतरोषानलौघं ॥ १५० ॥
(कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

एक दिन रणमल ने कपट कर सिरोपाव देने के बहाने से राघवदेव को महाराणा के सामने बुलवाया, परंतु सिरोपाव के अंगरखे की बाहों के दोनों मुंह सिये हुए थे, ज्यों ही वह अंगरखा पहनने लगा, त्यों ही उसके दोनों हाथ फँस गये। इतने में रणमल के संकेत के अनुसार उसके दो राजपूतों ने दोनों तरफ़ से उसपर कटार के वार किये और वह मारा गया[1]। अपनी महत्ता के कारण महाराणा ने उस समय तो कुछ न कहा, परंतु इस घटना से उनके चित्त में रणमल के प्रति संदेह का अंकुर अवश्य उत्पन्न हो गया।

महाराणा का आबू विजय करना

महाराणा के आबू छीनने का निश्चित कारण तो मालूम न हो सका, परंतु ऐसा माना जाता है कि महाराणा मोकल के मारे जाने पर सिरोही के स्वामी सैसमल ने सिरोही की सीमा से मिले हुए मेवाड़ के कुछ गांव दबा लिये,[2] जिसपर महाराणा ने डोडिये नरसिंह की अध्यक्षता में फ़ौज भेजकर आबू और उसके निकट का कुछ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। सिरोही राज्य में आबू, भूला, वसन्तगढ़ आदि स्थानों से महाराणा कुम्भा के शिलालेख मिले हैं, जिनसे जान पड़ता है कि उसने आबू के अतिरिक्त सिरोही राज्य का पूर्वी भाग भी, जो मेवाड़ की सीमा से मिला हुआ है, सिरोहीवालों से छीन लिया था।

सिरोही की ख्यात में यह लिखा है—"महाराणा कुंभा गुजरात के सुलतान की फ़ौज से हारकर महाराव लाखा की रज़ामन्दी से आबू पर आकर रहा था और सुलतान की फ़ौज के लौट जाने पर उससे आबू खाली करने को कहा गया, परंतु उसने कुछ न माना, जिसपर महाराव लाखा ने उससे लड़कर आबू वापस ले लिया और उस समय से प्रण किया कि भविष्य में किसी राजा को आबू पर न चढ़ने देंगे। वि० संवत् १८६३ (ई० स० १८३६) में जब मेवाड़ के महाराणा जवानसिंह ने आबू की यात्रा करनी चाही, उस समय मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल स्पीयर्स ने बीच में पड़कर उक्त महाराणा के लिये आबू पर जाने की मंज़ूरी दिलवाई; तब से राजा लोग फिर आबू पर जाने लगे[3]"। सिरोही की ख्यात का यह लेख हमारी राय में ज्यों-का-त्यों विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि महाराणा

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३११।

(२) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १६५।

(३) वही; पृ० १६५-६६।

कुंभा ने देवड़ा सैंसमल के समय आबू आदि पर अपना अधिकार जमाया था, न कि देवड़ा लाखा के समय, और यह घटना वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) के पहले किसी समय हुई थी[1]। उस समय तक गुजरात के सुलतान से महाराणा की लड़ाई होना भी पाया नहीं जाता, और शिलालेखों तथा फ़ारसी तवारीखों से भी यही ज्ञात होता है कि महाराणा कुंभा ने आबू का प्रदेश छीना था। 'मिराते सिकन्दरी' में लिखा है—"हि० सन् ८६० (वि० सं० १५१३=ई० स० १४५६) में सुलतान कुतुबुद्दीन ने नागोर की हार का बदला लेने की इच्छा से राणा के राज्य पर चढ़ाई की। मार्ग में सिरोही के राजा खिता[2] देवड़ा ने आकर सुलतान से कहा कि मेरे बाप दादों का निवास-स्थान—आबू का क़िला—राणा ने मुझसे छीन लिया है, वह मुझे वापस दिला दो। इसपर सुलतान ने मलिक शाबान इमादुल्मुल्क को राणा की सेना से क़िला छीनकर खेता (लाखा) देवड़ा के सुपुर्द करा देने को भेजा। मलिक तंग घाटियों के रास्ते से चला, परन्तु ऊपर

---

(१) नादिया गाव (सिरोही राज्य में) से मिला हुआ महाराणा कुंभा का वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) का ताम्रपत्र राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है; इसमें अजाहरी (अजारी) परगने के चूरड़ी (चवरली) गाव में भूमि-दान करने का उल्लेख है, अतएव उसने आबू का प्रदेश उक्त संवत् से पूर्व अपने अधीन किया होगा—

श्रीराम

स्वस्ति राणा श्रीकुंभा आदेशता ॥ दवे परमा जोग्यं अजाहरी प्रगणां चुरडीए ढीवडुं १ नाम गणासू पे(खे)त्र वडनां नाम गोलीयावउ। बाई श्रीपूरबाई नइ अनामि दीधउं.......................... ..... ॥ संवत् १४६४ वर्षे आसाढ वदि ॥ ....

(मूल ताम्रपत्र से)।

(२) हाथ की लिखी हुई 'मिराते सिकन्दरी' की प्रतियों में कहीं 'खिता' और कहीं 'कंधा' पाठ मिलता है, परंतु ये दोनों पाठ अशुद्ध हैं, क्योंकि सुलतान कुतुबुद्दीन के समय उक्त नाम का कोई राजा सिरोही में नहीं हुआ। फ़ारसी लिपि के दोषों के कारण उसमें लिखे हुए पुरुषों और स्थानों के नाम कुछ के कुछ पढ़े जाते हैं। इसी से एक प्रति से दूसरी प्रति लिखी जाने में नक़ल करनेवाले नामों को बहुत कुछ बिगाड़ डालते हैं। संभव है, ऐसा ही उक्त पुस्तक में लाखा के विषय में हुआ हो।

के शत्रुओं ने चौतरफ़ से हमला किया, जिससे वह (मलिक) हार गया और उसकी फ़ौज के बहुतसे सिपाही मारे गये"[1]। इससे स्पष्ट है कि महाराणा कुंभा को आबू खुशी से नहीं दिया गया था, किन्तु उसने बलपूर्वक छीना था। मेवाड़ के शिलालेखों तथा संस्कृत पुस्तकों से भी यही पाया जाता है[2]।

मालवे के सुलतान पर चढ़ाई

एक दिन महाराणा कुंभा ने राव रणमल से कहा कि हमारे पिता को मारनेवाले चाचा व मेरा को तो उचित दंड मिल गया, परन्तु महपा पँवार को उसके अपराध का दंड नहीं मिला। इसपर रणमल ने निवेदन किया कि एक पत्र सुलतान महमूद ख़िलजी (प्रथम) को लिखा जाय कि वह महपा को हमारे सुपुर्द कर दे। महाराणा ने इसी आशय का एक पत्र सुलतान को लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किसी तरह नहीं छोड़ सकता। यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं भी तैयार हूं। यह उत्तर पाकर महाराणा ने सुलतान पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। उधर सुलतान महमूद भी लड़ाई की तैयारी करने लगा। उसने चूंडा और अज्जा से--जो हुशंग (अल्पखां) के समय से ही मेवाड़ को छोड़ मांडू में जा रहे थे--कहा कि मेरे साथ तुम भी चलो और रणमल से अपने भाई राघवदेव को मारने का बदला लो, परन्तु वे यह कहकर, कि 'महाराणा से हमें कोई द्वेष नहीं है,' अपनी अपनी जागीर पर चले गये। इस चढ़ाई में महाराणा की सेना में १००००० सवार और १४०० हाथी होना प्रसिद्ध है (शायद इसमें अतिशयोक्ति हो)। उधर से सुलतान भी लड़ने को

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४६।

(२) *समगृहीदर्बुदशैलराज*

व्याधूय युद्धोद्धरधीरधुर्यान्॥ ११ ॥

नीलाभ्रलिहमर्बुदाचलमसौ प्रौढप्रतापाशुमा--

नारुह्याखिलसैनिकानसिबलेनाजावजेयोजयत्।

निर्मायाचलदुर्गमस्य शिखरे तत्राकरोदालयं

कुंभस्वामिन उच्चशेखरशिखं प्रीत्यै रमाचक्रिणोः॥ १२ ॥

(चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ के शिलालेख में कुंभकर्ण का वर्णन--वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से)।

चला[1]; वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में[2] सारङ्गपुर के पास दोनों सेनाओं का मुक़ाबला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हारकर भागा। वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के राणपुर के जैन मन्दिर के शिलालेख में सारङ्गपुर के विजय का उल्लेख-मात्र है,[3] परन्तु कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में लिखा है कि "कुंभकर्ण ने सारङ्गपुर में असंख्य मुसलमान स्त्रियों को क़ैद किया, महम्मद (महमूद) का महामद छुड़वाया, उस नगर को जलाया और अगस्त्य के समान अपने खड्गरूपी चुल्लू से वह मालवसमुद्र को पी गया[4]"।

वीरविनोद और ख्यातों आदि से यह भी पाया जाता है कि सुलतान भागकर मांडू के क़िले में जा रहा और उसने महपा को वहां से चले जाने को कहा, जिसपर वह

(१) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३१९–२०।

(२) वीरविनोद में इस लड़ाई का वि० सं० १४९९ (ई० स० १४३१) में होना तथा उस समय राव रणमल का मेवाड़ में विद्यमान होना लिखा है, जो संभव नहीं, क्योंकि वि० सं० १४९५ में रणमल मारा गया था (जैसा कि आगे बतलाया जायगा) और सुलतान महमूद वि० स० १४९३ (ई० स० १४३६) में अपने स्वामी मुहम्मद (ग़ज़नीख़ां) को मारकर मालवे का सुलतान बना था; अतएव इन दोनों सवतों के बीच यह लड़ाई होनी चाहिये।

(३) राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, पंक्ति १७–१८। भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ११४।

(४) त्यक्त्वा दीना दीनदीनाधिनाथा
दीना बद्धा येन सारंगपुर्यां।
योषाः प्रौढाः पारसीकाधिपानां
ताः सख्यातु नैव शक्नोति कोपि ॥ २६८ ॥
महोमदो युक्ततरो न चैषः
स्वस्वामिघातेन धनार्जनात्र(•र्जनत्वात्)।
इतीव सारंगपुरं विलोड्य
महंमदं त्याजितवान् महमदं ॥ २६९ ॥
.................................।
एतद्दग्धपुराग्निवाडवमसौ यन्मालवांभोनिधिं
क्षोणीशः पिबति स्म खड्गचुलुकैस्तस्मादगस्त्यः स्फुटम् ॥ २७० ॥

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित।

गुजरात की तरफ़ चला गया। कुंभा ने मांडू का किला घेर लिया, अन्त में सुलतान की सेना भाग निकली और महाराणा महमूद को चित्तोड़ ले आया। फिर छ महीने तक कैद रक्खा और कुछ भी दंड न लेकर उसे छोड़ दिया[1]। अबुल्फ़ज़ल इस विजय का उल्लेख करता हुआ—अपने शत्रु से कुछ न लेकर इसके विपरीत उसे भेट देकर स्वतंत्र कर देने के लिये—कुंभा की बड़ी प्रशंसा करता है, परंतु कर्नल टॉड ने इसे हिन्दुओं की राजनैतिक अदूरदर्शिता, अहंकार, उदारता और कुलाभिमान बतलाया है,[2] जो ठीक ही है।

जहां इस प्रकार मुसलमानों की हार होती है, वहां मुसलमान लेखक उस घटना का उल्लेख तक नहीं करते। शम्सुद्दीन अल्तमश का महारावल जैत्रसिंह से और मालवे के पहले सुलतान अमीशाह (दिलावरखां गोरी) का महाराणा क्षेत्रसिंह से हारना निश्चित रूप से ऊपर बतलाया जा चुका है (पृ० ४५३-६८; और ५६२-६५), परन्तु उनका उल्लेख फ़िरिश्ता आदि किसी फ़ारसी ऐतिहासिक ने नहीं किया; संभव है, वैसा ही इसके संबंध में भी हुआ हो। इसका उल्लेख पिछले इतिहास-लेखकों ने अवश्य किया है, जिसकी पुष्टि शिलालेखादि से होती है। इस विजय के उपलक्ष्य मे महाराणा ने अपने उपास्यदेव विष्णु के निमित्त चित्तोड़ पर विशाल कीर्तिस्तंभ बनवाया, जो अब तक विद्यमान है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा की कृपा से राठोड़ राव रणमल का अधिकार बढ़ता ही गया; परन्तु राघवदेव को मरवाने के बाद रणमल के विषय में लोगों का सन्देह दिन दिन बढ़ने लगा, तो भी अपने पिता का मामा होने के कारण प्रकट मे महाराणा उसपर पूर्ववत् ही कृपा दिखलाते रहे। उच्च पदों पर राठोड़ों को नियत करने से लोग उसके विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे, जिसका भी कुछ प्रभाव उनपर अवश्य पड़ा। ऐसी स्थिति देखकर महपा पँवार और चाचा का पुत्र एका महाराणा के पैरों में आ गिरे और अपना अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की। महाराणा ने दया करके उनका अपराध क्षमा कर दिया। यह बात रणमल को पसन्द न आई और जब उसने इस विषय में अर्ज़ की, तो महाराणा ने यही

चूंडा का मेवाड़ में आना और रणमल का मारा जाना

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१०। नैणसी की ख्यात; पत्र १७८, पृ० २।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३५।

उत्तर दिया कि हम 'शरणागत-रक्षक' कहलाते हैं और ये हमारी शरण में आये हैं, इसलिये हमने इनके अपराध क्षमा कर दिये[1]। इस उत्तर से रणमल के चित्त में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया।

एक दिन महपा ने अवसर पाकर महाराणा से निवेदन किया कि राठोड़ों का दिल साफ़ नहीं है, शायद वे मेवाड़ का राज्य दबा बैठें, परन्तु महाराणा ने उसके कथन पर ध्यान न दिया। फिर एक दिन एका महाराणा के पैर दबा रहा था, उस समय उसकी आंखों से आंसू टपककर उनके पैरों पर गिरे। जब महाराणा ने उसके रोने का कारण पूछा, तो उसने निवेदन किया कि मेवाड़ का राज्य सीसोदियों के हाथ से राठोड़ों के हाथ में गया समझिये,[2] इसी दुःख से आंसू टपक रहे हैं। महाराणा ने कहा, क्या तू रणमल को मारेगा? एका ने उत्तर दिया कि यदि दीवाण (महाराणा) का हाथ मेरी पीठ पर रहे, तो मारूंगा। महाराणा ने कहा—अच्छा मारना[3]। इस प्रकार की बातें सुनकर रणमल पर से कुंभा का विश्वास उठता गया।

महाराणा की माता सौभाग्यदेवी की भारमली नामक दासी, जिसके साथ राव रणमल का प्रेम था, एक दिन उसके पास कुछ देर से पहुंची। वह उस समय शराब के नशे मे चूर हो रहा था और देर से आने का कारण पूछने पर भारमली ने कहा कि जिनकी मैं दासी हूं, उनसे जब छुट्टी मिली तब आई। इसपर नशे की हालत में रणमल ने उससे कह दिया कि तू अब किसी की नौकर न रहेगी, बल्कि जो चित्तोड़ में रहना चाहेंगे, वे तेरे नौकर बनकर रहेंगे[4]। भारमली ने यह सारा हाल सौभाग्यदेवी से कहा, जिससे वह व्यथित हो गई और अपने पुत्र को बुलाकर भारमली की कही हुई बात से उसे परिचित कर दिया। इस प्रकार भारमली के कथन से रणमल के प्रति कुंभा का संदेह और भी बढ़ गया। फिर उन दोनों ने सलाह की, परंतु जहां देखें वहां राठोड़ ही नज़र आते थे, इसलिये स्वामिभक्त चूंडा को बुलाने का निश्चय किया गया। महाराणा ने एक

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२०-२१।

(२) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३२१। नैणसी की ख्यात, पत्र १४८, पृ० १।

(३) नैणसी की ख्यात; पत्र १४८, पृ० १।

(४) वीरविनोद, भा० १, पृ० ३२१।

सवार भेजकर चूंडा को शीघ्र चित्तोड़ आने को लिखा, जिसपर चूंडा और अज्जा आदि चित्तोड़ में आ गये। इसपर रणमल ने राजमाता से अर्ज़ कराई कि चूंडा का चित्तोड़ में आना ठीक नहीं है, शायद राज्य के लिये उसका दिल बिगड़ जाय। इसके उत्तर में सौभाग्यदेवी ने कहलाया कि जिसने राज्य का अधिकारी होने पर भी राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, ऐसे सत्यव्रती को क़िले में न आने देने से तो निन्दा ही होगी। वह तो थोड़े-से आदमियों के साथ यहां आया है, जिससे कर भी क्या सकता है[1]? इस उत्तर से रणमल चुप हो गया।

एक दिन रणमल के एक डोम ने उससे कहा कि मुझे सन्देह है कि महाराणा आपको मरवा डालेंगे। यह सुनकर रणमल को भी अपने प्राणों का भय होने लगा, जिससे उसने अपने पुत्रों—जोधा, कांधल आदि—को सचेत करते हुए यह कहकर तलहटी में भेज दिया कि—'यदि मैं बुलाऊं तो भी तुम क़िले पर मत आना'। एक दिन महाराणा ने रणमल से पूछा, आजकल जोधा कहां है? वह यहां क्यों नहीं आता? इसपर रणमल ने निवेदन किया कि वह तो तलहटी में रहता है और घोड़ों को चराता है। महाराणा ने कहा, उसे बुलाओ। उसने उत्तर दिया—अच्छा, बुलाऊंगा,[2] परन्तु वह इस बात को टालता ही रहा।

एक रात्रि को संकेत के अनुसार भारमली ने रणमल को खूब मद्य पिलाया और नशे में बेहोश होने पर पगड़ी से कसकर उसे पलंग के साथ बांध दिया। फिर महपा (महीपाल) पँवार दूसरे आदमियों को साथ लेकर भीतर घुसा और रणमल पर उसने शस्त्र-प्रहार किया। वृद्ध वीर रणमल भी प्रहार के लगते ही खाट सहित खड़ा हो गया और अपनी कटार से दो तीन आदमियों को मारकर स्वयं भी मारा गया[3]। यह समाचार पाते ही रणमल के उसी डोम ने क़िले की दीवार पर चढ़कर उच्च स्वर से यह दोहा गाया—

---

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३२१–२२।

(२) नैणसी की ख्यात; पत्र १४८।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२१–२२। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १४८–५०। राय साहिब हरबिलास सारड़ा, महाराणा कुंभा, पृ० २०–३५। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२७।

कर्नल टॉड ने महाराणा मोकल के समय मे राव रणमल का मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि मोकल के मारे जाने पर तो रणमल दूसरी बार मेवाड़ म आया था।

चूंडा अजमल आविया, मांडू हूं धक आग।
जोधा रणमल मारिया, भाग सके तो भाग[1] ॥

ये शब्द सुनते ही तलहटीवालों ने जान लिया कि रणमल मारा गया। यह घटना वि० सं० १४६५ (ई० स० १४३८) में हुई[2]।

अपने पिता के मारे जाने के समाचार सुनते ही जोधा अपने भाइयों आदि सहित मारवाड़ की तरफ़ भागा। चूंडा ने विशाल सैन्य के साथ उसका पीछा किया और मार्ग में जगह जगह उससे मुठभेड़ होती रही। मारवाड़ की ख्यात से पाया जाता है कि जोधा के साथ ७०० सवार थे, किन्तु मारवाड़ में पहुंचने तक केवल सात ही बचने पाये थे[3]। चूंडा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया। फिर अपने पुत्रों—कुन्तल, मांजा, सूवा—तथा झाला विक्रमादित्य एवं हिंगलू आहाड़ा आदि को वहां के प्रबन्ध के लिये छोड़कर स्वयं चित्तोड़ लौट आया[4]। जोधा निराश होकर वर्तमान बीकानेर से १० कोस दूर काहुनी गांव में आ रहा[5]। मंडोवर के राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और जगह जगह थाने क़ायम कर दिये गये।

एक साल तक जोधा काहुनी में ठहरकर फिर मंडोवर को लेने की कोशिश करने लगा। कई बार उसने मंडोवर पर हमले किये, परन्तु प्रत्येक बार हारकर

जोधा का मंडोवर पर अधिकार

ही भागना पड़ा। एक दिन मंडोवर से भागता हुआ, भूख से व्याकुल होकर, वह एक जाट के घर में आ ठहरा, फिर उस जाट की स्त्री ने थाली-भर गरम 'घाट' (मोठ और बाजरे की खिचड़ी) उसके सामने रख दी। जोधा ने तुरन्त थाली के बीच में हाथ डाला, जिससे वह जल गया। यह देखकर उस स्त्री ने कहा—तू तो जोधा जैसा ही

(१) मेवाड़ में यह पूरा दोहा इसी तरह प्रसिद्ध है। ख्यातों में इसके अंतिम दो चरण ही मिलते हैं।

(२) मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १५०० के आषाढ में रणमल का मारा जाना लिखा है (पृ० ३६), जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में महाराणा कुंभा के मंडोर (मंडोवर) विजय करने का स्पष्ट उल्लेख है।

(३) मारवाड़ की ख्यात; जिल्द १, पृ० ४० ।

(४) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२२ तथा अन्य ख्यातें।

(५) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४१ ।

निर्बुद्धि दीख पड़ता है। इसपर उसने पूछा—बाई, जोधा निर्बुद्धि कैसे है? उसने उत्तर में कहा कि जोधा निकट की भूमि पर तो अपना अधिकार जमाता नहीं, और एकदम मंडोवर पर जाता है, जिससे अपने घोड़े और राजपूत मरवाकर उसे प्रत्येक बार निराश होकर भागना पड़ता है। इसी से उसको मैं निर्बुद्धि कहती हूं। तू भी वैसा ही है, क्योंकि किनारे से तो खाता नहीं और एकदम बीच की गरम घाट पर हाथ डालता है। इस घटना से शिक्षा पाकर जोधा ने मंडोवर लेना छोड़कर सबसे पहले अपने निकट की भूमि पर अधिकार करना ठाना,[1] क्योंकि पहले कई वर्षों तक उद्योग करने पर भी मंडोवर लेने में उसे सफलता न हुई थी।

जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसबाई ने कुंभा को अपने पास बुलाकर कहा कि 'मेरे चित्तोड़ ब्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार से नुकसान ही हुआ है। रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊंचा किया, परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा मारा फिरता है, इसपर महाराणा ने कहा कि मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया है; आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मैं इस बात पर नाराज़ न होऊंगा। तदनन्तर हंसबाई ने आशिया चारण डूला को जोधा के पास यह सन्देश देने के लिये भेजा। वह चारण उसे ढूंढता हुआ मारवाड़ की थलियों के गांव भाडंग और पड़ावे के जंगलों में पहुंचा, जहां जोधा अपने कुछ साथियों सहित बाजरे के 'सिट्टों' से अपनी क्षुधा शान्त कर रहा था। चारण ने उसे पहिचानकर हंसबाई का सन्देश सुनाया[2]। इस कथन से उसे कुछ आशा बँधी, परन्तु उसके पास घोड़े न होने से वह सेत्रावा के रावत लूंणा (लूंणकरण) के पास गया और उससे कहा कि मेरे पास राजपूत तो हैं, परंतु घोड़े मर गये हैं। आपके पास ५०० घोड़े हैं, उनमें से २०० मुझे दे दो। उसने उत्तर दिया कि मैं राणा का आश्रित हूं, इसलिये यदि मैं तुम्हें घोड़े दूं, तो राणा मेरी जागीर छीन लेगा। इसपर वह लूंणा की

(१) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४१-४२।

(२) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३२३-२४।

स्त्री भटियाणी—अपनी मासी—के पास गया। जोधा को उदास देखकर उसने उस-की उदासी का कारण पूछा, तो उसने कहा कि मैंने रावतजी से घोड़े मांगे, परन्तु उन्होंने नहीं दिये। इसपर भटियाणी ने कहा कि चिन्ता मत कर, मैं तुझे घोड़े दिलाती हूं। फिर उसने अपने पति को बुलाकर कहा कि अमुक आभूषण तोशा-ख़ाने में रख दो। जब रावत तोशाख़ाने में गया, तो उसकी स्त्री ने किवाड़ बन्द कर बाहर ताला लगा दिया और जोधा के साथ अपनी एक दासी भेजकर अस्तबलवालों से कहलाया कि रावतजी का हुक्म है कि जोधा को सामान सहित घोड़े दे दो। जोधा वहां से १४० घोड़े लेकर रवाना हो गया। कुछ देर बाद ताला खोलकर उसने अपने पति को बाहर निकाला। रावत अपनी ठकुराणी और कामदार से बहुत अप्रसन्न हुआ और घोड़ों के चरवादारों को पिटवाया, परन्तु गये हुए घोड़े पीछे न मिल सके[1]। हरबू (हरभम्) सांखला भी, जो एक सिद्ध (पीर) माना जाता था, जोधा का सहायक हो गया।

इस प्रकार घोड़े पाकर जोधा ने सबसे पहले चौकड़ी के थाने पर हमला किया, जहां भाटी वणवीर, राणा वीसलदेव, रावल दूदा आदि राणा के राज-पूत अफ़सर मारे गये। वहां से कोसाणे को जीतकर जोधा मंडोवर पर पहुंचा, जहां लड़ाई हुई, जिसमें राणा के कई आदमी मारे गये और वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) में वहां पर जोधा का अधिकार हो गया। इसके बाद जोधा ने सोजत पर अधिकार जमा लिया[2]। रणमल के मारे जाने के अनन्तर जोधा की स्थिति कैसी निर्बल रही, यह पाठकों को बतलाने के लिये ही हमने ऊपर का वृत्तान्त मारवाड़ की ख्यात आदि से उद्धृत किया है। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि 'मंडोवर लेने की खबर पाकर राणा कुंभा बड़ी सेना के साथ जोधा पर चढ़ा और पाली में आ ठहरा। इधर से जोधा भी लड़ने को चला, परन्तु घोड़े दुबले और थोड़े होने से ५००० बैल गाड़ियों में २०००० राठोड़ों को बिठला-कर वह पाली की तरफ़ रवाना हुआ। जोधा के नक्कारे की आवाज़ सुनते ही राणा अपने सैन्य सहित बिना लड़े ही भाग गया। फिर जोधा ने मेवाड़ पर हमला कर चित्तोड़ के किवाड़ जला दिये, जिसपर राणा ने आपस में समझौता करके

(१) मारवाड़ की ख्यात, जि० १, पृ० ४२–४३।

(२) वही, पृ० ४३–४४।

जोधा को सोजत दिया और दोनों राज्यों के बीच की सीमा नियत कर दी"[1]। यह कथन आत्मश्लाघा, खुशामद एवं अतिशयोक्ति से ओतप्रोत है। कहां तो महाराणा कुंभा—जिसने मालवे और गुजरात के सुलतानों को कई बार परास्त किया था; जिसने दिल्ली के सुलतान का कुछ प्रदेश छीन लिया था; जिसने राजपूताने का अधिकांश तथा मालवे एवं गुजरात के राज्यों का कितनाएक अंश अपने राज्य में मिला लिया था, और जो अपने समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था—और कहां एक छोटेसे इलाके का स्वामी जोधा, जिसने कुंभा के इशारे से ही मंडोवर लिया था। राजपूताने के राज्यों की ख्यातों में आत्मश्लाघा-पूर्ण ऐसी झूठी बातें भरी पड़ी हैं, इसी से हम उनको प्राचीन इतिहास के लिये बहुधा निरुपयोगी समझते हैं। महाराणा ने दूसरी बार मारवाड़ पर चढ़ाई की ही नहीं। पीछे से जोधा ने अपनी पुत्री शृङ्गारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ किया, जिससे अनुमान होता है कि जोधा ने मेवाड़वालों के साथ का वैर अपनी पुत्री ब्याहकर मिटाया हो, जैसी कि राजपूतों में प्राचीन प्रथा है। मारवाड़ की ख्यात में न तो इस विवाह का उल्लेख है, और न जोधा की पुत्री शृंगारदेवी का नाम मिलता है, जिसका कारण यही है कि वह ख्यात वि० सं० १७०० से भी पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना वृत्तान्त भाटों की ख्यातों या सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा गया है। शृंगारदेवी ने चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर के घोसुण्डी गांव में वि० सं० १५६१ में एक बावड़ी बनवाई, जिसकी संस्कृत प्रशस्ति में—जो अब तक विद्यमान है—उसका जोधा की पुत्री होने तथा रायमल के साथ विवाह आदि का विस्तृत वृत्तान्त है[2]।

बूंदी को विजय करना

वि० सं० १४९६ के राणपुर के जैन मन्दिरवाले लेख में[3] महाराणा के बूंदी विजय करने का उल्लेख है और यही बात कुंभलगढ़ की वि० सं० १५१७ की प्रशस्ति में[4] भी मिलती है, जिससे निश्चित है कि वि० सं० १४९६ अथवा उससे कुछ पूर्व महाराणा कुंभा ने

(१) मारवाड़ की ख्यात, जि० १, पृ० ४४-४५।

(२) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० ५५, भाग १, पृ० ७९-८२।

(३) राणपुर के शिलालेख का अवतरण आगे पृ० ६०८, टिप्पण ६ में दिया गया है।

(४) *जित्वा देशमनेकदुर्गविषमं हाडावटीं हेलया*
तन्नाथान् करदान्विधाय च जयस्तम्भानुदस्तम्भयत्।

बून्दी को जीत लिया था। इतिहास के अन्धकार में बूंदी के भाटों की ख्यातों के आधार पर बने हुए वंशप्रकाश में इस सम्बन्ध में एक लम्बी-चौड़ी गढ़ंत कथा लिखी है, जिसका आशय नीचे लिखा जाता है—

"जब हाड़ों ने छल से अमरगढ़ के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया, तो महाराणा ने बूंदी पर चढ़ाई कर दी। उस समय राणी ने यह पूछा कि आप कब तक लौट आवेंगे, इसपर महाराणा ने कहा कि हाड़ों को मारकर श्रावण सुदि ३ के पहले आजाऊंगा। तब राणी ने कहा जो आप 'तीज' तक न आये, तो आपका परलोकवास हुआ समझकर मैं चिता में जल मरूंगी। यह सुनकर महाराणा ने तीज पर लौट आने का वचन दिया। फिर जाकर अमरगढ़ हाड़ों से छीना और बूंदी को घेर लिया। कई दिनों तक लड़ाई होती रही; जब श्रावण की तीज निकट आई, तब महाराणा ने अपनी फौज़ के सरदारों से कहा कि हम तो प्रतिज्ञा के अनुसार चित्तोड़ जावेंगे। इसपर सरदारों ने अर्ज़ की कि आप पधारते हैं, तो अपनी पगड़ी यहां छोड़ जावें; हम उसको मुजरा कर लड़ाई पर जाया करेंगे। महाराणा ने वहां अपनी पगड़ी रखकर चित्तोड़ को प्रस्थान कर दिया। जब यह ख़बर बूंदीवालों को मिली, तब सारण और सांडा ने यह विचार किया कि जैसे बने वैसे महाराणा की पगड़ी छीन लें। यह विचार कर रात के वक़्त उन्होंने मेवाड़ की फ़ौज पर धावा किया, उस समय मेवाड़वाले, जो अचेत पड़े हुए थे, भाग निकले और महाराणा की पगड़ी गोहिल जाति के राजपूत हरिसिंह के, जो बूंदी के सरदारों में से था, हाथ आ गई। उसको लेकर बूंदी के सरदार तो क़िले में दाखिल हो गये और मेवाड़ की फ़ौज ने कई दिनों में यह खबर महाराणा के पास पहुंचाई, जिससे वे शर्मिन्दगी के मारे रणवास के बाहर भी न निकले और दो महीने पीछे स्वर्ग को सिधारे[1] "।

यह सारी कथा ऐतिहासिक नहीं, किंतु आत्मश्लाघा से भरी हुई और वैसी

दुर्गं गोपुरमत्र षट्पुरमपि प्रौढा च वृंदावतीं
श्रीमन्मंडलदुर्गमुच्चविलसच्छाला विशालां पुरीं ॥ २६४ ॥
(वि॰ सं॰ १५१७ का कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

इस श्लोक में 'वृन्दावती' बूंदी का सूचक है।

(१) वंशप्रकाश, पृ॰ ८६–६०।

ही कल्पित है, जैसी कि उसी पुस्तक से पहले उद्धृत की हुई महाराणा हंमीर की जीवित दशा में कुंवर क्षेत्रसिंह के गैणौली में मारे जाने तथा मिट्टी की बूंदी की कथाएं हैं। महाराणा कुंभकर्ण ने वि० सं० १४९६ में अथवा उससे कुछ पूर्व बूंदी विजय कर ली थी। महाराणा का देहान्त बूंदी की चढ़ाई से दो मास पीछे नहीं, किन्तु उन्नीस से भी अधिक वर्ष पीछे वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में हुआ था; और वह भी लज्जा के मारे रणवास में नहीं, किन्तु अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) के हाथ से मारे जाने से हुआ था। कुंभकर्ण ने सारा हाड़ोती देश विजय कर वि० सं० १५१७ के पूर्व ही अपने राज्य में मिला लिया था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। यह महाराणा अपने समय के सबसे प्रबल हिंदू राजा थे और बूंदीवाले केवल एक छोटे से प्रदेश के स्वामी एवं मेवाड़ के सरदार थे।

वि० सं० १४९६ तक का महाराणा का वृत्तान्त

वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) में राणपुर (जोधपुर राज्य में) का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बना, जिसके शिलालेख में महाराणा कुंभकर्ण के राज्य के पहले सात वर्षों का वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

"अपने कुलरूपी कानन (वन) के सिंह राणा कुंभकर्ण ने सारंगपुर,[1] नागपुर[2] (नागोर), गागरण[3] (गागरौन), नराणक,[4] अजयमेरु,[5] मंडोर,[6] मंडलकर,[7]

(१) सारंगपुर मालवे में है। यहां महाराणा कुंभकर्ण ने मालवे (मांडू) के सुलतान महमूदशाह ख़िलजी (प्रथम) को परास्त किया था, जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर (पृ० ५९७-९९) लिखा जा चुका है।

(२) नागपुर (नागोर) जोधपुर राज्य में है। वि० सं० १४९६ या उससे पूर्व उक्त नगर के विजय का वृत्तान्त अन्यत्र कहीं नहीं मिला, परंतु यह युद्ध फ़ीरोज़ख़ां के साथ होना चाहिये।

(३) गागरौन कोटा राज्य में है।

(४) नराणक (नराणा) जयपुर राज्य में है। इस समय यह दादूपंथी साधुओं का मुख्य स्थान है।

(५) अजयमेरु=अजमेर। महाराणा कुंभा के राज्य के प्रारंभकाल में यह क़िला मुसलमानों के अधिकार में था। युद्ध के लिये महत्त्व का स्थान होने से महाराणा ने इसे मुसलमानों से छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था।

(६) मंडोर (मंडोवर) के विजय का वृत्तान्त ऊपर (पृ० ६०२) लिखा जा चुका है।

(७) मंडलकर (मांडलगढ़) पहले बम्बावदे के हाड़ों के अधिकार में था। महाराणा कुंभा ने इसे उनसे छीनकर अपने राज्य में मिलाया था।

बूंदी,[1] खाटू,[2] चाटसू[3] आदि सुदृढ़ और विषम किलों को लीलामात्र से विजय किया, अपने भुजबल से अनेक उत्तम हाथियों को प्राप्त किया, और म्लेच्छ मही-पाल(सुलतान)-रूपी सर्पों का गरुड़ के समान दलन किया था। प्रचण्ड भुजदण्ड से जीते हुए अनेक राजा उसके चरणों में सिर झुकाते थे। प्रबल पराक्रम के साथ ढिल्ली (दिल्ली)[4] और गूर्जरत्रा (गुजरात)[5] के राज्यों की भूमि पर आक्रमण करने के कारण वहां के सुलतानों ने छत्र भेट कर उसे 'हिन्दु-सुरत्राण' का बिरुद प्रदान किया था। वह सुवर्णसत्र (दान, यज्ञ) का आगार (निवासस्थान), छः शास्त्रों में कहे हुए धर्म का आधार, चतुरंगिणी सेनारूपी नदियों के लिये समुद्र था और कीर्ति एवं धर्म के साथ प्रजा का पालन करने और सत्य आदि गुणों के साथ कर्म करने में रामचन्द्र और युधिष्ठिर का अनुकरण करता था और सब राजाओं का सार्वभौम (सम्राट्) था[6]"।

इस लेख से यह पाया जाता है कि वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) तक महाराणा कुंभा ने अपने भुजबल से ऊपर लिखे हुए अनेक किले नगर आदि

(१) बूंदी के विजय का वृत्तान्त ऊपर (पृ० ६०५-७) लिखा जा चुका है।

(२) राजपूताने मे खाटू नाम के तीन स्थान हैं, दो (बड़ी खाटू और छोटी खाटू) जोधपुर राज्य में और एक जयपुर राज्य में। राणपुर के लेख का संबंध संभवतः जयपुर राज्य के खाटू नगर से हो।

(३) चाटसू (चाकसू) जयपुर राज्य में।

(४) उस समय दिल्ली का सुलतान मुहम्मदशाह (सैयद) था।

(५) गुजरात के सुलतान से अभिप्राय अहमदशाह (प्रथम) से है।

(६) *कुलकाननपञ्चाननस्य। विषमतमाभंगसारंगपुरनागपुरगागरणनराणकाऽ-जयमेरुमंडोरमंडलकरबूंदीखाटूचाटसूजानादिनानामहादुर्गलीलामात्रग्रहणप्रमाणितजि-तकाशित्वाभिमानस्य। निजभुजोर्जितसमुपार्जितानेकभद्रगजेन्द्रस्य। म्लेच्छमहीपालव्या-लचक्रवालविदलनविहंगमेन्द्रस्य। प्रचण्डदोर्दण्डखण्डिताभिनिवेशनानादेशनरेशभाल-मालालालितपादारविंदस्य। अस्खलितललितलक्ष्मीविलासगोविंदस्य।............ प्रबलपराक्रमाक्रान्तढिल्लीमंडलगूर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य सु-वर्णसत्रागारस्य षड्दर्शनधर्माधारस्य चतुरंगवाहिनीवाहिनीपारावारस्य कीर्तिधर्मप्रजा-पालनसत्त्वादिगुणक्रियमाणश्रीरामयुधिष्ठिरादिनरेश्वरानुकारस्य राणाश्रीकुंभकर्णस-र्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य......* (एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्कियालॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया; ई० स० १९०७-८, पृ० २१४-१५)।

जीत लिये थे, मुसलमान सुलतानों पर भी उसका आतङ्क जम गया था और वह धर्मानुसार प्रजा का पालन कर रहा था।

हाड़ौती को विजय करना

महाराणा मोकल के मारे जाने के बाद हाड़ौती के हाड़ों (चौहानों) ने स्वतन्त्र होने का उद्योग किया, जिसपर महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने हाड़ौती पर चढ़ाई कर दी। इस विषय में कुंभलगढ़ के वि० सं० १५१७ के शिलालेख में लिखा है कि बबावदा[1] (बम्बावदा) तथा मण्डलकर[2] (मांडलगढ़) को महाराणा ने विजय किया; हाड़ावटी[3] (हाड़ौती) को जीतकर वहां के राजाओं को करद (ख़िराजगुज़ार) बनाया और षट्पुर (खटकड़) तथा वृन्दावती (बूंदी) को जीत लिया।

मेवाड़ के पूर्वी हिस्से के ऊपर लिखे हुए स्थान महाराणा ने किस संवत् में अपने अधीन किये, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख में उनके विजय का उल्लेख मिलता है, अतएव यह तो निश्चित है कि उक्त संवत् से पूर्व ये विजय किये गये होंगे। वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में मांडलगढ़, बूंदी और गागरौन की विजय का उल्लेख है और बाकी के स्थान उसी प्रदेश में हैं, अतएव मांडलगढ़ से लेकर गागरौन तक का सारा प्रदेश एक ही चढ़ाई में—वि० सं० १४९६ में—या उससे पूर्व महाराणा ने लिया हो, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। मांडलगढ़ और बम्बावदा उक्त महाराणा के समय से लगाकर अब तक मेवाड़ के अन्तर्गत हैं। षट्पुर (खटकड़) इस समय बूंदी के और गागरौन कोटा राज्य के अधीन है।

मालवे के सुलतान के साथ की लड़ाइयां

सुलतान महमूदशाह ख़िलजी अपनी पहले की हार और बदनामी का बदला लेने के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई कर कुंभलगढ़ की तरफ गया। फ़िरिश्ता का कथन है कि "हि० स० ८४६ (वि० सं० १५०० =ई० स० १४४३) में सुलतान महमूद कुम्भलगढ़ के

(१) *कुंभकर्णनृपतिर्बबावदोद्धूलनोद्धतभुजो विराजते ॥ २६२ ॥*

कुंभलगढ़ का शिलालेख (अप्रकाशित)।

(२) *दीर्घदोलितबाहुदंडविलसत्कोदण्डदण्डोल्लस—*
द्बाणास्तान्विरचय्य मंडलकरं दुर्गं क्षणेनाजयत् ॥ २६३ ॥ (वही)।

(३) हाड़ावटी (हाड़ौती), षट्पुर (खटकड़) और वृन्दावती (बूंदी) के मूल अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ६०५, टि० ४, श्लोक २६४।

निकट पहुंचा। क़िले के दरवाज़े के नीचे (केलवाड़ा गांव के) एक विशाल मन्दिर (बाण माता का) में, जो कोट के कारण सुरक्षित था, महाराणा का बेणीराय (? वीरसिंह) नामक एक सरदार रहता था और उसी में लड़ाई का सामान भी रक्खा जाता था। सुलतान ने उस मन्दिर पर—चाहे जितनी हानि क्यों न हो—अधिकार करना चाहा और स्वयं सेना सहित लड़ने चला। बड़ा भारी नुकसान उठाकर उसने उसे ले लिया; मन्दिर में लकड़ियां भरकर उसमें आग लगा दी गई और अग्नि से तप्त मूर्तियों पर ठंडा पानी डालने से उनके टुकड़े टुकड़े हो गये, जो सेना के साथ के कसाइयों को मांस तोलने के लिये दिये गये और एक मीढे (? नन्दी) की मूर्ति का चूना पकवाकर राजपूतों को पान में खिलवाया। सुलतान ने उस गढ़ी को विजय कर उसके लिये ईश्वर को बड़ा धन्यवाद दिया, क्योंकि बहुत दिनों तक घेरने पर भी गुजरात के सुलतान उसे न ले सके थे। यहां से सुलतान चित्तोड़ की तरफ़ चला और दुर्ग के नीचे के हिस्से को विजय किया, जिससे राणा किले में चला गया। वर्षा के दिन निकट आने के कारण सुलतान ने एक ऊंचे स्थान पर अपना डेरा डालने और वर्षा के बाद क़िला फ़तह करने का विचार किया। महाराणा कुंभा ने शुक्रवार ता० २५ ज़िलहिज्ज हि० स० ८४६ (वि० सं० १५०० ज्येष्ठ वदि ११=ता० २६ अप्रेल ई० स० १४४३) को बारह हज़ार सवार और छः हज़ार पैदल सेना सहित सुलतान पर धावा किया, परंतु उसमें निष्फलता हुई। दूसरी रात को सुलतान ने राणा की सेना पर आक्रमण किया, जिसमें बहुतसे राजपूत मारे गये तथा बहुत कुछ माल हाथ लगा और राणा क़िले में चला गया। दूसरे साल चित्तोड़ का क़िला फ़तह करने का विचार कर सुलतान वहां से मांडू को लौटा और विना सताये वहां पहुंच गया, जहां उसने हुशंग की मसजिद के सम्मुख अपनी स्थापित की हुई पाठशाला के आगे सात मंज़िल की एक सुन्दर मीनार बनवाई[1]"।

फ़िरिश्ता के इस कथन से यह तो अवश्य झलकता है कि सुलतान को निराश होकर लौटना पड़ा हो। कुंभलगढ़ के नीचे का केलवाड़े का एक मन्दिर लेने में भी स्वयं सुलतान का अपनी सेना के आगे रहना, चित्तोड़

(१) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० २०८-१०।

के निकट पहुंचने पर बरसात के मौसिम का आ जाना मानकर छः महीनों के लिये एक स्थान पर पड़ा रहने का विचार करना, तथा महाराणा का उसपर हमला होने के दूसरे ही दिन अपनी विजय के गीत गाना और साथ ही एक साल बाद आने का विचार कर बिना सताये मांडू को लौट जाना—ये सब बातें स्पष्ट बतला देती हैं कि सुलतान को हारकर लौटना पड़ा हो और मार्ग में वह सताया भी गया हो तो आश्चर्य नहीं। ऐसे अवसरों पर मुसलमान लेखक बहुधा इसी प्रकार की शैली का अवलम्बन किया करते हैं।

महमूद खिलजी इस हार का बदला लेने के लिये विशाल सैन्य लेकर वि० सं० १५०३ के कार्तिक में फिर मांडलगढ़ की तरफ़ चला। जब वह बनास नदी को पार करने लगा, तब महाराणा की सेना ने उसपर आक्रमण किया[1]।

इस लड़ाई के सम्बन्ध में फ़िरिश्ता का कथन है कि "ता० २० रज्जब हि० स० ८५० (कार्तिक वदि ६ वि० सं० १५०३= ता० ११ अक्टूबर ई० स० १४४६) को सुलतान ने मांडलगढ़ के क़िले को विजय करने के लिये कूच किया। रामपुरा (इन्दौर राज्य में) पहुंचने पर वहां के हाकिम बहादुरखां की जगह उसने मलिक सैफुद्दीन को नियत किया। फिर बनास नदी को पार कर वह मांडलगढ़ की तरफ़ चला, जहां राणा कुंभा मुक़ाबले को तैयार था। राजपूतों ने घेरा उठाने के लिये उसपर कई हमले किये, जो निष्फल हुए। अन्त में राणा कुंभा ने बहुतसे रुपये तथा रत्न दिये, जिसपर सुलतान महमूद उससे सुलह कर मांडू को लौट गया[2]"। फ़िरिश्ता का यह कथन भी पूर्व कथन के समान अविश्वसनीय है, क्योंकि फ़िरिश्ता आगे लिखता है—"मांडू लौटने के बाद सुलतान बयाने की तरफ़ चढ़ा और वहां के हाकिम मुहम्मदखां से नज़राना लेकर लौटते समय रणथम्भोर के निकट का अनन्दपुर का किला विजय करके वहां से ८००० सवार और २० हाथियों के साथ ताजखां को चित्तोड़ पर हमला करने को भेजा[3]"। यदि मांडलगढ़ की लड़ाई में सुलतान ने विजयी होकर महाराणा से सुलह कर ली होती, तो फिर ताजखां को चित्तोड़ भेजने की आवश्यकता ही न रहती।

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२५। रायसाहब हरबिलास सारडा; महाराणा कुंभा; पृ० ४६।

(२) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २१४-१५।

(३) वही; जि० ४, पृ० २१५।

आगे चलकर फ़िरिश्ता फिर लिखता है—"हि० स० ८५८ (वि० सं० १५११=ई० स० १४५४) में शाहज़ादा ग़यासुद्दीन तो रणथम्भोर पर चढ़ा और सुलतान चित्तोड़ की तरफ़ चला। इस बला को टालने के लिये महाराणा स्वयं सुलतान के पास उपस्थित हुआ और अपने नामवाले बहुतसे रुपये भेंट किये। इस बात से अप्रसन्न होकर सुलतान ने वे सब रुपये लौटा दिये और मंसूर-उल्मुल्क को मन्दसोर का इलाक़ा बरबाद करने के लिये छोड़कर वह चित्तोड़ की ओर चला। उन ज़िलों पर अपनी तरफ़ का हाकिम नियत करने और वहां अपने वंश के नाम से ख़िलजीपुर बसाने की धमकी देने पर महाराणा ने अपना दूत भेजकर कहलाया कि आप कहें उतने रुपये दे दूं और अब से आपकी अधीनता स्वीकार करता हूं, परंतु चातुर्मास निकट आ गया, इसलिये इस बात को स्वीकार कर कुछ सोना लेकर वह लौट गया[1]"। फ़िरिश्ता के इस कथन की शैली से ही अनुमान होता है कि सुलतान को इस समय भी निराश होकर लौटना पड़ा हो, क्योंकि उसके साथ ही उसने यह भी लिखा है—"इन्हीं दिनों मालूम हुआ कि अजमेर में मुसलमानों का धर्म उच्छिन्न हो रहा है, इसलिये उसने वहां जाकर क़िले पर घेरा डाला। चार रोज़ तक क़िलेदार राजा गजाधर ने मुसलमान सेना पर आक्रमण किया, वह बड़ी वीरता से लड़ा और अन्त में मारा गया। सुलतान ने बड़ी भारी हानि के बाद क़िले पर अधिकार किया और उसकी यादगार में क़िले में एक मसजिद बनवाई। नियामतुल्ला को सैफ़ख़ां का ख़िताब देकर वहां का हाकिम नियत किया और मांडलगढ़ की तरफ़ रवाना होकर बनास नदी पर डेरा डाला। राणा कुंभा ने स्वयं राजपूतों की एक टुकड़ी सहित ताजख़ां के अधीन की सेना पर आक्रमण किया और दूसरी सेना को अलीख़ां की सेना पर हमला करने को भेजा। दूसरे दिन सुलतान को उसके सरदारों ने यह सलाह दी कि सेना को अपने पड़ाव पर ले जाना उचित है, क्योंकि सेना बहुत कम रह गई है और सामान भी खूट गया है। ऐसी अवस्था और वर्षा के दिन निकट आये देखकर सुलतान मांडू को लौट गया[2]"।

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२१-२२।

(२) वही, जि० ४, पृ० २२२-२३।

यदि महाराणा ने मंदसोर इलाके के आसपास ख़िलजीपुर बसाने की धमकी देने पर सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली होती, तो फिर सुलतान को मांडलगढ़ पर चढ़ाई करने और हारकर भाग जाने की आवश्यकता ही न रहती।

फ़िरिश्ता यह भी लिखता है कि "ता० ६ मुहर्रम हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१३ मार्गशीर्ष सुदि ७=ई० स० १४५६ ता० ४ दिसम्बर) को सुलतान फिर मांडलगढ़ पर चढ़ा और बड़ी लड़ाई के बाद उसने किले के नीचे के भाग पर अधिकार कर लिया और कई राजपूतों को मार डाला, तो भी किला विजय नहीं हुआ, परन्तु जब तोपों के गोलों की मार से तालाब में पानी न रहा, तब किले की सेना सन्धि करने को बाध्य हुई और राणा कुंभा ने दस लाख टंके (रुपये) दिये। यह घटना ता० २० ज़िलहिज्ज हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१४ मार्गशीर्ष वदि ७=ई० स० १४५७ ता० ८ नवम्बर) को, अर्थात् उसके मांडू से रवाना होने के ग्यारह मास पीछे हुई। फिर ता० १६ मुहर्रम हि० स० ८६२ (वि० सं० १५१४ पौष वदि ३=ई० स० १४५७ ता० ४ दिसम्बर) को वह लौट गया[1]"। इस कथन से भी यह अनुमान होता है कि सुलतान इस बार भी हारकर लौटा हो; क्योंकि इस प्रकार अपनी पहली हार का बदला लेने के लिये सुलतान महमूद ने पांच बार मेवाड़ पर चढ़ाइयां कीं, परन्तु प्रत्येक बार उसको हारकर लौटना पड़ा, जिससे उसने ताजख़ां को गुजरात के सुलतान कुतुबुद्दीन के पास भेजकर गुजरात तथा मालवे के सम्मिलित सैन्य से मेवाड़ पर आक्रमण करने और महाराणा को परास्त करने का प्रबन्ध किया था, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

नागोर की लड़ाई

इस महाराणा की नागोर की चढ़ाई के सम्बन्ध में फिरिश्ता लिखता है—"हि० स० ८६० (वि० सं० १५१३=ई० स० १४५६) में नागोर के स्वामी फ़ीरोज़ख़ां के मरने पर उसका बेटा शम्सख़ां नागोर का स्वामी हुआ, परन्तु उसके छोटे भाई मुजाहिदख़ां ने उसको निकालकर नागोर छीन लिया, जिससे वह भागकर सहायता के लिये राणा कुंभा के पास चला गया। राणा पहले से ही नागोर पर अधिकार करना चाहता था, इसलिये उसने उसकी सहायतार्थ नागोर पर

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२३-२४।

चढ़ाई कर दी। उसके नागोर पहुंचने पर वहां की सेना ने बिना लड़े ही शम्सख़ां को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया। राणा ने उसको नागोर की गद्दी पर इस शर्त पर बिठाया कि उसे राणा की अधीनता के चिह्नस्वरूप अपने क़िले का एक अंश गिराना होगा। तत्पश्चात् राणा चित्तौड़ को लौट आया। शम्सख़ां ने उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार क़िले को गिराने की अपेक्षा उसको और भी दृढ़ किया। इस-से अप्रसन्न होकर राणा बड़ी सेना के साथ नागोर पर फिर चढ़ा। शम्सख़ां अपने को राणा के साथ लड़ने में असमर्थ देखकर नागोर को अपने एक अधिकारी के सुपुर्द कर स्वयं सहायता के लिये अहमदाबाद गया। वहां के सुलतान कुतुबुद्दीन ने उसको अपने दरबार में रक्खा, इतना ही नहीं, किन्तु उसकी लड़की से शादी भी कर ली। फिर उसने मलिक गदाई और राय रामचन्द्र (अमीचन्द) की अधीनता में शम्सख़ां की सहायतार्थ नागोर पर सेना भेज दी। इस सेना के नागोर पहुंचते ही राणा ने उसे भी परास्त किया और बहुतसे अफ़सरों और सिपाहियों को मारकर नागोर छीन लिया[1]"।

फ़ारसी तवारीख़ों से तो नागोर की लड़ाई का इतना ही हाल मिलता है, परन्तु कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में लिखा है कि 'कुंभकर्ण ने गुजरात के सुलतान की विडंबना (उपहास) करते हुए नागपुर (नागोर) लिया, पेरोज (फ़ीरोज़) की बनवाई हुई ऊंची मसजिद को जलाया, क़िले को तोड़ा, खाई को भर दिया, हाथी छीन लिये, यवनियों को क़ैद किया और असंख्य यवनों को दण्ड दिया; यवनों से गौओं को छुड़ाया, नागपुर को गोचर बना दिया, शहर को मसजिदों सहित जला दिया और शम्सख़ां के ख़ज़ाने से विपुल रत्न-संचय छीना[2]'।

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ४०-४१। ऐसा ही वर्णन गुजरात के इतिहास मिराते सिकन्दरी में भी मिलता है (बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० १४८-४९)।

(२) *शेषागद्युतिगर्वरुन्नरपतेर्यस्येन्दुधामोज्ज्वला*
कीर्तिः शेषसरस्वती विजयिनी यस्यामला भारती।
शेषस्यातिधरः क्षमाभरभृतो यस्योरुशौर्यो भुजः
शेषं नागपुरं निपात्य च कथाशेषं व्यधाद्भूपतिः ॥ १८ ॥
शकाधिपानां व्रजतामधस्तादुदर्शयन्नागपुरस्य मार्गम्।
प्रज्वाल्य पेरोजमशीतिमुच्चां निपात्य तन्नागपुरं मनीरः ॥ १९ ॥

नागोर में अपनी सेना की बुरी तरह से हार होने के समाचार पाकर सुलतान कुतुबुद्दीन (कुतुबशाह) चित्तोड़ की तरफ़ चला। मार्ग में सिरोही का देवड़ा राजा उसे मिला और निवेदन किया कि मेरा आबू का किला राणा ने ले लिया है, उसे छुड़ा दीजिये। इसपर सुलतान ने अपने सेनापति मलिक शहबान (इमादुल्मुल्क) को आबू लेकर देवड़ा राजा के सुपुर्द करने को भेजा[1] और स्वयं कुंभलमेर (कुंभलगढ़) की तरफ़ गया। मलिक शहबान आबू की लड़ाई में बुरी तरह से हारा और अपनी सेना की बरबादी कराकर लौटा; इधर सुलतान भी राणा से सुलह कर गुजरात को लौट गया[2]।

गुजरात के सुलतान से लड़ाई

निपात्य दुर्गं परिखां प्रपूर्य गजान्गृहीत्वा यवनीश्च बध्वा ।
अदण्डयद्यो यवनाननन्तान् विडंबयन्गुर्जरभूमिभर्तुः ॥ २० ॥
लक्षाणि च द्वादशगोमतल्लीरमोचयद् दुर्यवनानलेभ्यः ।
स गोचरं नागपुरं विधाय चिराय यो ब्राह्मणसादकार्षीत् ॥ २१ ॥
मूलं नागपुरं महच्छकतरोरुन्मूल्य नूनं मही—
नाथो यं पुनरच्छिदत्समदहत्पश्चान्मशीत्या सह ।
तस्मान्म्लानिमवाप्य दूरमपतन् शाखाश्च पलाययहो
सत्य याति न को विनाशमधिक मूलस्य नाशे सति ॥ २२ ॥
अग्रहीदमितरत्नसंचयं कोशतः समसखानभूपते. ।
जांगलस्थलमगाहताहवे कुंभकर्णधरणीपुरन्दरः ॥ २३ ॥

चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से। ऊपर दी गई श्लोक-संख्या कुंभकर्ण के वर्णन की है।

(१) फ़िरिश्ता लिखता है—"नागोर की हार की ख़बर सुनते ही कुतुबुद्दीन राणा पर चढ़ा, परंतु चित्तोड़ लेने में अपने को असमर्थ जानकर सिरोही की तरफ़ गया, जहां के राजा का राणा से घनिष्ठ संबंध था। सिरोही के राजपूतों ने सुलतान का मुक़ाबला किया, जिनको उसने परास्त किया" (ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ४१)। फ़िरिश्ता का यह कथन विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि सिरोही के देवड़े सुलतान से नहीं लड़े; उन्होंने तो राणा से आबू दिलाने का निवेदन किया था, जिसे स्वीकार कर सुलतान ने इमादुल्मुल्क को आबू छीनने के लिये भेजा था, जैसा कि मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है (बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० १४६ और ऊपर पृ० ६१६)।

(२) बंब गे, जि० १, भाग १, पृ० २४२।

इस लड़ाई का वर्णन करते हुए फिरिश्ता लिखता है कि "कुंभलगढ़ के पास राणा ने मुसलमानों पर कई हमले किये, परन्तु वह कई बार हारा और बहुतसे रुपये तथा रत्न देने पर कुतुबुद्दीन संधि करके लौट गया"[1]। फ़िरिश्ता का यह कथन भी पक्षपात-रहित नहीं है, क्योंकि यदि कुतुबुद्दीन नज़राना लेने पर सन्धि करके लौटा होता, तो मालवे और गुजरात के दोनो सुलतानों को परस्पर मिलकर मेवाड़ पर चढ़ने की आवश्यकता ही न रहती। वास्तव में कुतुबुद्दीन भी महमूद ख़िलजी के समान महाराणा से हारकर लौटा था,[2] इसी से दोनों सुलतानों को एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करनी पड़ी थी।

मालवा और गुजरात के सुलतानों की एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई

जब सुलतान कुतुबुद्दीन कुंभलगढ़ से अहमदाबाद को लौट रहा था, तब मार्ग मे मालवे के सुलतान महमूद ख़िलजी का राजदूत ताजख़ां उसके पास पहुंचा और उससे कहा कि मुसलमानों मे परस्पर मेल न होने से काफ़िर (हिन्दू) शान्तिपूर्वक रहते हैं। शरअ के अनुसार हमें परस्पर भाई बनकर रहना तथा हिन्दुओ को दबाना चाहिये और विशेषकर राणा कुम्भा को, जो कई बार मुसलमानो को हानि पहुंचा चुका है। महमूद ने प्रस्ताव किया कि एक ओर से मैं उस (राणा) पर हमला करूंगा और दूसरी तरफ़ से सुलतान कुतुबुद्दीन करे, इस प्रकार हम उसको बिलकुल नष्ट कर उसका मुल्क आपस में बांट लेंगे[3]। फ़िरिश्ता से पाया जाता है कि राणा का मुल्क बांटने में दोनों सुलतानों के बीच यह तय हुआ था कि मेवाड़ के दक्षिण के सब शहर, जो गुजरात की तरफ़ हैं, कुतुबुद्दीन और मेवाड़ (खास) तथा अहीरवाड़े (?) के ज़िले महमूद लेवे। इस प्रकार का अहदनामा चांपानेर में लिखा गया और उसपर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियो ने हस्ताक्षर किये[4]।

अब दोनों तरफ़ से मेवाड़ पर चढ़ाई करने की तैयारियां हुईं। फ़िरिश्ता लिखता है—"दूसरे वर्ष चांपानेर की सन्धि के अनुसार कुतुबशाह चित्तोड़ के

(१) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४१।

(२) हरबिलास सारडा, महाराणा कुंभा, पृ० ४७-४८। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३२१।

(३) मिराते सिकन्दरी, बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १५०।

(४) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ४१-४२।

लिये चला, मार्ग में आबू का किला लिया और वहां कुछ सेना रखकर आगे बढ़ा। इसी समय सुलतान महमूद खिलजी मालवे की तरफ़ से राणा के इलाक़ों पर चढ़ा। राणा का विचार प्रथम मालवावालों से लड़ने का था, परन्तु कुतुबशाह जल्दी से आगे बढ़ता हुआ सिरोही के पास पहुंचा और उसने पहाड़ी प्रदेश में प्रवेश कर राणा को लड़ने के लिये बाध्य किया, जिसमें राजपूत सेना हार गई। कुतुबशाह आगे बढ़ा और राणा लड़ने को आया। राणा दूसरी बार भी हारकर पहाड़ों में चला गया, फिर चौदह मन सोना और दो हाथी लेकर कुतुबशाह गुजरात को लौट गया। महमूद भी अच्छी रक़म लेकर मालवे को चला गया[1]"। फ़िरिश्ता का यह कथन ठीक वैसा ही है, जैसा कि मुसलमानों के हिन्दुओं से हारने पर मुसलमान इतिहास-लेखक किया करते हैं। चांपानेर के अहदनामे के अनुसार राणा कुंभा को नष्ट कर उसका मुल्क आपस में बांटने का निश्चय कहां तक सफल हुआ यह पाठक भली भांति समझ सकते हैं। फ़िरिश्ता के कथन से यही प्रतीत होता है कि कुतुबुद्दीन (कुतुबशाह) के हारकर लौट जाने से महमूद भी मालवे को बिना लड़े चला गया हो। कुतुबुद्दीन के चौदह मन सोना लेने और महमूद को अच्छी रक़म मिलने की बात पराजय की मलिन दीवार पर चूना पोतकर उसे सफ़ेद बनाना ही है। महाराणा कुंभा के समय की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) मार्गशीर्ष वदि ५ की कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में गुर्जर (गुजरात) और मालवा (दोनों) के सुरत्राणों के सैन्यसमुद्र को मथन करना लिखा है,[2] जो फ़िरिश्ता से अधिक विश्वास के योग्य है।

नागोर पर फिर महाराणा की चढ़ाई

फ़िरिश्ता लिखता है कि हि० स० ८६२ (वि० सं० १५१५=ई० स० १४५८) में राणा पचास हज़ार सवार और पैदल सेना के साथ नागोर पर चढ़ा, जिसकी खबर नागोर के हाकिम ने गुजरात के सुलतान के पास पहुंचाई। इन दिनों कुतुबशाह शराब में मस्त होकर पड़ा रहता था, जिससे वह सचेत नहीं किया जा सकता था। सुलतान की

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ४२।

(२) स्फूर्जद्गुर्जरमालवेश्वरसुरत्राणोरुसैन्यार्णव-
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवारणवनप्राग्भारकुंभोद्भवः ।······॥१७१॥

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में कुंभकर्ण का वर्णन।

यह दशा देखकर इमादुल्मुल्क सेना एकत्रित कर अहमदाबाद से चला, परन्तु एक मंज़िल चलने के बाद उसे लड़ाई का सामान दुरुस्त करने के लिये एक मास तक ठहरना पड़ा। राणा ने जब यह सुना कि सुलतान की फ़ौज रवाना हो गई है, तब वह चित्तोड़ को चला गया और सुलतान भी अहमदाबाद लौटकर फिर शराबख़ोरी में लग गया[1]।

वीरविनोद में इस लड़ाई के प्रसंग में लिखा है कि नागोर के मुसलमानों ने हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिये गोवध करना शुरू किया। महाराणा ने मुसलमानों का यह अत्याचार देखकर पचास हज़ार सवार लेकर नागोर पर चढ़ाई की और क़िले को फ़तह कर लिया, जिसमें हज़ारों मुसलमान मारे गये[2]। वीरविनोद का यह कथन ही ठीक प्रतीत होता है।

कुतुबुद्दीन की फिर कुंभलगढ़ पर चढ़ाई

इसी वर्ष के अन्त में कुतुबुद्दीन सिरोही पर चढ़ा, जहां का राजा, जो राणा कुंभा का संबंधी था, मुसलमानों से डरकर कुंभलमेर की पहाड़ियों मे चला गया। गुजरातियों ने उसका मुल्क उजाड़ दिया; फिर सुलतान ने कुंभलगढ़ तक राणा का पीछा किया, परन्तु जब उसको यह मालूम हुआ कि वह किला विजय नहीं किया जा सकता, तब मुल्क को लूटता हुआ अहमदाबाद लौट गया[3]। इस प्रकार महमूदशाह ख़िलजी की तरह कुतुबुद्दीन भी कई बार महाराणा कुंभा से लड़ने को आया, परंतु प्रत्येक बार हारकर लौटा।

महाराणा कुंभकर्ण के युद्धों तथा विजयों का जो कुछ वर्णन हमने ऊपर किया है, उसके अतिरिक्त और भी विजयों का उल्लेख शिलालेखादि में संक्षेप से मिलता है।

महाराणा की अन्य विजय

वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है कि इस महाराणा ने नारदीयनगर के स्वामी से लड़कर उसकी स्त्रियों को अपनी दासियां बनाई,[4] अपने शत्रु—शोध्यानगरी के राजा—

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४३।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३१।

(३) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४३।

(४) *या नारदीयनगरावनिनायकस्य नार्यो निरंतरमचीकरदत्र दास्यं।*
तां कुंभकर्णनृपतेरिह कः सहेत बाणावलीमसमसंगरसंचरिष्णोः ॥२४६॥

को अपने पैरों पर झुकाया,[1] हम्मीरपुर के युद्ध में रणवीर विक्रम को कैद किया,[2] धान्यनगर को जड़ से उखाड़ डाला,[3] जनकाचल को हस्तगत किया, चम्पवती नगरी को सताया,[4] मल्लारण्यपुर (मलारणा) को जला दिया, सिंहपुर (सीहोर) में शत्रुओं को तलवार के घाट उतारा,[5] रणस्तम्भ (रणथम्भोर) को जीता,[6] आम्रदाद्रि (आंबेर) को पीस डाला, कोटड़े के युद्ध में सिंह-समान पराक्रम दिखाया,[7] विशालनगर (वीसलनगर) को समूल नष्ट किया[8] और अपने अश्व-सैन्य से गिरिपुर (डूंगरपुर) पर आक्रमण किया, तो रणवाद्यों का घोष सुनते ही वहां का राजा (रावल) गैपाल (गैबा या गोपाल) किला छोड़कर भाग गया[9]। उसी संवत् की कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में डीडवाणे की नमक की खान से कर लेना[10] और विशाल सैन्य से खण्डेले को तोड़ना,[11] तथा एकलिंगमाहात्म्य[12] में

---

(१) अरिंदमः स्वाङ्घ्रिसरोजलग्नं विशोष्य शोभ्याधिपतिप्रतीपं ।···॥२४८॥

(२) विगृह्य हम्मीरपुरं शरोत्करैर्निगृह्य तस्मिन् रणवीरविक्रमं ।······॥२५०॥

(३) स धन्यो धान्यनगरमामूलादुदमूलयत् ।······॥ २५३ ॥

(४) जनकाचलमग्रहीदलं महतीं चंपवतीमतीतपत् । · · ॥ २५८ ॥

(५) मल्लारण्यपुरं वरेण्यमनलज्वालावलीढं व्यधा—
द्वीरः सिंहपुरीमबीभरदमिप्रध्वस्तवैरिव्रजैः ।······॥ २६० ॥

(६) कृत्वा··· ·····वीरो रणस्तंभं तथाजयत् ॥ २६१ ॥

(७) आम्रदाद्रि लनेन दारुणः कोटडाकलहकेलिकेसरी । ···· ॥२६२॥

(८) इसके अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ६०५, टि० ४।

(९) तन्नागरीनयननीरतरंगिणीनामंगीकृतं किमु समुत्तरणं तुरंगैः ।
श्रीकुंभकर्णनृपतिः प्रवितीर्णभेरीरालोडयद्गिरिपुरं यदमीभिरुग्रः ॥२६६॥
यदीयगर्जद्रणतूर्यघोषगिहस्वनाकर्णननष्टशौर्यः ।
विहाय दुर्गं सहसा पलायांचकार गैपालशृगालबालः ॥ २६७ ॥

(१०) कुंभकर्णनृपतिः करप्रदं डिडुआणलवणाकरं व्यधात् ।····· ॥ ६ ॥

(११) ····· ········ ······बाणावलीविदलितारिबलो नृपालः ।
खंडेलखंडनविधिं व्यतनोदतुच्छसैन्योच्छलद्बहलरेणुविलुप्तभानुः ॥२५॥

(१२) एकलिंगमाहात्म्य में २०४ श्लोकों के एक अध्याय का नाम 'राजवर्णन' है; इसके अधिकांश श्लोक शिलालेखों से ही उद्धृत किये गये हैं। खंडित या बिगड़े हुए कुछ

वायसपुर को नष्ट करना और मुसलमानों से टोड़ा छीनना लिखा है[1]।

संस्कृत के पण्डित लौकिक नामों को संस्कृत शैली के बना डालते हैं, जिससे उनमें से कई एक का पता लगाना कठिन हो जाता है। नारदीयनगर, शोध्यानगरी, हम्मीरपुर, धान्यनगर, जनकाचल, चम्पवती, कोटड़ा और वायसपुर का ठीक ठीक पता नहीं चला, तो भी प्रारंभ के कुछ नाम मालवे से संबन्ध रखते हों तो आश्चर्य नहीं। उपर्युक्त विजय कब कब हुई यह जानने के लिये साधन उपस्थित नहीं हैं, तो भी इतना तो निश्चित है कि ये सब विजय वि० सं० १५१७ से पूर्व किसी समय हो चुकी थी।

महाराणा कुंभा शिल्पशास्त्र का ज्ञाता होने के अतिरिक्त शिल्प कार्यों का भी बड़ा प्रेमी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि मेवाड़ के छोटे-बड़े ८४ किलों में से ३२ किले[2] तथा अनेक मन्दिर, जलाशय आदि कुंभा ने बनवाये थे। इनमें से जिन जिन का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है, वह नीचे लिखे अनुसार है।

महाराणा के बनवाये हुए किले, मन्दिर, तालाब आदि

कुंभकर्ण ने चित्तोड़ के किले को विचित्रकूट (भिन्न भिन्न प्रकार के शिखरों अर्थात् बुर्ज़ोंवाला) बनवाया[3]। पहले इस किले पर जाने के लिये रथमार्ग (सड़क) नहीं था, इसलिये उसने रथमार्ग बनवाया[4] और रामपोल

शिलालेखों के कई एक श्लोकों की पूर्ति एकलिंगमाहात्म्य के इस अध्याय से हो जाती है।

(१) .... भक्त्वा पुरं वायसं ।
तोडामडन्तमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकं दुर्जयं
जीव्याद्वर्षशतं सभृत्यतुरगः श्रीकुंभकर्णो भुवि ॥ १५७ ॥

(२) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३४।

(३) असौ निर्गमदनचद्रतां र्निचित्रकूटं किल चित्रकूटं ।
स्वरा...... .. .   .
मकरोन्महीन्द्रो महा .   र्नुर्गिवोदयाद्रि ॥ २६ ॥

महाराणा कुंभा के बनवाये .. आनों के सबध में जो मूलपाठ नीचे दिये गये हैं, उनमें जहां शिलालेख का नाम नहीं दि.., व कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के हैं।

(४) उच्चैर्मेरुगिरेर्नवो दिनकरः श्रीचित्रकूटाचले
भव्यां सद्रथपद्धतिं जनसुखायाचूलमूलं व्यधात् ॥ ३४ ॥
रामः सगमो विरथो महोच्चैः पद्भ्यामगच्छत्किल चित्रकूटे ।
इतीव कुंभेन महीधरेण किमत्र रामाः सरथा नियुक्ताः ॥ ३५ ॥

(रामरथ्या[1]), हनुमानपोल (हनुमानगोपुर[2]), भैरवपोल (भैरवांकविशिखा[3]), महालक्ष्मीपोल (महालक्ष्मीरथ्या[4]), चामुंडापोल (चामुंडाप्रतोली[5]), तारापोल (ताराथ्या[6]) और राजपोल (राजप्रतोली[7]) नाम के दरवाज़े निर्माण कराये। उसने वहीं सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ बनवाया, जिसकी समाप्ति वि० सं० १५०५ माघ

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति बनानेवाले पंडित ने जिस चित्रकूट में रघुपति रामचन्द्र गये थे, उसको चित्तोड़ मान लिया है, जो भ्रम है, क्योंकि रामचन्द्र से संबंध रखनेवाला प्रसिद्ध चित्रकूट प्रयाग से दक्षिण में है, न कि मेवाड़ में।

(१) *इतीव दुर्गे खलु रामरथ्या स सेतुबंधामकरोन्महींद्रः ॥ ३६ ॥*

इस श्लोक में 'सेतुबंध' शब्द का अभिप्राय कुकड़ेश्वर के कुंड के पश्चिम की ओर के बांध से होना चाहिये।

(२) *हनूमन्नामाकं व्यरचयदसौ गोपुरमिह ॥ ३८ ॥*

(३) *भैरवांकविशिखा मनोरमा भाति भूरमुकुटेन कारिता ।...॥ ३६ ॥*

(४) *इति प्रायः शिक्षानिपुणकमलाधिष्ठिततनु–*
र्महालक्ष्मीरथ्या नृपतिवृढेनात्र रचिता ॥ ४० ॥

(५) *चामुंडायाः कापि तस्याः प्रतोली भव्या भाति क्ष्माभुजा निर्मितोच्चा ॥४१॥*

(६) *श्रीमत्कुंभक्ष्मानुजा कारितोर्वी ....रम्यत्नीलागवाक्षा ।*
तारारथ्या शोभते यत्र ताराश्रेणी ....समिलत्तोरणाश्री ॥ ४२ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में पहले ४० श्लोकों में महाराणा मोकल तक का, फिर १ से अंक शुरू कर १८७ श्लोकों तक कुंभकर्ण का और अन्त के ६ श्लोकों में प्रशस्तिकार का वर्णन है। वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति में, जो हमें मिली, कुंभकर्ण के वर्णन के श्लोक ४३ से १२४ तक नहीं हैं, जिनकी शिलाएं उक्त संवत् से पूर्व नष्ट हो गई होंगी। ४२वें श्लोक में तारापोल तक का वर्णन है, अन्य दरवाज़ों का वर्णन आगे के श्लोकों में होगा। चित्तोड़गढ़ के राजपोल (महलों की पोल) सहित ६ दरवाज़े हैं, उनमें से सात के नाम ऊपर मिलते हैं, दो के नाम जो हिस्सा नष्ट हो गया है, उसमें रह गये होंगे। तीन दरवाज़ों (रामपोल, भैरवपोल और हनुमानपोल) के नाम अब तक वही हैं, जो कुंभा के समय में थे। लक्ष्मणपोल शायद लक्ष्मीपोल हो।

(७) *राजप्रतोली मणिरश्मिरक्ता सदिंद्रनीलद्युतिनीलकांतिः ।*
सस्फाटिका शारदवारिदश्रीर्विभाति सेंद्रायुधमंडनेव ॥ १२५ ॥

राजप्रतोली (राजपोल) शायद चित्तोड़ के राजमहलों के बाहरी दरवाज़े का नाम हो।

सुदि १० को हुई[1]। कुंभस्वामी[2] और आदिवराह[3] के मन्दिर, रामकुण्ड, जलयन्त्र (अरहट, रहँट) सहित कई बावड़ियां[4] और कई तालाब एवं वि० सं० १५०७ कार्तिक वदि ६ को चित्तोड़ पर विशिखा[5] (पोल) बनवाई।

---

(१) पुण्ये पंचदशे शते व्यपगते पचाधिके वत्सरे
माघे मासि वलक्षपक्षदशमीदेवेज्यपुष्यागमे ।
कीर्तिस्तंभमकारयन्नरपतिः श्रीचित्रकूटाचले
नानानिर्मितनिर्जरावतरणैर्मेरोर्हसत श्रिय ॥ १८५ ॥

कीर्तिस्तंभ के लिये देखो ऊपर पृ० ३५५-५६।

(२) सर्वोर्वीतिलकोपमं मुकुटवच्छ्रीचित्रकूटाचले
कुंभस्वामिन आलय व्यरचयच्छ्रीकुंभकर्णो नृप॰ ॥ २८ ॥

(३) अकारयच्चादिवराहगेहमनेकधा श्रीरमणस्य मूर्तिः ॥ ३१ ॥

कुंभस्वामी और आदिवराह के दोनों विष्णुमंदिर चित्तोड़ मे एक ही ऊंची कुर्सी पर पास पास बने हुए हैं। एक बहुत ही बड़ा और दूसरा छोटा है। बड़े मंदिर की प्राचीन मूर्ति मुसलमानों के समय तोड़ डाली गई, जिसमे नई मूर्ति पीछे से स्थापित की गई है। इस मंदिर की भीतरी परिक्रमा के पिछले ताक में वराह की मूर्ति विद्यमान है। अब लोग इसी को कुंभस्वामी (कुंभश्याम) का मंदिर कहते हैं। लोगों में यह प्रसिद्धि हो गई है कि बड़ा मंदिर महाराणा कुंभा ने और छोटा उसकी राणी मीराबाई ने बनवाया था, इसी जनश्रुति के आधार पर कर्नल टॉड ने मीराबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिख दिया है, जो मानने के योग्य नहीं है। मीरांबाई महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की स्त्री थी, जिसका विशेष परिचय हम महाराणा सांगा के प्रसंग मे देंगे। उक्त बड़े मंदिर के सभामंडप के ताकों में कुछ मूर्तियां स्थापित हैं, जिनके आसनों पर वि० सं० १५०५ के कुंभकर्ण के लेख हैं, जिनसे पाया जाता है कि वह मंदिर उक्त संवत् में बना होगा।

(४) रामकुंडममराधिपचापप्राज्यदीधितिमनोहरगेहं ।
दीर्घिकाश्च जलयंत्रदर्शनव्यग्रनागरिकदत्तकौतुकाः ॥ ३३ ॥

इनमें से एक भीमलत्त नाम की बावड़ी होनी चाहिये।

(५) वर्षे पंचदशे शते व्यपगते सप्ताधिके कार्तिक-
स्याद्यानंगतिथौ नवीनविशिषां(खा) श्रीचित्रकूटे व्यधात् ॥ १८४ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति बनानेवाले ने भैरवपोल तथा कुंभलगढ़ की पोलों (दरवाज़ों) का वर्णन करते हुए विशिखा शब्द का प्रयोग पोल (दरवाज़े) के अर्थ मे किया है। इस श्लोक में "नवीनविशिखां" (नया दरवाज़ा) किसका सूचक है, यह ज्ञात नहीं हुआ। यदि "नवीन-

वि० सं० १५१५ चैत्र वदि १३ को कुंभमेरु[1] (कुंभलगढ़) की प्रतिष्ठा हुई। उस क़िले के चार दरवाज़े (विशिखा,[2] पोल) बनवाये और मांडव्यपुर (मंडोवर) से लाई हुई हनुमान की मूर्ति[3] तथा एक अन्य शत्रु के यहां से लाई हुई गणपति की मूर्ति[4] वहां स्थापित की। वहीं उसने कुंभस्वामी का मन्दिर[5] और जलाशय[6] तथा एक बाग़[7] निर्माण कराया।

एकलिंगजी के मन्दिर को, जो खण्डित हो गया था, नया बनवाकर[8] उसने

विशिखाः" शुद्ध पाठ माना जाय, तो 'नये दरवाज़े' अर्थ होगा और यह माना जायगा कि चित्तोड़ के क़िले की सड़क पर के दरवाज़े वि० सं० १५०७ में बने होंगे।

(१) श्रीविक्रमात्पंचदशाधिकेस्मिन् वर्षे शते पंचदशे व्यतीते ।
चैत्रासितेनंगतिथौ व्यधायि श्रीकुंभमेरुर्वसुधाधिपेन ॥ १८४ ॥

(२) चतसृषु विशिखाचतुष्टयीय स्फुरति हरित्सु च यत्न दुर्गवर्ये ॥ १३५ ॥

(३) आनीय माडव्यपुराद्धनूमान् संस्थापितः कुंभलमेरुदुर्गे ॥ ३ ॥
यह मूर्ति कुंभलगढ़ की हनुमानपोल पर स्थापित है।

(४) आनयद्द्विरदवक्त्रमादरादुद्धतमतिनृपालदुर्गतः ।
दुर्गवर्यशिखरे निजे तथास्थापयत्कृतमहोत्सवो नृपः ॥ १४६ ॥

(५) तत्र तोरणलसन्मणि कुंभस्वामिमंदिरमकारयन्महत् ।......॥ १३० ॥

(६) सनिवेश्य कुंभनृपतिः सरोद्भुतं
निरमापयत् शशिकलोज्ज्वलोदकं ।......॥ १३१ ॥

(७) वृंदावनं चैत्ररथं च नंदनं मनोज्ञभृंगध्वनि गंधमादनं ।
नृपाललीलाकृतवाटिकामिषाद्वसंत्यमून्यत्र समेत्य भूधरे ॥ १४३ ॥

(८) एकलिंगनिलयं च खंडितं प्रोच्चतोरणलसन्मणिचक्रं ।
भानुबिंबमिलितोच्चपताकं सुंदरं पुनरकारयन्नृपः ॥ २४० ॥
इत्थं चारु विचार्य कुंभनृपतिस्तत्रैकलिंगे व्यधा-
द्रम्यान् मंडपहेमदंडकलशान् त्रैलोक्यशोभातिगान् ॥ २४१ ॥
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

एकलिंगजी के मंदिर का जीर्णोद्धार कराकर महाराणा कुंभकर्ण ने चार गांव—नागहृद (नागदा), कठडावण, मलकखेटक (मलकखेड़ा) और भीमाणा (भीमाणा)—उक्त मंदिर के पूजन व्यय के लिये भेट किये थे (भावनगर इन्स्क्रिपृशन्स, पृ० १२०, श्लोक ४८)।

मण्डप, तोरण, ध्वजादण्ड और कलशों से अलंकृत किया तथा उक्त मन्दिर के पूर्व में कुंभमंडप नामक स्थान निर्माण कराया[1]।

वसन्तपुर (सिरोही राज्य में) नगर को, जो पहले उजड़ गया था, उसने फिर बसाया और वहां पर विष्णु के निमित्त सात जलाशय निर्माण कराये;[2] आबू छीनकर अचलेश्वर के पास के शृंग पर वि० सं० १५०६ माघ सुदि पूर्णिमा को अचलदुर्ग की प्रतिष्ठा की[3]। अचलेश्वर के पास कुंभस्वामी का मन्दिर[4] और उसके निकट एक सरोवर[5] तथा चार और जलाशय[6] (वहां) बनवाए।

ऊपर लिखे हुए किले, कीर्तिस्तम्भ, मन्दिर आदि के देखने से अनुमान होता है कि उनके निर्माण में करोड़ों रुपये व्यय हुए होंगे। कुंभा की अतुल धनसम्पत्ति का अनुमान उन स्थलों को प्रत्यक्ष देखने से ही हो सकता है। कीर्तिस्तम्भ तो

---

(१) *अमराधिपप्रतिमवैभवो नृगिरिदुर्गराजमपि कुंभमंडपं ।*
स्फुरदेकलिंगनिलयाच्च पूर्वतो निरमापयत्सकलभूतलाद्भुतं ॥ १० ॥

इस स्थान को इस समय मीरांबाई का मंदिर कहते हैं और इसका उपयोग तेल आदि सामान रखने के लिये किया जाता है।

(२) *असौ महौजाः प्रवरं वसंतपुरं व्यधत्ताभिनवो वसतः ॥ ८ ॥*
सप्तसागरविजित्वरानसौ सप्तपल्वलवरानकारयत् ।
श्रीवसंतपुरनाम्नि चक्रिणः प्रीतये वसुमतीपुरंदरः ॥ ९ ॥

(३) *सत्प्राकारप्रकारं प्रचुरसुरगृहाडंबरं मंजुगुंज-*
द्भृंगश्रेणीवरेण्योपवनपरिसरं सर्वसंसारसारं ।
नंदव्योमेषु शीतद्युतिमितिरुचिरे वत्सरे माघमासे
पूर्णायां पूर्णरूपं व्यरचयदचलं दुर्गमुर्वीमहेंद्रः ॥ १८६ ॥

(४) इसके मूल अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ५१७, टि० २, श्लो० १२।

(५) *कुंभस्वामिगणोत्र सुंदरसरोराजीव राजीमिल-*
द्रोलंबावलिकेलये व्यरचयत्सूत्रामवामभ्रुवा(?) ॥ १३ ॥

यह जलाशय अचलेश्वर के मंदिर के पासवाली मंदाकिनी का सूचक है, जिसके तट पर परमार राजा धारावर्ष की धनुष-सहित पाषाण की मूर्ति और पत्थर के तीन भैंसे खड़े हुए हैं।

(६) *चतुरश्चतुरो जलाशयान् चतुरो वारिनिधीनिवापरान् ।*
स किलार्बुदशेप(ख)रे नृपः कमलाकामुककेलये व्यधात् ॥ १५ ॥

"भारत भर में हिन्दू जाति की कीर्ति का एक अलौकिक स्तम्भ है, जिसके महत्त्व और व्यय का अनुमान उसके देखने से ही हो सकता है"।

महाराणा कुंभा जैसा वीर और युद्धकुशल था, वैसा ही पूर्ण विद्यानुरागी, स्वयं बड़ा विद्वान् और विद्वानों का सम्मान करनेवाला था। एकलिंगमाहात्म्य में

महाराणा का विद्यानुराग

उसको वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण, राजनीति और साहित्य[2] में निपुण बताया है। उसने संगीत के विषय के 'संगीतराज', 'संगीतमीमांसा' एवं 'सूडप्रबन्ध'[3](?) नामक ग्रंथों की

(१) कुंभकर्ण के समय भिन्न भिन्न धर्म के लोगों ने भी अनेक मंदिर बनवाये थे। उक्त महाराणा के बसाये हुए राणपुर नगर में, कुंभा के प्रीतिपात्र शाह गुणराज के साथ रहकर, प्राग्वाट-(पोरवाड़) वंशी सागर के पुत्र कुरपाल के बेटे रत्ना तथा उसके पुत्र-पौत्रों ने 'त्रैलोक्यदीपक' नामक युगादीश्वर का सुविशाल चतुर्मुख मंदिर उक्त महाराणा से आज्ञा पाकर वि० सं० १४९६ में बनवाया, जो प्रसिद्ध जैन मंदिरों में से एक है। इसी तरह गुणराज ने अजाहरि (अजारी), पिण्डरवाटक (पींडवाड़ा, दोनों सिरोही राज्य में) तथा सालेरा (उदयपुर राज्य में) में नवीन मंदिर बनवाये और कई पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया (भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ११४-१५)। महाराणा कुंभा के खजानची वेला ने, जो साह केला का पुत्र था, वि० सं० १५०५ में चित्तोड़ पर शान्तिनाथ का एक सुन्दर मंदिर बनवाया, जिसको इस समय 'शृंगार चौरी' कहते हैं (देखो ऊपर पृ० ३५६। राजपूताना म्यूज़ियम् की रिपोर्ट, ई० स० १९२०-२१, पृ० ५, लेख-संख्या १०)। ऐसे ही सेमा गांव (एकलिंगजी से कुछ मील दूर) की पहाड़ी पर का शिव मंदिर, वसंतपुर, भूला आदि के जैन मंदिर तथा कई अन्य देवालय बने, जैसा कि उनके लेखों से पाया जाता है। इनसे अनुमान होता है कि कुंभा के राज्य-काल में प्रजा सम्पन्न थी।

(२) *वेदा यन्मौलिरत्नं स्मृतिविहितमत सर्वदा कंठभूषा*
मीमांसे कुंडले द्वे हृदि भरतमुनिव्याहृत हारवल्ली।
सर्वांगीण प्रकृष्टं कवचमपि परे राजनीतिप्रयोगाः
सार्वज्ञ बिभ्रदुच्चैरगणितगुणभूर्भासते कुंभभूपः ॥ १७२ ॥
अष्टव्याकरणी(?) विकास्युपनिषत्स्पष्टाष्टदंष्ट्रोत्कटः
षट्तर्की(?) विकटोक्तियुक्तिविसरत्प्रस्फारगुंजारवः।
सिद्धांतोद्धतकाननैकवसतिः साहित्यभूक्रीडनो
गर्जं···दिगुणान्विदार्य ······ ·······प्रज्ञास्फुरत्केसरी ॥ १७३ ॥
(एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन अध्याय)।

यहां से नीचे के अवतरण कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के हैं।

(३) *आलोड्याखिलभारतीविलसितं संगीतराजं व्यधात्*

रचना की और चण्डीशतक की व्याख्या तथा गीतगोविन्द पर रसिकप्रिया नाम की टीका लिखी। इनके अतिरिक्त वह चार नाटकों का रचयिता था; जिनमें उसने महाराष्ट्री, कर्णाटी और मेवाड़ी भाषाओं का प्रयोग भी किया था[१]। वह कवियों का शिरोमणि, वीणा बजाने में अतिनिपुण[२] और नाट्यशास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञाता था, जिससे वह नव्यभरत (अभिनव-भरताचार्य[३]) कहलाता और नन्दिकेश्वर के मत का अनुसरण करता था[४]। उसने संगीतरत्नाकर की भी टीका की[५] और भिन्न भिन्न रागों तथा तालों के साथ गाई जानेवाली अनेक देवताओं की स्तुतियां बनाईं, जो एकलिंगमाहात्म्य के रागवर्णन अध्याय में संगृहीत हैं[६]। शिल्पसम्बन्धी अनेक पुस्तकें भी उसके आश्रय में बनीं। सूत्रधार

औधत्यावधिरंजसा समतनोत्सूडप्रबधाधिपं ।

(१) नानालङ्कृतिसंस्कृतां व्यरचयच्चण्डीशतव्याकृतिं
वागीशो जगतीतलं कलयति श्रीकुम्भदंभात्किल ॥ १५७ ॥
येनाकारि मुरारिसंगतिरसप्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिर्व्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके ।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय-
द्वाणीगुम्फमयं चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात् ॥ १५८ ॥

(२) सकलकविनृपाली मौलिमाणिक्यरोचि-
र्मधुररणितवीणावाद्यवैशद्यविदुः ।
मधुकरकुललीलाहारि रसाली
जयति जयति कुंभो भूरिशौर्यांशुमाली ॥ १६० ॥

(३) नाटकप्रकरणांकवीथिकानाटिकासमवकारभाणके ।
प्रोल्लसत्प्रहसनादिरूपके नव्य एष भरतो महीपतिः ॥ १६७ ॥

(४) भारतीयरसभावदृष्टयः प्रेमचातकपयोदवृष्टयः ।
नंदिकेश्वरमतानुवर्तनाराधितत्रिनयनं श्रयंति यं ॥ १६८ ॥

(५) रायसाहिब हरबिलास सारड़ा, महाराणा कुंभा, पृ० २२।

(६) इति महाराजाधिराजरायरायांराणेरायमहाराणाकुंभकर्णमहेन्द्रेण विरचिते मुखवाद्यक्षीरसागरे रागवर्णनो नाम.... (एकलिंगमाहात्म्य)।

(सुथार) मण्डन ने देवतामूर्ति-प्रकरण, प्रासादमण्डन, राजवल्लभ, रूपमण्डन, वास्तुमण्डन, वास्तु-शास्त्र, वास्तुसार और रूपावतार, मंडन के भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और मंडन के पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरणी, कलानिधि तथा द्वारदीपिका नामक पुस्तकों की रचना की[1]। उक्त महाराणा ने जय और अपराजित के मतानुसार कीर्तिस्तंभों की रचना का एक ग्रन्थ बनाया[2] और उसे शिलाओं पर खुदवाकर अपने कीर्तिस्तंभ के नीचे के हिस्से में बाहर की तरफ़ कहीं लगवाया था। उसकी पहली शिला के प्रारंभ का कुछ अंश मुझे कीर्तिस्तंभ के पास पत्थरों के ढेर में मिला, जिसको मैंने उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित किया। महाराणा कुंभा विद्वानों का भी बड़ा सम्मान करता था। उसके बनवाये हुए कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के अन्तिम श्लोकों से पाया जाता है कि उक्त प्रशस्ति के पूर्वार्द्ध की रचना कर उसका कर्ता कवि अत्रि मर गया, जिससे उत्तरार्द्ध की रचना उसके पुत्र महेश कवि ने की, जिसपर महाराणा कुंभा ने उसे दो मदमत्त हाथी, सोने की डंडीवाले दो चँवर और एक श्वेत छत्र प्रदान किया था[3]।

(१) श्रीधर रामकृष्ण भंडारकर, रिपोर्ट ऑफ़ ए सेकण्ड टूर इन् सर्च ऑफ़ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन राजपुताना एण्ड सैन्ट्रल इंडिया इन् १९०४-६ ई० सं०, पृ० ३८। ऑफ्रेक्ट्; कैटेलॉगस कैटेलोगरम्, भाग १, पृ० ७३०।

(२) *श्रीविश्वकर्मान्वयमहार्यवीर्यमाचार्यमुत्पत्तिविधावुपास्य ।*
स्तम्भस्य लक्ष्मा तनुते नृपालः श्रीकुंभकर्णो जयभाषितेन ॥ २ ॥
(मूल लेख से)।

(३) *अत्रिस्तत्तनयो नयैकनिलयो वेदान्तवेदस्थितिः*
मीमांसारसमांसलातुलमतिः साहित्यसौहित्यवान् ।
रम्यां सूक्तिसुधासमुद्रलहरीं सामिप्रशस्तिं व्यधात्
श्रीमत्कुंभमहीमहेन्द्रचरिताविष्कारिवाक्योत्तरां ॥ १८१ ॥
येनाप्तं मदगंधसिंधुरयुगं श्रीकुंभभूमीपतेः
सच्चामीकरचारुचामरयुगच्छत्रं शशांकोज्ज्वलं ।
तेनात्रेस्तनयेन नव्यरचना रम्या प्रशस्तिः कृता
पूर्णा पूर्णतरं महेशकविना सूक्तैः सुधास्यन्दिनी ॥ १८२ ॥
(कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान में मालवे और गुजरात के सुलतानों की एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई वि० सं० १४९६ (ई० स० १४४०) में होना लिखा है,[1] जो ठीक नहीं है। मालवे और गुजरात के सुलतानों ने वि० सं० १५१३ (ई० स० १४५६) में चांपानेर में सन्धि करने के पीछे एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की थी (देखो ऊपर पृ० ६१६)।

कर्नल टॉड और महाराणा कुंभा

उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि मालवे के सुलतान ने कुंभा से मिलकर दिल्ली के सुलतान पर चढ़ाई की, जिसमें उन्होंने झूंझणूं नामक स्थान पर दिल्ली के अन्तिम गोरी सुलतान को हराया[2]। यह कथन भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि महाराणा कुंभा तो मालवे के सुलतान का सहायक कभी बना ही नहीं और न उस समय दिल्ली में गोरी वंश का राज्य था। दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह और आलिमशाह सैयद तथा बहलोल लोदी कुंभा के समकालीन थे। इसी तरह उसमें यह भी लिखा है कि जोधा ने मंडोर पर अधिकार करते समय चूंडा के दो पुत्रों को मारा। इस प्रकार मंडोर के एक स्वामी (रणमल) के बदले में चित्तोड़ के घराने के दो पुरुष मारे गये, जिसकी 'मूंडकटी' में जोधा ने गोड़वाड़ का प्रदेश महाराणा को दिया[3]। इस कथन को भी हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि चौहानों के पीछे गोड़वाड़ का प्रदेश मेवाड़ के अधीन हो गया था और महाराणा लाखा के समय के लेखों से पाया जाता है कि घाणेरा (घाणेराव), नाणा और कोट सोलंकियान (जो गोड़वाड़ में हैं) उक्त महाराणा के राज्य के अन्तर्गत थे (देखो ऊपर पृ० ५८१)। महाराणा मोकल ने चूंडा को मंडोर का राज्य दिलाने के बाद उसके भाई सत्ता तथा भतीजे नरबद को कायलाणे की, जो मंडोर से निकट है, एक लाख की जागीर दी थी (देखो ऊपर पृ० ५८४)। ऐसी दशा में गोड़वाड़ का इलाका, जो मेवाड़ का ही था, जोधा ने मूंडकटी में दिया हो, यह संभव नहीं।

महाराणा कुंभा के सोने या चांदी के सिक्कों का उल्लेख[4] तो मिलता है,

(१) टॉ, रा, जि० १, पृ० ३३५।

(२) वही, जि० १, पृ० ३३५-३६।

(३) वही, जि० १, पृ० ३३०।

(४) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२१।

महाराणा कुंभा के सिक्के

परंतु अब तक सोने या चांदी का कोई सिक्का उपलब्ध नहीं हुआ। तांबे के पांच[1] प्रकार के सिक्के देखने में आये, जिनपर नीचे लिखे अनुसार लेख हैं—

	सामने की तरफ़	दूसरी तरफ़
१	श्रीकुंभल मेरु महा राणा श्री कुं भकर्णस्य	श्रीऐकलिं ग श्री स्य प्र सा दात १५२७
२	राणा श्री कुं श्री भ कर्णस्य	श्रीकुंभ लमेरु
३	राणा श्री कुंभकर्ण	श्री कुंभ लमेरु
४	राणा कुं- भकर्ण	श्री कुंभ लमेरु
५	कुंभ कर्ण	एक लिंग

ये सब सिक्के चौकोर हैं, जिनमें से पहला सबसे बड़ा, दूसरा व तीसरा उससे छोटे और चोथा तथा पांचवां उनसे भी छोटे हैं।

(१) ऊपर लिखे हुए पांच प्रकार के तांबे के सिक्कों में से पहले चार प्रकार के हमको मिले और अंतिम मिस्टर प्रिन्सेप को मिला था (जे प्रिन्सेप, एसेज ऑन् इंडियन् ऍण्टिक्विटीज़; जि० १, पृ० २९८, प्लेट २४, संख्या २६)। उक्त पुस्तक में 'कुंभकर्ण' को 'कमकंस्मी' और 'एकलिंग' को 'एकलिस' पढ़ा है, परंतु छाप में कुंभकर्ण और एकलिंग स्पष्ट है।

महाराणा के समय के शिलालेख

महाराणा कुंभा के समय के वि० सं० १४६१ से १५१८ तक के ६० से अधिक शिलालेख देखने में आये, यदि उन सब का संग्रह किया जाय, तो अनुमान २०० पृष्ठ की पुस्तक बन सकती है। ऐसी दशा में हम थोड़े से आवश्यक लेखों का ही नीचे उल्लेख करते हैं—

१—वि० सं० १४६१ कार्तिक सुदि २ का देलवाड़े (उदयपुर राज्य में) का शिलालेख[1]।

२—वि० सं० १४६४ आषाढ वदि ॥ (३०, ऽऽ, अमावास्या) का नांदिया गांव से मिला हुआ दानपत्र[2]।

३—वि० सं० १४६४ माघ सुदि ११ गुरुवार का नागदा नगर के अद्बुदजी (शांतिनाथ) की अतिविशाल मूर्ति के आसन पर का लेख[3]।

४—वि० सं० १४६६ का राणपुर के सुप्रसिद्ध जैन मंदिर में लगा हुआ शिलालेख, जो इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है[4]।

५—वि० सं० १५०६ आषाढ सुदि २ का देलवाड़ा गांव (आबू पर) के विमलशाह और तेजपाल के सुप्रसिद्ध मंदिरों के बीच के चौक में एक वेदी पर खड़ा हुआ शिलालेख, जिसमें आबू पर जानेवाले यात्रियों आदि से जो 'दाण' (राहदारी, ज़गात), मुंडिक (प्रतियात्री से लिया जानेवाला कर), वलाग्री (मार्गरक्षा का कर) तथा घोड़े, बैल आदि से जो कर लिये जाते थे, उनको माफ़ करने का उल्लेख है[5]।

६—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की चित्तोड़ के प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति। वह कई शिलाओं पर खुदी हुई थी, परंतु अब उनमें

(१) देखो ऊपर पृ० ५९०, टिप्पण २।

(२) देखो ऊपर पृ० ५९६, टि० १।

(३) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११२ और जैनाचार्य विजयधर्मसूरि; देवकुल-पाटक; पृ० १६।

(४) एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया, ई० स० १९०७-८, पृ० २१४-१५। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११४, और भावनगर-प्राचीन शोधसंग्रह, पृ० ५६-५८।

(५) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग १, पृ० ४५१-५२ और पृ० ४५१ के पास का फोटो।

से केवल दो ही शिलाएं—पहली और अंत के पूर्व की वहां विद्यमान हैं[1]। पहली शिला में १ से २८ तक के श्लोक हैं और अंत के पूर्व की शिला में १६८से१८७ तक के। अंत में लिखा है कि आगे का वर्णन लघुपट्टिका (छोटी शिला) में अंकक्रम से जानना चाहिये[2]। इस शिला की पहली पांच-छः पंक्तियां बिगड़ गई हैं। वि० सं० १७३५ में इस प्रशस्ति की अधिक शिलाएं वहां पर विद्यमान थीं, जिनकी प्रतिलिपि (नक़ल) उक्त संवत् में किसी पंडित ने पुस्तकाकार २२ पत्रों में की, जो मुझे मिल गई है[3]। उससे पाया जाता है कि पहले ४० श्लोकों में बप्प(बापा)वंशी हंमीर से मोकल तक का वर्णन है, तदनंतर फिर १ से श्लोकांक आरंभ कर १८७ श्लोकों में कुंभा का वर्णन किया है और अंत के ६ श्लोकों में प्रशस्तिकार तथा उसके वंश का परिचय है। उक्त प्रतिलिपि के लिखे जाने के समय भी कुछ शिलाएं नष्ट हो चुकी थीं, जिससे कुंभा के वर्णन के श्लोक ४३–१२४ तक जाते रहे, तिस पर भी जो कुछ अंश बचा वह भी इतिहास के लिये कम महत्त्व का नहीं है[4]।

७—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की कुंभलगढ़ के मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर की प्रशस्ति[5]। यह प्रशस्ति बड़ी बड़ी ५ शिलाओं पर खुदवाई गई थी, जिनमें से पहली शिला पर ६४ श्लोक हैं और उसमें देवमन्दिर, जलाशय आदि मेवाड़ के पवित्र स्थानों का वर्णन है। दूसरी शिला का एक छोटासा टुकड़ामात्र उपलब्ध हुआ है। तीसरी शिला के प्रारंभ में प्राचीन जनश्रुतियों के आधार पर गुहिल, बापा आदि का वृत्तान्त दिया है, फिर श्लोक १३८ से १७६ तक प्राचीन शिलालेखों के आधार पर राजवंश की नामावली (गुहिल से)

(१) क, आ स. इं, रि, जि० २३, प्लेट २०–२१।

(२) ॥ १८७ ॥ *अनंतरवर्णनं [उत्तर]लघुपट्टिकायां अंकक्रमेण वेदितव्यं* ॥ क; आ. स इं रिपोर्ट, जि० २३, प्लेट २१।

(३) ॥ *इति प्रशस्तिः समाप्ता* ॥ *संवत् १७३५ वर्षे फाल्गुन वदि ७ गुरौ लिखितेयं प्रशस्तिः* ॥ (हस्तलिखित प्रति से)।

(४) यह लेख अप्रकाशित है। इसकी बची हुई दोनों मूल शिलाएं कीर्तिस्तंभ की छत्री में विद्यमान हैं।

(५) इसकी बची हुई शिलाएं विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

एवं रावल रत्नसिंह तक का वृत्तान्त और सीसोदे के लक्ष्मसिंह का वर्णन है। चौथी शिला में १८०वां श्लोक उक्त लक्ष्मसिंह के सात पुत्रों सहित मारे जाने के वर्णन में है। फिर हंमीर के पिता अरिसिंह के वर्णन के अनन्तर हंमीर से लगाकर महाराणा मोकल तक का वृत्तान्त श्लोक २३२ तक लिखा गया है। श्लोक २३३ से कुंभकर्ण का वृत्तान्त आरंभ होकर श्लोक २७० के साथ इस शिला की समाप्ति होती है। इन ३८ श्लोकों में कुंभा के विजय का वर्णन भी अपूर्ण ही रह जाता है। पांचवीं शिला बिलकुल नहीं मिली, उसमें कुंभा की शेष विजयों, उसके बनाये हुए मन्दिर, किले, जलाशय आदि स्थानों और उसके रचे हुए ग्रंथों आदि का वर्णन होना चाहिये। उस शिला के न मिलने से कुंभा का इतिहास अपूर्ण ही समझना चाहिये। इस प्रशस्ति की रचना किसने की, यह भी उक्त शिला के न मिलने से ज्ञात नहीं हो सकता, परंतु कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के कुछ श्लोक इस प्रशस्ति में भी मिलते हैं, जिससे अनुमान होता है कि इस प्रशस्ति की रचना भी दशपुर (दशोरा) जाति के महेश कवि ने की हो। यदि इसकी रचना किसी दूसरे कवि ने की होती तो वह महेश के श्लोक उसमें उद्धृत न करता। उक्त दोनों प्रशस्तियों की समाप्ति का दिन भी एक ही है। कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति संक्षेप से है और कुंभलगढ़ की विस्तार से।

८—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की कुंभलगढ़ की दूसरी प्रशस्ति। यह प्रशस्ति कम से कम दो बड़ी शिलाओं पर खुदी होगी। इसकी पहली शिलामात्र मिली है, जिसमें ६४ श्लोक हैं और महाराणा कुंभा के वर्णन का थोड़ासा अंश ही आया है और अंत में लिखा है कि आगे का वर्णन शिलाओं के अंकक्रम से जानना[1]।

९—आबू पर अचलगढ़ के जैन मंदिर में आदिनाथ की पीतल की विशाल मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १५१८ वैशाख वदि ४ का लेख[2]।

---

(१) यह प्रशस्ति कुछ बिगड़ गई है और अब तक अप्रकाशित है। मूल शिला उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रक्खी गई है।

(२) संवत् १५१८ वर्षे वैशाखवदि ४ दिने मेदपाटे श्रीकुंभलमेरुमहादुर्गे राजाधिराजश्रीकुंभकर्णविजयराज्ये श्रीतपा[पक्षी]यश्रीसंघकारिते श्रीअर्बुदानीतपित्तलमयप्रौढश्रीआदिनाथमूलनायकप्रतिमालंकृते ·· ·······

महाराणा कुंभा को पिछले दिनों में कुछ उन्माद रोग हो गया था,[1] जिससे वह बहकी बहकी बातें किया करता था। एक दिन वह कुंभलगढ़ में मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर के निकटवर्ती जलाशय के तट पर बैठा हुआ था, उस समय उसके राज्यलोभी और दुष्ट

महाराणा की मृत्यु

(१) महाराणा कुंभा को उन्माद रोग होने के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि एक दिन उसने एकलिंगजी के मन्दिर में दर्शन करने को जाते हुए उस मन्दिर के सामने एक गौ को जम्हाते हुए देखा, जिससे उसका चित्त उचट गया और कुंभलगढ़ आने पर वह 'कामधेनु तंडव करिय' पद का बार बार पाठ करने लगा। जब कोई इस विषय में पूछता, तो उसे यही उत्तर मिलता कि 'कामधेनु तंडव करिय'। सब सरदार आदि महाराणा के इस उन्माद रोग से बहुत घबराये। कुछ समय पूर्व महाराणा ने एक ब्राह्मण की इस भविष्यवाणी पर कि 'आप एक चारण के हाथ से मारे जावेंगे, सब चारणों को अपने राज्य से निकाल दिया था। एक चारण ने, जो गुप्तरूप से एक राजपूत सरदार के पास रहा करता था, उससे कहा कि मैं महाराणा का यह उन्माद रोग दूर कर सकता हूं। दूसरे दिन वह सरदार उसे भी अपने साथ दरबार में ले गया। जब अपने स्वभाव के अनुसार महाराणा ने वही पद फिर कहा, तब उस चारण ने मारवाड़ी भाषा का यह छप्पय पढ़ा—

जद धर पर जोवती दीठ नागोर धरंती
गायत्री संग्रहण देख मन माहि डरंती।
सुरकोटी तेतीस आण नीरन्ता चारो
नहिं चरंत पीवंत मनह करती हंकारो॥
कुम्भेण राण हणिया कलम आजस उर डर उतरिय।
तिण दीह द्वार शंकर तणैं कामधेनु तंडव करिय॥ १॥

आशय—नागोर में गोहत्या होती देखकर गायत्री (कामधेनु) बहुत डर रही थी, तेतीस करोड़ देवता उसके लिये घास और पानी लाते थे, परन्तु वह न खाती और न पीती थी। जब से राणा कुंभा ने मुसलमानों ('कलम', कलमा पढ़नेवालों) को मारकर (नागोर को जीतकर) गौओं की रक्षा की, तब से गौ भी हर्षित होकर शंकर के द्वार पर तांडव करती है।

महाराणा यह छप्पय सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे कहा कि तू राजपूत नहीं, चारण है। उसने उत्तर दिया—"हां, मैं चारण हूं, आपने हम लोगों की जागीरें छीनकर हम निरपराधों को देश से निकाल दिया है, इसलिये यह प्रार्थना करने आया हूं कि कृपा कर हमें जागीर वापस देकर अपने देश में आने की आज्ञा प्रदान कीजिये"। कुंभा ने उसकी बात स्वीकार कर ली और वैसी ही आज्ञा दे दी। तब से महाराणा ने वह पद कहना तो छोड़ दिया, परन्तु उन्माद रोग बना ही रहा। वीरविनोद, भा० १, पृ० ३३३-३४।

पुत्र ऊदा (उदयसिंह) ने कटार से उसे अचानक मार डाला[1]। यह घटना वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) मे हुई।

कुंभा की संतति

महाराणा कुंभा के ग्यारह पुत्रों—उदयसिंह रायमल, नगराज, गोपालसिंह, आसकरण, अमरसिंह, गोविन्ददास, जैतसिंह, महरावण, क्षेत्रसिंह और अचलदास—का होना भाटों की ख्यातों से पाया जाता है[2]। जावर के रमाकुंड के पासवाले रामस्वामी नामक विष्णु-मन्दिर की प्रशस्ति से पता लगता है कि उसकी एक पुत्री का नाम रमाबाई था, जिसका विवाह सोरठ (जूनागढ़) के यादव राजा मंडलीक (अन्तिम) के साथ हुआ था[3]।

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि महाराणा के बहुतसी स्त्रियां थीं,[4] जिनमें से दो के नाम कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति तथा गीतगोविन्द की महाराणा कुंभकर्ण-कृत रसिकप्रिया टीका में क्रमशः—कुंभल्लदेवी[5] और अपूर्वदेवी[6]—मिलते हैं।

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र १२, पृ० १। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३४।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३५। मुहणोत नैणसी ने केवल पाच ही नाम दिये हैं—रायमल, ऊदा, नंगा (नगराज), गोयद और गोपाल (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २)।

(३) *श्रीचित्रकूटाधिपतिश्रीमहाराजाधिराजमहाराणाश्रीकुंभकर्णपुत्री श्रीजीर्णप्राकारे सोरठपतिमहारायारायश्रीमंडलीकभार्याश्रीरमाबाईप्रासादरामस्वामि ··॥*

जावर के रामस्वामी के मंदिर का वि० स० १५५४ का शिलालेख।

(४) *मानादिभ्यो राजकन्याः समेत्य*

क्षोणीपाल कुंभकर्णं श्रयन्ते ।······॥ २५१ ॥

(५) *यस्यानगकुतूहलैकपदवी कुंभल्लदेवी प्रिया ॥ १८० ॥*

(६) *महाराज्ञीश्रीअपूर्वदेवीहृदयाधिनाथेन महाराजाधिराजमहाराजश्रीकुंभकर्णमहीमहेन्द्रेण ·· ····· ॥*

गीतगोविंद; पृ० १७४।

भाटों की ख्यातों में महाराणा की राणियों के नाम—प्यारकुँवर, अपरमदे, हरकुँवर और नारंगदे मिलते हैं, जो विश्वासयोग्य नहीं है, क्योंकि इनमें उपर्युक्त दो में से एक का भी नाम नहीं है।

महाराणा कुंभा मेवाड़ की सीसोदिया शाखा के राजाओं में बड़ा प्रतापी हुआ। महाराणा सांगा के साम्राज्य की नींव डालनेवाला भी वही था। सांगा के बड़े गौरव का उल्लेख उसी के परम शत्रु बाबर ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक 'तुज़ुके बाबरी' में किया, जिसके कारण वह बहुत प्रसिद्ध हो गया, परन्तु कुंभा के महत्त्व का वर्णन बहुधा उसके शिलालेखों में ही रह गया। वे भी किसी अंश में तोड़-फोड़ डाले गये और जो कुछ बचे, उनकी तरफ़ किसी ने दृष्टिपात भी न किया; इसी से कुंभा का वास्तविक महत्त्व लोगों के जानने मे न आया। वस्तुत: कुंभा भी सांगा के समान युद्ध-विजयी, वीर और अपने राज्य को बढ़ानेवाला हुआ। इसके अतिरिक्त उसमें कई ऐसे विशेष गुण भी थे, जो सांगा में नहीं पाये जाते। वह विद्यानुरागी, विद्वानों का सम्मानकर्ता, साहित्यप्रेमी, संगीत का आचार्य, नाट्यकला में कुशल, कवियों का शिरोमणि, अनेक ग्रन्थों का रचयिता; वेद, स्मृति, दर्शन, उपनिषद् और व्याकरण आदि का विद्वान्, संस्कृतादि अनेक भाषाओं का ज्ञाता और शिल्प का पूर्ण अनुरागी तथा उससे विशेष परिचित था, जिसके साक्षिस्वरूप चित्तोड़ का दुर्ग, वहां का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ, कुम्भस्वामी का मन्दिर, चितोड़ की सड़क और कुल दरवाज़े; एकलिंगजी का मन्दिर और उससे पूर्व का कुंभमण्डप; कुम्भलगढ़ का किला, वहां का कुंभस्वामी का देवालय; आबू पर अचलगढ़ का क़िला तथा कुम्भस्वामी का मन्दिर आदि अब तक विद्यमान हैं, जो प्राचीन शोधकों, शिल्पप्रेमियों और निरीक्षकों को मुग्ध कर देते हैं, इतना ही नहीं, किन्तु उक्त महाराणा की अतुल सम्पत्ति और वैभव का अनुमान भी कराते हैं। कुंभा के इष्टदेव एकलिंगजी (शिव) होने पर भी वह विष्णु का परम भक्त था और अनेक प्रकार[1] की विष्णु-मूर्तियों की कल्पना उसी के प्रतिमा-निर्माण-ज्ञान का फल है,

कुंभा का व्यक्तित्व

(१) चित्तोड़ के कुंभस्वामी के विशाल मंदिर के बाहरी ताकों में अधिक ऊंचाई पर भिन्न भिन्न हाथोंवाली कई प्रकार की विष्णु की मूर्तियां बनी हुई हैं, जो कुंभा की कल्पना से तैयार की गई हों, ऐसा अनुमान होता है। अनुमान तीस वर्ष पूर्व मैं अपने एक मित्र के साथ आबू पर अचलेश्वर के मंदिर के पासवाला विष्णुमंदिर (कुंभस्वामी का मंदिर) देख रहा था, उसमें न कोई मूर्ति थी और न शिलालेख। उसके मंडप के ऊंचे ताकों में विचित्र प्रकार की विष्णुमूर्तियां देखकर मैंने उस मित्र से कहा कि यह मंदिर तो महाराणा कुंभा का बनवाया हुआ प्रतीत होता है। इसपर उसने पूछा कि ऐसा मानने के लिये क्या कारण है? मैंने उत्तर दिया कि ऊंचे ऊंचे ताकों में जो मूर्तियां हैं वे ठीक चित्तोड़ के कुंभस्वामी के मंदिर के ताकों की मूर्तियां

जिसका सम्यक् परिचय कीर्तिस्तम्भ के भीतर बनी हुई हिन्दुओं के समस्त देवी-देवताओं आदि की असंख्य मूर्तियां देखने से ही हो सकता है। वह प्रजापालक और सब मतों को समदृष्टि से देखता था। आबू पर जानेवाले जैन यात्रियों पर जो कर लगता था, उसे उठाकर उसने यात्रियों के लिये बड़ी सुगमता कर दी। उसके समय में उसकी प्रजा में से अनेक लोगों ने कई जैन, शिव और विष्णु आदि के मन्दिर बनवाये, जिनमें से कुछ अब तक विद्यमान हैं।

वह शरीर का हृष्ट-पुष्ट[1] और राजनीति तथा युद्धविद्या में बड़ा कुशल था। अपनी वीरता से उसने दिल्ली और गुजरात के सुलतानों का कितना एक प्रदेश अपने अधीन किया, जिसपर उन्होंने उसे छत्र भेट कर हिन्दु-सुरत्राण का खिताब दिया अर्थात् उसको हिन्दू बादशाह स्वीकार किया था। उसने कई बार मांडू और गुजरात के सुलतानों को हराया, नागोर को विजय किया, गुजरात और मालवे के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया और राजपूताने का अधिकांश एवं मांडू, गुजरात और दिल्ली के राज्यों के कुछ अंश छीनकर मेवाड़ को महाराज्य बना दिया।

उदयसिंह (ऊदा)

उदयसिंह अपने पिता महाराणा कुम्भा को मारकर वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में मेवाड़ के राज्य का स्वामी बना। राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने से घृणा करते थे, इतना ही नहीं, किन्तु वंशावली लेखक तो उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे[2]। ठीक वैसा ही व्यवहार ऊदा के साथ भी हुआ। राजभक्त

जैसी है। एकलिंगजी से पूर्व का मीराबाई का मंदिर (कुंभमण्डप) देखते हुए भी ठीक ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ था। पीछे से जब मुझे कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति मिली तब उसमें उक्त दोनों मंदिरों का कुंभा द्वारा निर्माण होना पढ़कर मुझे अपना अनुमान ठीक होने की बड़ी प्रसन्नता हुई।

(१) *भवानीपतिप्रसादपरिप्राप्तहृष्टशरीरशालिना ....।*

गीतगोविंद की टीका, पृ० १७४।

(२) अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के बीजोल्यां की चट्टान

सरदारों में से कोई अपने भाई और कोई अपने पुत्र को उसकी सेवा में भेजकर स्वयं उससे किनारा करने एवं उसको राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। वह उनकी प्रीति सम्पादन करने का भरसक प्रयत्न करने लगा, परन्तु जब उसमें सफलता न हुई, तब उसने अपने पड़ोसियों को सहायक बनाने का उद्योग किया। इसके लिये उसने आबू का प्रदेश, जो कुम्भा ने ले लिया था, पीछा देवड़ों को दे दिया और अपने राज्य के कई परगने भी आसपास के राजाओं को दे दिये। इस कार्य से मेवाड़ के सरदार उससे और भी अप्रसन्न हुए और रावत चूंडा के पुत्र कांधल की अध्यक्षता में उन्होंने परस्पर सलाह कर उसके छोटे भाई रायमल को, जो अपनी सुसराल ईडर में था, राज्य लेने के लिये बुलाया। उधर से कुछ सैन्य लेकर वह ब्रह्मा की खेड़ तथा ऋषभदेव (केसरियानाथ) होता हुआ जावर (योगिनीपुर) के निकट आ पहुंचा; इधर से सरदार भी अपनी अपनी सेना सहित उससे जा मिले। जावर के पास की लड़ाई में रायमल की विजय हुई और वहां पर उसका अधिकार हो गया[1]। यहीं से रायमल के राज्य का प्रारम्भ समझना चाहिये। फिर दाड़िमपुर के पास घोर युद्ध हुआ, जहां रुधिर की नदी बही। वहां भी रायमल की विजय हुई और क्षेम नृपति मारा गया[2]। इस लड़ाई में उदयसिंह के

पर खुदे हुए बड़े लेख में अर्णोराज (आना) के पीछे उसके पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) का राजा होना और उसके बाद उसके बड़े भाई के पुत्र पृथ्वीराज (दूसरे, पृथ्वीभट) का राज्य पाना लिखा है (श्लोक १६ से २३ तक)। जब अर्णोराज के ज्येष्ठ पुत्र का बेटा विद्यमान था, तो वीसलदेव राजा कैसे बन गया, यह उस लेख से ज्ञात नहीं होता था, परन्तु पृथ्वीराजविजय महाकाव्य से ज्ञात हुआ कि अर्णोराज को उसके ज्येष्ठ पुत्र ने, जिसका नाम उक्त पुस्तक में नहीं लिखा, मारा था (सर्ग ७, श्लोक १२-१३। नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग १, पृ० ३९४-९५)। इसी कारण बीजोल्यां के शिलालेख और पृथ्वीराजविजय के कर्ताओं ने उस पितृघाती (जगदेव) का नाम तक चौहानों की वंशावली में नहीं दिया।

(१) *योगिनीपुरगिरीन्द्रकन्दर हीरहेममणिपूर्णमन्दिरं ।*
अध्यरोहदहितेषु केसरी राजमल्लजगतीपुरन्दरः ॥ ६३ ॥

महाराणा रायमल के समय की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इंस्क्रिप्शंस; पृ० १२१।

(२) *अवर्षत्संग्रामे सरभसमसौ दाडिमपुरे*
धराधीशस्तस्मादभवदनणुः शोणितसरित् ।

हाथी, घोड़े, नक्कारा और निशान रायमल के हाथ लगे। इसी प्रकार जावी और पानगढ़ की लड़ाइयों में भी विजयी होकर रायमल ने चित्तोड़ को जा घेरा[1]। बड़ी लड़ाई के बाद चित्तोड़ भी विजय हो गया[2] और उदयसिंह ने भागकर कुम्भलगढ़ की शरण ली। वहां भी उसका पीछा किया गया, मूर्ख उदयसिंह वहां से भी भागा[3] और रायमल का सारे मेवाड़ पर अधिकार हो गया।

यह घटना वि० सं० १५३० मे हुई। इस विषय में एक कवि का कहा हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है—

ऊदा बाप न मारजै, लिखियो लाभै राज।
देश बसायो रायमल, सरयो न एको काज॥

स्खलन्मूलस्तु(?)लोपमितगरिमा क्षेमकुपतिः
पतन् तीरे यस्यास्तटविटपिवाटे विघटित- ॥ ६४ ॥ वही, पृ० १२१।

क्षेम नृपति कौन था, यह उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट नहीं होता, परंतु वह प्रतापगढ़वालों का पूर्वज और महाराणा कुंभा का भाई (क्षेमकर्ण) होना चाहिये। नैणसी के कथन से पाया जाता है कि राणा कुंभा के समय वह सादड़ी मे रहता था और कुंभा से उसकी अनबन ही रही, जिससे वह उदयसिंह के पक्ष में रहा हो, यह संभव है। उसका पुत्र सूरजमल भी रायमल का सदा विरोधी रहा था।

(१) रायमल रासा। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३७।

(२) श्रीराजमल्लनृपतिर्नृपतीव्रतापातिग्मद्युतिः करनिरस्तखलांधकारः।
सच्चित्रकूटनगमिन्द्रहरिद्गिरीन्द्रमाक्रामति स्म जवनाधिकवाजिवर्गै.॥६५॥
दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२१।

(३) श्रीकर्णादित्यवंशं प्रमथपतिपरीतोषसंप्राप्तदेशं
पापिष्ठो नाधितिष्ठेदिति मुदितमना राजमल्लो महीन्द्रः।
तादृक्षोऽभूत् सपक्ष समरभुवि पराभूय मूढोदयाह्वं
निर्धास्या(या)ग्नेयमाशाभिमुखमभिमतैरग्रहीत्कुंभमेरु ॥ ६६ ॥
वही, पृ० १२१।

इस विषय में यह प्रसिद्ध है कि जब एक भी लड़ाई में उदयसिंह के पैर न टिक सके, तब उसके पक्षवालों ने उसका साथ छोड़कर रायमल से मिलने का विचार किया। तदनुसार रायमल के कुंभलगढ़ के निकट आने से पूर्व ही वे उसको शिकार के बहाने से क़िले से नीचे ले गये, जिससे रायमल ने क़िले पर सुगमता से अधिकार कर लिया।

आशय—उदयसिंह ! बाप को नहीं मारना चाहिये था। राज्य तो भाग्य में लिखा हो तभी मिलता है; देश का स्वामी तो रायमल हुआ और तेरा एक भी काम सिद्ध न हुआ।

उदयसिंह वहां से अपने दोनों पुत्रों—सैंसमल व सूरजमल—सहित अपनी सुसराल सोजत में जाकर रहा। वहां से कुछ समय बीकानेर में रहकर वह मांडू के सुलतान ग़यासशाह (ग़यासुद्दीन) खिलजी के पास गया[1] और उक्त सुलतान की सहायता से फिर मेवाड़ लेने की कोशिश करने लगा।

रायमल

महाराणा रायमल अपने भाई उदयसिंह से राज्य छीनकर वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।

सोजत आदि में रहता हुआ उदयसिंह अपने पुत्रों सहित सुलतान ग़यासशाह के समय मांडू में पहुंचा और मेवाड़ का राज्य पीछा लेने के लिये उससे सहायता मांगी। जब सुलतान ने उसको सहायता देना स्वीकार किया। तब उसने भी अपनी पुत्री का विवाह सुलतान से करने की बात कही। जब यह बातचीत कर वह अपने डेरे को लौट रहा था तब मार्ग में उसपर बिजली गिरी और वह वहीं मर गया[2]। उसके दोनों पुत्रों को मेवाड़ का राज्य दिलाने के विचार से सुलतान ने एक बड़ी सेना के साथ चित्तोड़ को आ घेरा। वहां बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसके

ग़यासशाह के साथ की लड़ाइयां

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३३८।

कर्नल टॉड ने लिखा है—'ऊदा दिल्ली के सुलतान के पास गया और उस(ऊदा)की मृत्यु के पीछे सुलतान उसके दोनों पुत्रों को साथ लेकर सिहाड़ (नाथद्वारा) आ पहुंचा। घासे के पास रायमल से लड़ाई हुई, जिसमें वह ऐसी बुरी तरह से हारा कि फिर मेवाड़ में कभी नहीं आया' (टॉ; रा, जि० १, पृ० ३४०)। कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुलतान का नाम नहीं दिया और यह सारा कथन भाटों की ख्यातों से लिया हुआ होने से विश्वसनीय नहीं है। उदयसिंह दिल्ली नहीं किन्तु मांडू के सुलतान के पास गया था, जिसके पुत्रों की सहायता के लिये सुलतान मेवाड़ पर चढ़ आया था।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३६। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३८।

सम्बन्ध मे एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ की प्रशस्ति में इस तरह लिखा है—"इस भयंकर युद्ध में महाराणा ने शकेश्वर (सुलतान) ग्यास (गयासशाह) का गर्वगञ्जन किया[1]। वीरवर गौर[2] ने क़िले के एक शृंग (बुर्ज़) पर खड़े रहकर प्रतिदिन बहुतसे मुसलमानों को मारा, जिसके कारण महाराणा ने उस शृंग का नाम गौरशृंग रक्खा और वह (गौर) भी मुसलमानो के रुधिर-स्पर्श का दोष निवारण करने के लिये स्वर्ग-गंगा मे स्नान करने को परलोक सिधारा[3]"। इस लड़ाई में हारकर गयासशाह मांडू को लौट गया।

---

(१) *यंत्रायंत्रि हलाहलि प्रविचलद्दन्तावलव्याकुलं*
वल्गद्वाजिबलक्रमेलककुल विस्फारवीरारवं।
त वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गल-
द्गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः॥ ६८॥

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२१।

(२) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक ६९ और ७१ मे गौरसंज्ञक किसी वीर का ग़यासुद्दीन के कई सैनिकों को मारकर प्रशसा के साथ मरने का उल्लेख है, परन्तु ७०वें श्लोक में चार दीर्घकाय गौर वीरो का वर्णन मिलता है, जिससे यह निश्चय नहीं हो सकता कि गौर किसी पुरुष का नाम था या शाखा विशेष का। 'मुसलमानो के रुधिर-स्पर्श के दोष से मुक्त होने के लिये स्वर्गगंगा में स्नान करना' लिखने से उसका क्षत्रिय होना निश्चित है। ऐसी दशा में सम्भव है कि प्रशस्तिकार पण्डित ने गौर शब्द का प्रयोग गौड़ नामक क्षत्रिय जाति के लिये किया हो। रायमल-रासे मे ज़फ़रख़ां के साथ की माडलगढ़ की लड़ाई में रघुनाथ नामक गौड़ सरदार का महाराणा की सेना मे होना भी लिखा मिलता है।

(३) *कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेषु स्मिन् प्रत्यहं संजहार।*
तस्मादेतन्नाम काम बभार प्राकाराशश्चित्रकूटैकशृङ्गं॥ ६९॥
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोऽध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तत्।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगलदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः॥ ७१॥

(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२१)।

उक्त प्रशस्ति के ७२वें श्लोक में जहीरल को मारकर शत्रु-सैन्य के संहार करने का

गयासुद्दीन ने इस पराजय से लज्जित होकर फिर युद्ध की तैयारी कर अपने सेनापति ज़फ़रख़ां को बड़ी भारी सेना के साथ मेवाड़ पर भेजा। वह मेवाड़ के पूर्वी हिस्से को लूटने लगा, जिसकी सूचना पाते ही महाराणा अपने ४ कुंवर—पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह पत्ता (प्रताप) और रामसिंह—तथा कांधल चूंडावत (चूंडा के पुत्र) सारंगदेव अज्जावत कल्याणमल (खीची[१]), पंवार राघव महपावत और किशनसिंह डोडिया आदि कई सरदारों एवं बड़ी सेना के साथ मांडलगढ़ की तरफ बढ़ा। वहां ज़फ़रखां के साथ घमसान युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्ष के बहुतसे वीर मारे गये और ज़फ़रखां हारकर मालवे को लौट गया। इस लड़ाई के प्रसंग में उपर्युक्त प्रशस्ति में लिखा है कि मेदपाट के अधिपति राजमल ने मंडलदुर्ग (मांडलगढ़) के पास ज़फ़र के सैन्य का नाश कर शकपति ग्यास के गर्वोन्नत सिर को नीचा कर दिया[२]। वहां से रायमल मालवे की ओर बढ़ा, खैराबाद की लड़ाई में यवन-सेना को तलवार के घाट उतारकर मालवावालों से दंड लिया और अपना यश बढ़ाया[३]।

इन लड़ाइयों के सम्बन्ध में फ़िरिश्ता ने अपनी शैली के अनुसार मौन धारण किया है और दूसरे मुसलमान लेखकों ने तो यहां तक लिख दिया है कि

वर्णन है, परन्तु उससे से यह निश्चय नहीं हो सकता कि वह कौन था। इमादुल्मुल्क, ज़हीरुल्मुल्क आदि मुसलमान सेनापतियों के उपनाम होते थे अतएव वह गयासशाह का कोई सेनापति हो, तो आश्चर्य नहीं।

(१) रायमल रासा, वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३१-४१।

(२) मौलौ मंडलदुर्गमध्यविपतिः श्रीमेदपाटावने-
ग्रांहग्राहमुदारजाफरपरीवारोरुवीरव्रजं।
कंठच्छेदमाचितिपत्तितितले श्रीराजमल्लो द्रुतं
ग्यासक्षोणिपतेः चणान्निरनिता मानोन्नता मौलयः॥ ७७॥
(दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२१)।

(३) खैराबादतरून्विदार्य यवनस्कंधान्विनिघ्नासभि-
र्दण्डान्मालवजान्बलादुपहरन् भिंदश्च वंशान्द्विषां।
स्फूर्जत्तमगल्सूत्रभाङ्गिरिधरासंचारिसेनातरैः
कीर्तिमण्डलमुच्चकैर्व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः॥ ७८॥
वही, पृ० १२१।

गद्दी पर बैठने के बाद ग़यासुद्दीन सदा ऐश-इशरत में ही पड़ा रहा और महल से बाहर तक न निकला[1], परन्तु चित्तोड़ की लड़ाई में उसका विद्यमान होना महाराणा रायमल के समय की प्रशस्ति से सिद्ध है।

नासिरशाह की चित्तोड़ पर चढाई

ग़यासशाह के पीछे उसका पुत्र नासिरशाह मांडू की सल्तनत का स्वामी हुआ। उसने भी मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसके विषय मे फ़िरिश्ता लिखता है कि "हि० स० ६०६ (वि० सं० १५६०=ई० स० १५०३) में नासिरुद्दीन (नासिरशाह) चित्तोड़ की ओर बढ़ा, जहां राणा से नज़राने के तौर बहुतसे रुपये लिये और राजा जीवनदास की, जो राणा के मातहतों में से एक था, लड़की लेकर मांडू को लौट गया। पीछे से उस लड़की का नाम 'चित्तोड़ी बेगम' रक्खा गया[2]"। नासिरशाह की इस चढ़ाई का कारण फ़िरिश्ता ने कुछ भी नहीं लिखा, तो भी संभव है कि ग़यासशाह की हार का बदला लेने के लिये वह चढ़ आया हो। इसका वर्णन शिलालेखों या ख्यातों में नहीं मिलता।

यह प्रसिद्ध है कि एक दिन कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह ने अपनी अपनी जन्मपत्रियां एक ज्योतिषी को दिखलाई, उन्हें देखकर उसने कहा

---

(१) बंब. गै; जि० १, भाग १, पृ० ३६२।

ख्यातों आदि में यह भी लिखा है—'एक दिन महाराणा सुलतान ग़यासुद्दीन के एक दूत से चित्तोड़ में विनयपूर्वक बातचीत कर रहे थे, ऐसे में कुंवर पृथ्वीराज वहां आ पहुंचा। महाराणा को उसके साथ इस प्रकार बातचीत करते हुए देखकर वह क्रुद्ध हुआ और उसने अपने पिता से कहा कि क्या आप मुसलमानों से दबते हैं कि इस प्रकार नम्रतापूर्वक बातचीत कर रहे हैं? यह सुनकर वह दूत क्रुद्ध हो उठ खड़ा हुआ और अपने डेरे पर आकर मांडू को लौट गया। वहां पहुंचकर उसने सारा हाल सुलतान से कहा, जो अपनी पूर्व की पराजयों के कारण जलता ही था, फिर यह सुनकर वह और भी क्रुद्ध हुआ और एक बड़ी सेना के साथ चित्तोड़ की ओर चला। इधर से कुंवर पृथ्वीराज भी, जो बड़ा प्रबल और वीर था, अपने राजपूतों की सेना सहित लड़ने को चला। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज ने विजयी होकर सुलतान को क़ैद कर लिया और एक मास तक चित्तोड़ में क़ैद रखने के पश्चात् दण्ड लेकर उसे मुक्त कर दिया (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४१-४२)। इस कथन पर हम विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि इसका कहीं शिलालेखादि में उल्लेख नहीं मिलता, शायद यह भाटों की गढ़ंत हो।

(२) ब्रिग्ज, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २४३।

रायमल के कुवरों में परस्पर विरोध

कि ग्रह तो पृथ्वीराज और जयमल के भी अच्छे हैं, परंतु राजयोग संग्रामसिंह के है, इसलिये मेवाड़ का स्वामी वही होगा। इसपर वे दोनों भाई संग्रामसिंह के शत्रु बन गये और पृथ्वीराज ने तलवार की हूल मारी, जिससे संग्रामसिंह की एक आंख फूट गई। ऐसे में महाराणा रायमल का चाचा सारंगदेव[1] आ पहुंचा। उसने उन दोनों को फटकार कर कहा कि तुम अपने पिता के जीते-जी ऐसी दुष्टता क्यो कर रहे हो? सारंगदेव के यह वचन सुनकर वे दोनों भाई शान्त हो गये और वह संग्रामसिंह को अपने निवासस्थान पर लाकर उसकी आंख का इलाज कराने लगा, परंतु उसकी आंख जाती ही रही। दिन-दिन कुंवरों में परस्पर का विरोध बढ़ता देखकर सारंगदेव ने उनसे कहा कि ज्योतिषी के कथन पर विश्वास कर तुम्हें आपस में विरोध न करना चाहिये। यदि तुम यह जानना ही चाहते हो कि राज्य किसको मिलेगा, तो भीमल गांव के देवी के मंदिर की चारण जाति की पुजारिन से, जो देवी का अवतार मानी जाती है, निर्णय करा लो। इस सम्मति के अनुसार वे तीनों भाई एक दिन सारंगदेव तथा अपने राजपूतों सहित वहां गये तो पुजारिन ने कहा कि मेवाड़ का स्वामी तो संग्रामसिंह होगा और पृथ्वीराज तथा जयमल दूसरों के हाथ से मारे जावेंगे। उसके यह वचन सुनते ही पृथ्वीराज और जयमल ने संग्रामसिंह पर शस्त्र उठाया। उधर से संग्रामसिंह और सारंगदेव भी लड़ने को खड़े हो गये। पृथ्वीराज ने संग्रामसिंह पर तलवार का वार किया, जिसको सारंगदेव ने अपने सिर पर ले लिया[2] और वह भी तलवार लेकर

---

(१) वीरविनोद में इस कथा के प्रसंग में सारंगदेव के स्थान पर सर्वत्र सूरजमल नाम दिया है, जो मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि संग्रामसिंह का सहायक सारंगदेव ही था। सूरजमल के पिता क्षेमकर्ण की महाराणा कुंभकर्ण से सदा अनबन ही रही (नैणसी की ख्यात, पत्र २२, पृ० १) और दाड़िमपुर की लड़ाई में उदयसिंह के पक्ष में रहकर उसके मारे जाने के पीछे उसका पुत्र सूरजमल तो महाराणा का विरोधी ही रहा, इतना ही नहीं, किन्तु सादड़ी से लेकर गिरवे तक का सारा प्रदेश उसने बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया था (वही; पत्र २२, पृ० १)। इसी कारण महाराणा रायमल को वह बहुत ही खटकता था, जिससे उसने अपने कुंवर पृथ्वीराज को उसे मारने के लिये भेजा था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। सूरजमल तो उक्त महाराणा की सेवा में कभी उपस्थित हुआ ही नहीं।

(२) इस विषय में नीचे लिखा हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

पीथल खग हाथां पकड़, वह सागा किय वार।
सांरग झेले सीस पर, उणवर साम उबार॥

झपटा। इस कलह में पृथ्वीराज सख़्त घायल होकर गिरा और संग्रामसिंह भी कई घाव लगने के पीछे अपने प्राण बचाने के लिये घोड़े पर सवार होकर वहां से भाग निकला, उसको मारने के लिये जयमल ने पीछा किया। भागता हुआ संग्रामसिंह सेवंत्री गांव में पहुंचा, जहां राठोड़ बीदा जैतमालोत (जैतमाल का वंशज[1]) रूपनारायण के दर्शनार्थ आया हुआ था। उसने सांगा को खून से तर-बतर देखकर घोड़े से उतारा और उसके घावों पर पट्टियां बांधीं; इतने में जयमल भी अपने साथियों सहित वहां आ पहुंचा और बीदा से कहा कि सांगा को हमारे सुपुर्द कर दो, नहीं तो तुम भी मारे जाओगे। वीर बीदा ने अपनी शरण में लिये हुए राजकुमार को सौंप देने की अपेक्षा उसके लिये लड़कर मरना क्षात्रधर्म समझकर उसे तो अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया और स्वयं अपने भाई रायपाल तथा बहुतसे राजपूतों सहित जयमल से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुआ। तब जयमल को निराश होकर वहां से लौटना पड़ा[2]। कुछ दिनों में पृथ्वीराज और सारंगदेव के घाव भर गये। जब महाराणा रायमल ने यह हाल सुना, तब पृथ्वीराज को कहला भेजा कि दुष्ट, मुझे मुंह मत दिखलाना, क्योंकि मेरी विद्यमानता में तूने राज्य-लोभ से ऐसा क्लेश बढ़ाया और मेरा कुछ भी लिहाज़ न किया। इससे लज्जित होकर पृथ्वीराज कुम्भलगढ़ में जा रहा[3]।

---

(१) मारवाड़ के राठोड़ों के पूर्वज राव सलखा के चार पुत्रों में से दूसरा जैतमाल था, जिसके वंशज जैतमालोत कहलाये। उस (जैतमाल) के पीछे क्रमश: बेजल, कांधल, ऊदल और मोकल हुए। मोकल ने मोकलसर बसाया। मोकल का पुत्र बीदा था, जो मोकलसर से रूपनारायण के दर्शनार्थ आया हुआ था। उसके वंश में इस समय केलवे का ठाकुर उदयपुर राज्य के दूसरी श्रेणी के सरदारों में है।

(२) रूपनारायण के मन्दिर की परिक्रमा में राठोड़ बीदा की छत्री बनी हुई है, जिसमें तीन स्मारक-पत्थर खड़े हुए हैं। उनमें से तीसरे पर का लेख बिगड़ जाने से स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता। पहले पर के लेख का आशय यह है कि वि० सं० १५६१ ज्येष्ठ वदि ७ को महाराणा रायमल के कुंवर संग्रामसिंह के लिये राठोड़ बीदा अपने राजपूतों सहित काम आया। दूसरे पर का लेख भी उसी मिती का है और उसमें राठोड़ रायपाल का कुंवर संग्रामसिंह के लिये काम आना लिखा है। इन दोनों लेखों से निश्चित है कि सेवंत्री गांववाली घटना वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में हुई थी।

(३) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३४५।

टोड़े के सोलंकियों का मेवाड़ में आना और कुंवर जयमल का मारा जाना

जब लल्लाखां पठान ने सोलंकियों से टोड़ा (जयपुर राज्य में) और उसके आसपास का इलाक़ा छीन लिया, तब सोलंकी राव सुरताण हरराजोत (हरराज का पुत्र) महाराणा रायमल के पास चित्तोड़ में उपस्थित हुआ। महाराणा ने प्राचीन वंश के उस सरदार को बदनोर का इलाका जागीर में देकर अपना सरदार बनाया। उस सोलंकी सरदार की पुत्री[1] तारादेवी के सौन्दर्य का हाल सुनकर महाराणा के कुंवर जयमल ने राव सुरताण से कहलाया कि आपकी पुत्री बड़ी सुन्दरी सुनी जाती है, इसलिये आप मुझे पहले उसे दिखला दो तो मैं उससे विवाह कर लूं। इसपर राव ने कहलाया कि राजपूत की पुत्री पहले दिखलाई नहीं जाती, यदि आप उससे विवाह करना चाहें, तो हमें स्वीकार है। यह सुनकर घमंडी जयमल ने कहलाया कि जैसा मैं चाहता हूं वैसा ही आपको करना होगा। इसपर राव सुरताण ने अपने साले रतनसिंह को भेजकर कहलाया कि हम विदेशी राजपूतों को आपके पिता ने आपत्ति के समय में शरण दी है, इसलिये हम नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि आपको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। परंतु जयमल ने उसके कथन पर कुछ भी ध्यान न देकर बदनोर पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। यह सारा वृत्तान्त सांखले रतनसिंह ने अपने बहनोई राव सुरताण से कह दिया, जिसपर सुरताण ने महाराणा का नमक खाने के लिहाज़ से कुंवर से लड़ना अनुचित समझ कर कहीं अन्यत्र चले जाने के विचार से अपना सामान छकड़ों में भरवाकर बदनोर से सकुटुंब प्रस्थान कर दिया। उधर से जयमल भी अपनी सेना सहित बदनोर पहुंचा, परंतु क़स्बा राजपूतों से खाली देखकर राव सुरताण के पीछे लगा। रात्रि हो जाने के कारण मशालों की रोशनी साथ लेकर वह आगे बढ़ा और बदनोर से सात कोस दूर आकड़सादा गांव के निकट सुरताण के साथियों के पास जा पहुंचा। मशालों की रोशनी देखकर राव सुरताण की ठकुराणी सांखली ने अपने भाई रतनसिंह से कहा कि शत्रु निकट आ गया है। यह सुनते ही उसने अपना घोड़ा पीछा फिराया और वह तुरन्त ही जयमल की सेना में जा पहुंचा। मशालों की रोशनी से घोड़ों के रथ में बैठे हुए जयमल

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ६१, पृ० २। टॉ; रॉ; जि० २, पृ० ७८२।

को पहचानकर उसके पास जाते ही 'कुंवरजी, सांखला रतना का मुजरा पहुंचे', कहकर उसने अपने बर्छे से उसका काम तमाम कर डाला जिसपर जयमल के राजपूतों ने रतनसिंह को भी वहीं मार डाला। जयमल और रतनसिंह की दाह-क्रिया दूसरे दिन वहीं हुई। जयमल ने यह झगड़ा महाराणा की आज्ञा के बिना किया था, यह जानने पर राव सुरताण पीछा बदनोर चला गया और वहां से महाराणा की सेवा में सारा वृत्तान्त लिख भेजा। उसको पढ़कर महाराणा ने यही फ़रमाया कि राव सुरताण निर्दोष है; सारा दोष जयमल का ही था, जिसका उचित दण्ड उसे मिल गया[1]। ऐसे विचार जानने पर सुरताण ने महाराणा की न्यायपरायणता की बड़ी प्रशंसा की, परंतु जयमल के मारे जाने का दुःख उसके चित्त पर बना ही रहा।

कुंवर पृथ्वीराज का राव सुरताण को टोड़ा पीछा दिलाना

सुरताण ने पराधीनता में रहना पसन्द न कर यह निश्चय किया कि अब तो अपनी पुत्री का विवाह ऐसे पुरुष के साथ करना चाहिये जो मेरे बाप-दादों का निवास-स्थान टोड़ा मुझे पीछा दिला दे। उसका यह विचार जानने पर कुंवर पृथ्वीराज ने तारादेवी के साथ विवाह कर लिया; फिर टोड़े पर चढ़ाई कर[2] लल्लाखां को मार डाला[3] और टोड़े का राज्य पीछा राव सुरताण को दिला दिया। अजमेर का मुसलमान सूबेदार (मल्लूखां) पृथ्वीराज की चढ़ाई का हाल सुनते ही लल्लाखां की मदद के लिये चढ़ा, परंतु पृथ्वीराज ने उसे भी जा दबाया

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४५–४६। रायसाहब हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा, पृ० २४–२५।

(२) इस विषय में नीचे लिखे हुए प्राचीन पद्य प्रसिद्ध हैं—

(अ)—भाग लल्ला प्रथिराज आयो
सिंहरे साथ रे स्याल ज्यायो।
(आ)—द्रड चढ़े पृथिमल्ल भाजे टोड़ो
लल्ला तणैं सर धारे लोह।

रायसाहब हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० २७–२८।

(३) इस लड़ाई में वीरांगना ताराबाई भी घोड़े पर सवार होकर सशस्त्र लड़ने को गई थी, ऐसा कर्नल टॉड आदि का कथन है। (टॉ, रा; जि० २, पृ० ७८३। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० २७–२८)।

और लड़ाई मे उसे मारकर अजमेर के क़िले (गढ़बीठली) पर अधिकार करने के बाद वह कुम्भलगढ़ को लौट गया[1]।

सारंगदेव की अच्छी सेवा देखकर महाराणा ने उसको कई लाख की आय की भैंसरोड़गढ़ की जागीर दी थी[2]। कुंवर सांगा का पक्ष करने के कारण

सारंगदेव का सूरजमल से मिल जाना

भमिल गांव के कलह के समय से ही कुंवर पृथ्वीराज उसका शत्रु बन गया था, जिससे वह उससे भैंसरोड़गढ़ छीनना चाहता था। इसलिये उसने महाराणा को लिखा कि आपने सारंगदेव को पांच लाख की जागीर दे दी है, अगर इसी तरह छोटों को इतनी बड़ी जागीर मिलती, तो आपके पास मेवाड़ का कुछ भी हिस्सा न रहता। इसपर महाराणा ने कुंवर को लिखा कि हम तो उसे भैंसरोड़गढ़ दे चुके; अगर तुम इसे अनुचित समझते हो, तो आपस में समझ लो। यह सूचना पाते ही पृथ्वीराज ने २००० सवारों के साथ भैंसरोड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी[3]। रावत सारंगदेव क़िले से भाग निकला। इस प्रकार बिना किसी कारण के अपनी जागीर छिन जाने से वह सूरजमल का सहायक बन गया।

महाराणा के विरुद्ध होकर सूरजमल ने बहुतसा इलाक़ा दबा लिया था और सारंगदेव भी उससे जा मिला। फिर वे दोनों मांडू के सुलतान नासिरुद्दीन[4]

सूरजमल और सारंगदेव के साथ लड़ाई

के पास मदद लेने के लिये पहुंचे। कवि गंगाराम-कृत 'हरिभूषण महाकाव्य' से पाया जाता है कि महाराणा रायमल ने एक दिन दरबार में कहा कि महाबली सूर्यमल के कारण मुझको

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३४६-४७। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० २५-२८। टॉ, रॉ; जि० २, पृ० ७८३-८४।

(२) वीरविनोद में सूरजमल और सारंगदेव दोनों को भैंसरोड़गढ़ की जागीर देना लिखा है (भाग १, पृ० ३४७), जो माना नहीं जा सकता, क्योंकि प्रथम तो दो भिन्न भिन्न पुरुषों को एक ही जागीर नहीं दी जाती थी और दूसरी बात यह कि सूरजमल कभी महाराणा के पास आया ही नहीं। वह तो सदा विरोधी ही बना रहा था (देखो ऊपर पृ० ६४३, टि० १)।

(३) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३४७।

(४) कर्नल टॉड ने लिखा है कि सूरजमल और सारंगदेव दोनों मालवे के सुलतान मुज़फ्फ़र के पास गये और उसकी सहायता से उन दोनों ने मेवाड़ के दक्षिणी भाग पर हमला कर सादड़ी, बाठरड़ा, और नाई से नीमच तक का सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया (टॉ, रॉ; जि० १, पृ० ३४५)। कर्नल टॉड का यह कथन ज्यों-का-त्यों मानने योग्य नहीं है

इतना दुःख है कि उसके जीते-जी मुझे यह राज्य भी प्रिय नहीं है। उसके इस कथन पर जब कोई सरदार सूरजमल को मारने को तैयार न हुआ, तो पृथ्वीराज ने उसको मारने का बीड़ा उठाया[1]। इधर से सूरजमल और सारंगदेव भी मांडू के सुलतान से सेना की सहायता लेकर चित्तोड़ की ओर रवाना हुए। इनके आने का समाचार सुनकर महाराणा रायमल लड़ने को तैयार हुआ। गंभीरी नदी (चित्तोड़ के पास) पर दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हुआ। उस समय महाराणा की सेना थोड़ी होने के कारण संभव था कि पराजय हो जाती, इतने में पृथ्वीराज भी कुंभलगढ़ से एक बड़ी सेना के साथ आ पहुंचा और लड़ाई का रंग एकदम बदल गया। दोनों पक्ष के बहुतसे वीर मारे गये और स्वयं

क्योंकि उक्त नाम का मालवे में कोई सुलतान हुआ ही नहीं। संभव है, ग़यासशाह के सेनापति ज़फ़रख़ां को मुज़फ्फ़र समझकर उसको मालवे का सुलतान मान लिया हो। सादड़ी का प्रदेश तो क्षेमकरण और सूरजमल के अधिकार में ही था।

(१) *एकदा चित्रकूटेशो रायमल्लोऽतिवीर्यवान् ।*
सिंहासनसमारूढो वीरालङ्कृतसंसदि ॥ १८ ॥
इत्यूचे वचनं क्रुद्धो रायमल्लः प्रतापवान् ।
मदाज्ञावीटिकां वीरः कोऽपि गृह्णातु सत्वरं ॥ १९ ॥
उत्थाय च ततो भूपैरनेकैर्नामितं शिरः ।
वद नाथ महावीर दुर्विनेयोऽस्ति कोऽपि चेत् ॥ २० ॥
अवोचदिति विज्ञप्तः सूर्यमल्लो महाबलः ।
व्यथयन्नेव मर्माणि श्रुत एव न संशयः ॥ २१ ॥
न राज्यं रोचते मह्यं न पुत्रा न च बान्धवाः ।
न स्त्रियोऽप्यसवो यावत्तस्मिन्जीवति भूपतौ ॥ २३ ॥
वीरैः कैश्चिद्वचस्तस्य श्रुतमप्यश्रुतं कृतं ।
अन्यैरन्यप्रसंगेन परैरपरदर्शनात् ॥ २४ ॥
तदात्मजो महावीरः पृथ्वीराजो रणाग्रणीः ।
तेनोत्थाय नमस्कृत्य वीटिका याचिता ततः ॥ २७ ॥
अवश्यं मारणीयो मे सूर्यमल्लो महाबली ।
निराधारोऽपि नालीकः सपत्नो ....॥ २८ ॥ (सर्ग २)

महाराणा के २२ घाव लगे। कुंवर पृथ्वीराज, सूरजमल और सारंगदेव भी घायल हुए। शाम होने पर दोनों सेनाएं अपने अपने पड़ाव को लौट गईं।

महाराणा के ज़ख्मों पर मरहम-पट्टी करवाकर पृथ्वीराज रात को घोड़े पर सवार हो सूरजमल के डेरे पर पहुंचा। सूरजमल के घावों पर भी पट्टियां बँधी थीं, तो भी उसको देखते ही वह उठ खड़ा हुआ, जिससे उसके कुछ घाव खुल गये। इन दोनों में परस्पर नीचे लिखी बातचीत हुई—

पृथ्वीराज—काकाजी, आप प्रसन्न तो हैं?

सूरजमल—कुंवर, आपके आने से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।

पृथ्वीराज—काकाजी, मैं भी महाराणा के घावों पर पट्टियां बँधवाकर आया हूं।

सूरजमल—राजपूतों का यही काम है।

पृथ्वीराज—काकाजी, स्मरण रखिये कि मैं आपको भाले की नोक जितनी भूमि भी न रखने दूंगा।

सूरजमल—मैं भी आपको एक पलंग जितनी भूमि पर शान्ति से शासन न करने दूंगा।

पृथ्वीराज—युद्ध के समय कल फिर मिलेंगे, सावधान रहिये।

सूरजमल—बहुत अच्छा।

इस तरह बातचीत करके पृथ्वीराज लौट आया।

दूसरे दिन सवेरे ही युद्ध आरंभ हुआ। सारंगदेव के ३५ तथा कुंवर पृथ्वीराज के ७ घाव लगे, सूरजमल भी बुरी तरह घायल हुआ और सारंगदेव का ज्येष्ठ पुत्र लिंबा मारा गया। सूरजमल और सारंगदेव को उनके साथी राजपूत वहां से अपने डेरों पर ले गये और पृथ्वीराज भी महाराणा के पास उसी अवस्था में गया। चित्तोड़ की इस लड़ाई में परास्त होने के पश्चात् लौटकर सूरजमल सादड़ी में और सारंगदेव बाठरडे में रहने लगा।

एक दिन सारंगदेव से मिलने के लिये सूरजमल बाठरड़े गया; उसी दिन एक हज़ार सवार लेकर कुंवर पृथ्वीराज भी वहां जा पहुंचा। रात का समय होने से सब लोग गांव का 'फलसा[1]' बन्द करके आग जलाकर निश्चिन्त ताप रहे थे। पृथ्वीराज फलसा तोड़कर भीतर घुस गया, उधर से राजपूतों ने भी

(१) कांटे और लकड़ियों के बने हुए फाटक को फलसा कहते हैं।

तलवारें सम्भालीं और युद्ध होने लगा। पृथ्वीराज को देखते ही सूरजमल ने कहा—'कुंवर, हम तुम्हें मारना नहीं चाहते, क्योंकि तुम्हारे मारे जाने से राज्य डूबता है, मुझपर तुम शस्त्र चलाओ'। यह सुनते ही पृथ्वीराज लड़ाई बन्दकर घोड़े से उतरा और उसने पूछा—'काकाजी, आप क्या कर रहे थे?' सूरजमल ने उत्तर दिया—'हम तो यहां निश्चिन्त होकर ताप रहे थे, पृथ्वीराज ने कहा—'मेरे जैसे शत्रु के होते हुए भी क्या आप निश्चिन्त रहते हैं? उसने कहा—'हां'।

दूसरे दिन सुबह होते ही सूरजमल तो सादड़ी की तरफ़ चला गया और सारंगदेव को पृथ्वीराज ने कहा कि देवी के मन्दिर में दर्शन करने को चलें। वे दोनों वहां पहुंचे और बलिदान हुआ। अब तक भी पृथ्वीराज उन घावों को नहीं भूला था, जो पहली लड़ाई में सारंगदेव के हाथ से उसके लगे थे। दर्शन करते समय अवसर देख उसने कमर से कटार निकालकर सारंगदेव की छाती में प्रहार कर दिया। गिरते-गिरते सारंगदेव ने भी तलवार का वार किया, परन्तु उसके न लगकर वह देवी के पाट पर जा लगी। सारंगदेव को मारकर पृथ्वीराज सूरजमल के पास सादड़ी पहुंचा और उससे मिलकर अन्तःपुर में गया, जहां उसने अपनी काकी से मुजरा कर कहा कि मुझे भूख लगी है। उसने भोजन तैयार करवाकर सामने रक्खा। भोजन के समय सूरजमल भी उसके साथ बैठ गया। यह देखते ही सूरजमल की स्त्री ने आकर, जिसमें विष मिलाया था, उस कटोरे को उठा लिया। इसपर पृथ्वीराज ने सूरजमल की ओर देखा, तो उसने कहा कि मैं तो तेरा चाचा हूं, इसलिये रक्त-सम्बन्ध से अपने भतीजे की मृत्यु को नहीं देख सकता, लेकिन तेरी काकी को तेरे मरने का क्या दुःख, इसी से उसने ऐसा किया है। यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि काकाजी, अब मेवाड़ का सारा राज्य आपके लिये हाज़िर है। इसके उत्तर में सूरजमल ने कहा कि अब मेवाड़ की भूमि में जल पीने की भी मुझे शपथ है। यह कहकर सूरजमल ने वहां से चलने की तैयारी की। पृथ्वीराज ने बहुत रोका, परन्तु उसने एक न सुनी और कांठल में जाकर नया राज्य स्थापित किया, जो अब प्रतापगढ़ नाम से प्रसिद्ध है'[1]। फिर महाराणा ने सारंगदेव के पुत्र जोगा को मेवल में बाठरड़ा आदि की जागीर देकर संतुष्ट कर दिया।

(१) टॉ, रा, जि० १, पृ० ३४५-४७। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४७-४६। राय साहिब हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० ३४-४१।

राण या राणक (भिणाय, अजमेर ज़िले मे) में सोलंकी रहते थे। वहां से भोज या भोजराज नाम का सोलंकी सिरोही राज्य के लास (लांछ) गांव में जो माळमगरे के पास है जा रहा। सिरोही के राव लाखा और भोज के बीच अनबन हो गई और कई लड़ाइयों के बाद सोलंकी भोज मारा गया, जिससे उसका पुत्र रायमल और पौत्र शंकरसी, सामन्तसी,[1] सखरा तथा भाण वहां से भागकर महाराणा रायमल के पास कुंभलगढ़ पहुंचे। उनका सारा हाल सुनकर कुंवर पृथ्वीराज की सम्मति के अनुसार उनसे कहा गया कि हम तुम्हें देसूरी की जागीर देते हैं, तुम मादड़ेचों को मारकर उसे ले लो। इसपर सोलंकी रायमल ने निवेदन किया कि मादड़ेचे तो हमारे सम्बन्धी हैं, हम उन्हें कैसे मारें ? उत्तर में महाराणा ने कहा कि अगर कोई ठिकाना लेना है, तो यही करना होगा; देसूरी के सिवा और कोई ठिकाना हमारे पास देने को नहीं है। तब लाचार होकर सोलंकियों ने यह मंज़ूर कर एकाएक मादड़ेचों पर हमला किया और उनको मारकर उसे ले लिया। जब सोलंकी रायमल महाराणा को मुजरा करने आया तो उसे १४० गावों के साथ देसूरी का पट्टा भी दिया गया[2]।

लांछ के सोलंकियों का मेवाड़ में आना

महाराणा कुंभा की राजकुमारी रमाबाई (रामाबाई) का विवाह गिरनार (सोरठ--काठियावाड़ का दक्षिणी विभाग) के यादव (चूड़ासमा) राजा मंडलीक (अन्तिम) के साथ हुआ था[3]। मेवाड़ के भाटों की ख्यातों तथा वीरविनोद से पाया जाता है कि 'रमाबाई और उसके पति के बीच अनबन हो जाने के कारण वह उसको दुःख दिया करता था[4]। इसकी खबर मिलने पर कुंवर पृथ्वीराज अपनी सेना सहित गिरनार पहुंचा और महल में सोते हुए मंडलीक को जा दबाया। ऐसी स्थिति में

रमाबाई का मेवाड़ में आना

(१) इस समय शंकरसी के वंश में जीलवाड़े के और सामन्तसी के वंश में रूपनगर के सरदार हैं।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४५। मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १९६, और देखो ऊपर पृ० २२७।

(३) देखो ऊपर पृ० ३६४, टि० ३।

(४) मंडलीक दुराचारी था और एक चारण के पुत्र की स्त्री पर बलात्कार करने की लंबी चौड़ी कथा मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखी है, जिसमे उसका महमूद बेगड़े से हारकर राज्यच्युत होना और मुसलमान बनना भी लिखा है (पत्र १२१)।

उससे कुछ न बन पड़ा और वह पृथ्वीराज से प्राण-भिक्षा मांगने लगा, जिसपर उसने उसके कान का एक कोना काटकर उसे छोड़ दिया। फिर वह रमाबाई को अपने साथ ले आया, उस(रमाबाई)ने अपनी शेष आयु मेवाड़ में ही व्यतीत की। महाराणा रायमल ने उसे खर्च के लिये जावर का परगना दिया। जावर में रमाबाई ने विशाल रामकुंड और उसके तट पर रामस्वामी का एक सुन्दर विष्णुमन्दिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५५४ चैत्र शुक्ला ७ रविवार को हुई। उस समय महाराणा ने राजा मंडलीक को भी निमंत्रित किया था"[1]।

ऊपर लिखे हुए वृत्तांत में से कुंवर पृथ्वीराज का गिरनार जाकर राजा मंडलीक को प्राणभिक्षा देना तथा रामस्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय मंडलीक को मेवाड़ मे बुलाना, ये दोनो बाते भाटों की गढ़न्त ही हैं, क्योंकि गिरनार का राजा अंतिम मंडलीक गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़े से हारने के पश्चात् हि० स० ८७६ (वि० सं० १५२८=ई० स० १४७१) में मुसलमान हो गया था[2] तथा हि० स० ८७७ (वि० सं० १५२६=ई०स० १४७२) के आसपास—अर्थात् रायमल के राज्य पाने से पूर्व—उसका देहान्त भी हो चुका था[3]। संभव तो यही है कि राज्यच्युत होकर मंडलीक के मुसलमान बनने या मरने पर रमाबाई मेवाड़ में आ गई हो। रमाबाई ने कुंभलगढ़ पर दामोदर का मन्दिर,

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४६–५०। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ११–१३।

(२) सी० मेबेल डफ़, क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० २६१। बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १९० और १९३। ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ५१।

कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुलतान के साथ की घासा गांव के पास की रायमल की लड़ाई में गिरनार के राजा (मंडलीक) का उसकी सहायतार्थ लडने को आना और रायमल का अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना लिखा है (टॉ, रा, जि० १, पृ० ३४०), जो मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि न तो रायमल की दिल्ली के सुलतान से लड़ाई हुई और न उसकी पुत्री का विवाह गिरनार के राजा के साथ हुआ था। सभव है, कर्नल टॉड ने भूल से रायमल की बहिन के स्थान में उसकी पुत्री लिख दिया हो।

(३) फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि मंडलीक का राज्य छिन जाने और उसके मुसलमान होने के बाद उसको थोड़ीसी जागीर दी गई थी। उसका भतीजा भापत (भोपत) ई० स० १४७२ (वि० सं० १५२६) में उस जागीर का स्वामी हुआ था, ऐसा माना जाता है (सी० मेबेल डफ़, क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया; पृ० २८४)।

कुंडेश्वर के मन्दिर से दक्षिण की पहाड़ी के नीचे एक सरोवर तथा योगिनीपत्तन (जावर) में रामकुंड और रामस्वामी नामक मन्दिर बनवाया था[1]।

झालों का मेवाड़ में आना

काठियावाड़ के हलवद राज्य का स्वामी झाला राजसिंह (राजधर) था। उसके पुत्र—अज्जा और सज्जा—भ्रातृकलह के कारण वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में मेवाड़ में चले आये, तब महाराणा रायमल[2] ने उनको अपने पास रक्खा और अपना सरदार बनाया। उन दोनों भाइयों के वंश में पांच ठिकाने—प्रथम श्रेणी के उमरावों में सादड़ी, देलवाड़ा तथा गोगुंदा (मोटा गांव), और दूसरी श्रेणी के सरदारों में ताणा व झाड़ोल—अभी तक मेवाड़ में मौजूद हैं[3]।

पृथ्वीराज की मृत्यु

पृथ्वीराज की बहिन आनंदाबाई का विवाह सिरोही के राव जगमाल के साथ हुआ था; वह दूसरी राणियों के कहने में आकर उसको बहुत दुःख दिया करता था। इसपर उसके भाई पृथ्वीराज ने सिरोही जाकर अपनी बहिन का दुःख मिटा दिया। जगमाल ने अपने वीर साले का बहुत सत्कार किया, परन्तु सिरोही से कुंभलगढ़ लौटते समय विष मिली हुई तीन गोलियां उसको देकर कहा कि बंधेज की ये गोलियां बहुत अच्छी हैं, कभी इनको आज़माना। सरलहृदय पृथ्वीराज ने कुंभलगढ़

---

(१) *श्रीमत्कुंभनृपस्य दिग्गजरदातिक्रांतकीर्त्येबुधेः*

कन्या यादववंशमडनमणिश्रीमंडलीकप्रिया ॥······॥ १ ॥

श्रीमत्कुंभलमेरुदुर्गशिष(ख)रे दामोदरं मदिरं

श्रीकुंडेश्वरदक्ष(क्षि)णाश्रितगिरेस्तीरे सरः सुंदरं ।

श्रीमद्भूरिमहाब्धिसिंधुभुवने श्रीयोगिनीपत्तने

भूयः कुंडमचीकरत्किल रमा लोकत्रये कीर्तये ॥ २ ॥

(जावर के रामस्वामी के मन्दिर की प्रशस्ति)।

अनुमान तीस वर्ष पूर्व जब मैंने इस प्रशस्ति की छाप तैयार की, उस समय यह अखंडित थी; परन्तु तीन वर्ष पूर्व फिर मैंने इसे देखा, तो इसके टुकड़े टुकड़े ही मिले।

(२) अज्जा और सज्जा के महाराणा रायमल के पास चले आने का कारण यह है कि उक्त महाराणा ने उनकी बहिन रतनकुंवर से विवाह किया था (बड़वा देवीदान की ख्यात। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ३८-३९)।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२३।

के निकट पहुंचने पर वे गोलियां खाईं, जिससे कुंभलगढ़ के नीचे पहुंचते ही उसका देहान्त हो गया[1]। कुंभलगढ़ के क़िले में मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर के सामने उसका दाह-संस्कार किया गया, जिसमें १६ स्त्रियां सती हुईं। जहां उसका देहान्त हुआ और जहां दाहक्रिया हुई, वहां दोनों जगह एक एक छत्री बनी हुई है।

कुंवर संग्रामसिंह का अज्ञात रहना

जब कुंवर पृथ्वीराज और जयमल को भविष्यद्वक्ताओं द्वारा विश्वास हो गया कि सांगा मेवाड़ का स्वामी होगा, तब उन्होंने उसे मारना चाहा। राठोड़ बीदा की सहायता से वह सेवंत्री गांव से बचकर गोड़वाड़ की तरफ़ चला गया, जिसके पीछे वह गुप्त भेष में रहकर इधर उधर अपने दिन काटता रहा[2]। उस समय के संबंध की अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनके ऐतिहासिक होने में सन्देह है। अन्त में वह एक घोड़ा ख़रीदकर श्रीनगर (अजमेर ज़िले में) के परमार कर्मचन्द की सेवा में जाकर रहा। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन कर्मचन्द अपने साथियों सहित जंगल में आराम कर रहा था; उस समय सांगा भी कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे सो रहा। कुछ देर बाद उधर जाते हुए दो राजपूतों ने देखा कि एक सांप सांगा के सिर पर अपना फन फैलाए हुए छाया कर रहा है। उन राजपूतों

---

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २०५। टॉ, रा, जि० १, पृ० ३४८। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा, पृ० ४२-४३। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५१। पृथ्वीराज बड़ा वीर होने के अतिरिक्त लड़ने के लिये दूर दूर धावे किया करता था, जिससे उसको 'उडणा पृथ्वीराज' कहते थे (नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २)

(२) एक बात तो यह प्रसिद्ध है कि सांगा ने एक गडरिये के यहां रहकर कुछ दिन बिताये (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४२)। दूसरी कथा यह है कि वह आमेर के राजा पृथ्वीराज के नौकरों में भर्ती हुआ और रात को उसके महल का पहरा दिया करता था। एक दिन रात को वह पहरा दे रहा था, उस समय मूसलधार वर्षा होने लगी और महल की छत से पानी के गिरने की आवाज़ उसके कानों को बुरी मालूम हुई, जिससे उसने सोचा कि राजा को तो यह आवाज़ बहुत ही बुरी लगती होगी; इसलिये वहां पर उसने गद्दी घास डाल दी, तो पानी की आवाज़ बन्द हो गई। इसपर राणी ने राजा से कहा कि अब तो बारिश बंद हो गई। राजा ने कहा कि वर्षा तो हो रही है, परन्तु आश्चर्य है कि पानी की आवाज़ बंद कैसे हो गई! फिर एक दासी को आवाज़ बंद होने का कारण जानने के लिये राजा ने भेजा। दासी ने आकर कहा—पानी तो वैसे ही गिर रहा है, मगर पहरेदार ने उसके नीचे

ने जाकर यह बात कर्मचन्द से कही, जिसे सुनकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और उसने वहां जाकर स्वयं इस घटना को अपनी आंखों से देखा। यह देखकर सब को सांगा के साधारण पुरुष होने के विषय में संदेह हुआ। बहुत पूछताछ करने पर उसने सच्चा हाल कह दिया, जिससे कर्मचन्द बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि आपको छिपकर नहीं रहना चाहिये था। फिर उसने अपनी पुत्री का विवाह सांगा के साथ कर दिया[1]।

जयमल और पृथ्वीराज के मारेजाने और सांगा का पता न होने से महाराणा ने अपने पुत्र जेसा को अपना उत्तराधिकारी बनाया,[2] जो मेवाड़ जैसे राज्य के लिये योग्य नहीं था। सांगा के जीवित होने की बात जब महाराणा ने सुनी, तब उसको बुलाने के लिये कर्मचन्द पंवार के पास आदमी भेजा। बुलावा आते ही कर्मचन्द उसको साथ लेकर महाराणा के दरबार मे पहुंचा। उसे देखकर महाराणा को बड़ी प्रसन्नता हुई और कर्मचन्द को अच्छी जागीर दी[3]। कर्मचन्द के वंश में इस समय बम्बोरी का सरदार मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के सरदारों में है।

सांगा का महाराणा के पास आना

अनुमान होता है कि महाराणा कुंभा के नये बनवाये हुए एकलिंगजी के मन्दिर को महाराणा रायमल के समय की मुसलमानों की चढ़ाइयों में हानि पहुंची हो, जिससे रायमल ने सूत्रधार (सुथार) अर्जुन के द्वारा उक्त मन्दिर का फिर उद्धार कराया। इस मन्दिर को भेट किये हुए कई गांव, जो उदयसिंह के समय राज्याधिकार में आ गये

महाराणा रायमल के पुण्य-कार्य

घास रख दी है, जिससे आवाज़ नहीं होती। यह सुनकर राजा ने जान लिया कि वह साधारण सिपाही नहीं, किन्तु किसी बड़े घराने का पुरुष होना चाहिये; क्योंकि उसे वह आवाज़ बुरी लगी, जिससे उसने उसका यत्न भी तत्काल कर दिया। राजा ने उसको बुलाया और ठीक हाल जानने पर उसे कहा—तुमने मुझसे अपना हाल क्यो छिपाया? मैं क्या ग़ैर आदमी हूं? तब से वह उसका सत्कार करने लगा (मुंशी देवीप्रसाद; आमेर के राजा पृथ्वीराज का जीवनचरित्र; पृ० ६–११)।

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५१–५२। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४२–४३। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० १७–१६।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंघजी का जीवनचरित्र, पृ० २१।

(३) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५२।

थे, फिर बहाल किये गये और नौवापुर गांव उसने अपनी तरफ़ से भेट किया[1]। अपने गुरु गोपालभट्ट को उसने प्रहाण[2] और थूर[3] गांव तथा उक्त मन्दिर की प्रशस्ति के कर्त्ता महेश को रत्नखेट[4] (रतनखेड़ा) गांव दिया। उक्त महाराणा ने राम,[5] शांकर[6] और समयासंकट[7] नामक तीन तालाब बनवाये। अर्थशास्त्र के अनुसार निष्पुत्रों के धन का स्वामी राजा होता है, परन्तु सब शास्त्रों के ज्ञाता रायमल ने ऐसा धन अपने कोश में लेना छोड़ दिया[8]।

---

(१) पूर्वं क्षोणिपतिप्रदत्तनिखिलग्रामोपहारार्पणा-
काले लोपमवाप यावनजनैः प्रासादभंगोऽप्यभूत् ।
उद्धृत्योन्नतमेकलिंगनिचयं ग्रामांश्च तान् पूर्वव-
द्दत्त्वा संप्रति राजमल्लनृपतिर्नौवापुरं चार्पयत् ॥ ८६ ॥
भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२२।

(२) प्रगीतासुतार्थानुपादानमेकं परं ब्राह्मणग्रामतस्तु प्रहाणं ।
असौ दक्षिणामर्थिने राजमल्लो ददाति स्म गोपालभट्टाय तुष्टः ॥ ८२ ॥

(३) इक्षुक्षेत्र मधुरमददात् भट्टगोपालनाम्ने
थु(थू)रग्रामं तमिह गुरवे राजमल्लो नरेन्द्रः ॥ ८७ ॥ वही; पृ० १२२।

(४) आसज्येज्यं हरमनुमनःपावनं राजमल्लो
मल्लीमालामृदुलकवये श्रीमहेशाय तुष्टः ।
ग्रामं रत्नप्रभवमभवावृत्तये रत्नखेटं
क्षोणीभर्ता व्यतरदरुणे सैंहिकेयाभियुक्ते ॥ ६७ ॥ वही; पृ० १२१।

(५) श्रीरामाह्व सरो यन्नरपतिरतनोद्राजमल्लस्तदासौ ।
प्रोत्फुल्लाभोजमित्थं वि(त्रि)दशदशमिनो हत सशेरते स्म ॥ ७४ ॥
वही; पृ० १२१।

(६) अचीखनच्छांकरनामधेयं महासरो भूपतिराजमल्लः······॥ ७५ ॥
वही; पृ० १२१।

(७) श्रीराजमल्लविभुना समयासंकटमसंकटं सलिलै
अंबरचुंबितरंगं सेतौ तुंगं महासरो व्यरचि ॥ ७६ ॥ वही; पृ० १२१।

(८) धनिनि निधनमाप्तेपत्यहीने तदीयं
धनमवनिपभोग्यं प्राहुरर्थागमज्ञाः ।

महाराणा रायमल के समय के अब तक नीचे लिखे चार शिलालेख मिले हैं।

महाराणा रायमल के शिलालेख

१—एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) चैत्र शुक्ला दशमी गुरुवार की प्रशस्ति[1]। इसमें महाराणा हंमीर से लेकर रायमल तक के राजाओं के संबंध की कई घटनाओं का उल्लेख होने से इतिहास के लिये यह बड़े महत्त्व की है। इसी लिये ऊपर जगह-जगह इससे अवतरण उद्धृत किये गये हैं।

२—महाराणा रायमल की बहिन रमाबाई के बनवाये हुए जावर गांव के रामस्वामी के मंदिर की वि० सं० १५५४ (ई० स० १४९७) चैत्र सुदि ७ रविवार की प्रशस्ति[2]। इसी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि रमाबाई का विवाह जूनागढ़ के यादव राजा मंडलीक (अंतिम) के साथ हुआ था।

३—नारलाई (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ इलाके में) गांव के आदिनाथ के मंदिर का वि० सं० १५५७ (ई० स० १५००) वैशाख सुदि ६ शुक्रवार का शिलालेख[3]। इसमें लिखा है कि महाराणा रायमल के राज्य-समय ऊकेश-(ओसवाल)वंशी मं० (मंत्री) सीहा और समदा तथा उनके कुटुंबी मं० कर्मसी, धारा, लाखा आदि ने कुंवर पृथ्वीराज की आज्ञा से सायर के बनवाये हुए मंदिर की देवकुलिकाओं का उद्धार कराया और उक्त मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की।

४—घोसुंडी की बावड़ी की वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) वैशाख सुदि ३

विदितनिखिलशास्त्रो रायमल्लस्तदुत्थन्
विशदयति यशोभिर्बाप्पभूपान्ववाय ॥ ८३ ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १२२।

(१) वही, पृ० ११७–२१।

(२) इस लेख की छाप तथा नक़ल मैंने तैयार की है।

(३) विजयशंकर गौरीशंकर ओझा, भावनगर प्राचीन-शोध-संग्रह; पृ० १४–१६। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १४० -४२। उक्त दोनों पुस्तकों में इस लेख का संवत् १५९७ छपा है, जो अशुद्ध है, क्योंकि उक्त संवत् में मेवाड़ का स्वामी रायमल नहीं, किन्तु उदयसिंह (दूसरा) था। इस लेख का शुद्ध संवत् जानने के लिये मैंने नरलाई जाकर इसको पढ़ा तो इसमें संवत् १५५७ मिला।

बुधवार की प्रशस्ति[1]। इस प्रशस्ति में महाराणा रायमल की राणी शृंगारदेवी के—जो मारवाड़ के राजा जोध (राव जोधा) की पुत्री थी—द्वारा उक्त बावड़ी के बनवाये जाने का उल्लेख और उसके पति तथा पिता के वंशों का थोड़ासा परिचय भी है।

महाराणा रायमल की मृत्यु

कुंवर जयमल और पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद महाराणा उदासीन और अस्वस्थ रहा करता था। वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५०९ ता० २४ मई) को अनुमान ३६ वर्ष राज्य करने के पश्चात् वह स्वर्ग को सिधारा।

महाराणा रायमल की सन्तति

भाटों की ख्यातों में लिखा है कि रायमल ने ग्यारह विवाह[2] किये थे, जिनसे तेरह कुंवर[3]—पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह,[4] कल्याणमल, पत्ता, रायसिंह, भवानीदास, किशनदास, नारायणदास, शंकरदास, देवीदास, सुन्दरदास और वेणीदास—तथा दो लड़कियां हुईं, जिनमें से एक आनन्दाबाई[5] थी।

संग्रामसिंह (सांगा)

महाराणा संग्रामसिंह का, जो लोगों में सांगा नाम से अधिक प्रसिद्ध है,

(१) बंगा ए सो. ज, जिल्द ५६, भाग १, पृ० ७९-८२।

(२) रायमल की राणियों के जो ग्यारह नाम ख्यातों में मिलते हैं, वे बहुधा विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि घोसुंडी की बावडी की प्रशस्ति से पाया जाता है कि मारवाड़ के राव रणमल के पुत्र जाध (जोधा) की कुंवरी शृंगारदेवी के साथ, जिसने घोसुंडी की बावड़ी बनवाई थी, रायमल का विवाह हुआ था (बंगा. ए. सो. ज, जि० ५६, भा० १, पृ० ७९-८२), परन्तु उसका नाम ख्यातों में नहीं है।

(३) मुहणोत नैणसी ने केवल ९ नाम—पृथ्वीराज, जयमल, जेसा, सांगा, किसना, धन्ना, देवीदास, पत्ता और राणा (रामा) दिये हैं (ख्यात; पत्र ४, पृ० २)। भाटों की ख्यातों में जेसा (जयसिंह) का नाम नहीं मिलता।

(४) प्रथम तीन कुंवर हलवद के स्वामी राजधर बाघावत की पुत्री से उत्पन्न हुए थे (बड़वा देवीदान की ख्यात। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंघजी का जीवनचरित्र, पृ० १८-१९)।

(५) आनन्दाबाई के लिये देखो ऊपर पृ० ६५३।

जन्म वि० सं० १५३६ वैशाख वदि ६ (ई० स० १४८२ ता० १२ अप्रेल) तथा राज्याभिषेक वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० स० १५०६ ता० २४ मई) को हुआ था[1]। मेवाड़ के महाराणाओं में वह सबसे अधिक प्रतापी और प्रसिद्ध हुआ, इतना ही नहीं, किन्तु उस समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था, जिसकी सेवा मे अनेक हिन्दू राजा रहते थे और कई हिन्दू राजा, सरदार तथा मुसलमान अमीर, शाहज़ादे आदि उसकी शरण लेते थे। जिस समय महाराणा सांगा मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, उस समय दिल्ली मे लोदी वंश का सुलतान सिकन्दर लोदी, गुजरात में महमूदशाह (बेगड़ा) और मालवे में नासिरशाह ख़िलजी राज्य करता था। उस समय दिल्ली की सल्तनत बहुत ही निर्बल हो गई थी।

पवार कर्मचन्द की प्रतिष्ठा बढ़ाना

कुंवर सांगा को लेकर पंवार कर्मचन्द के चित्तोड़ आने पर महाराणा रायमल ने उसको अच्छी जागीर दी थी, जिसको यथेष्ट न समझकर महाराणा सांगा ने अपनी आपत्ति के समय में की हुई सेवा के निमित्त, कर्मचन्द को अपने राज्य के दूसरे ही वर्ष अजमेर, परबतसर, मांडल, फूलिया, बनेड़ा आदि पंद्रह लाख की वार्षिक आय के परगने जागीर में देकर उसे रावत की पदवी भी दी। कर्मचन्द ने अपना नाम चिरस्थायी रखने के लिए उन परगनो के कई गांव ब्राह्मण, चारणादि को दान में दिये, जिनमें से कई एक अब तक उनके वंशजों के अधिकार में हैं[2]।

ईडर का राज्य रायमल को दिलाना

ईडर के राव भाण के दो पुत्र—सूर्यमल और भीम—थे। राव भाण का देहान्त होने पर सूर्यमल गद्दी पर बैठा और १८ मास तक राज्य करके मर गया; सूर्यमल की जगह उसका पुत्र रायमल ईडर का राजा बना, परन्तु उसके कम उमर होने के कारण उसका चाचा भीम उसको गद्दी से उतारकर स्वयं राज्य का स्वामी बन गया। रायमल ने वहां

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र ४, पृ० २।

वीरविनोद मे ये दोनो सवत् क्रमशः १५३८ और १५६५ दिये हैं (वीरविनोद; भा० १, पृ० ३७१–७२)। कर्नल टॉड ने भी महाराणा सागा की गद्दीनशीनी का वर्ष वि० सं० १५६५ दिया है (टॉ, रा; जि० १, पृ० ३४८), परन्तु इन दोनो की अपेक्षा नैणसी का लेख अधिक विश्वास-योग्य है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० २६–२७।

से भागकर महाराणा सांगा की शरण ली। महाराणा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी। कुछ दिनों बाद भीम भी मर गया और उसका पुत्र भारमल गद्दी पर बैठा। युवा होने पर रायमल ने महाराणा सांगा की सहायता से फिर ईडर पर अधिकार कर लिया[1]।

गुजरात के सुलतान से लड़ाई

हि० स० ६२० (वि० सं० १५७१=ई० स० १५१४) में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र ने महमूदाबाद आने पर सुना कि राणा सांगा की सहायता से भारमल को ईडर से निकालकर रायमल वहां का स्वामी बन गया है। इस बात से वह अप्रसन्न हुआ कि भीम ने उसकी आज्ञा से ईडर पर अधिकार किया था, अतएव उसे पदच्युत कर रायमल को ईडर दिलाने का राणा को अधिकार नहीं है[2]। इसी विचार के अनुसार उसने अहमदनगर के जागीरदार निज़ामुल्मुल्क को आज्ञा दी कि वह रायमल को निकालकर भारमल को ईडर की गद्दी पर बिठा दे। निज़ामुल्मुल्क ने ईडर को जा घेरा, जिससे रायमल ईडर छोड़कर बीसलनगर (बीजानगर) की तरफ़ पहाड़ों में चला गया। निज़ामुल्मुल्क ने उसका पीछा किया, परन्तु उसने गुजरात की सेना पर हमला कर निज़ामुल्मुल्क को बुरी तरह से हराया और उसके बहुतसे अफ़सरों को मार डाला। सुलतान मुज़फ़्फ़र ने यह ख़बर सुनकर निज़ामुल्मुल्क को यह लिखकर पीछा बुला लिया कि यह लड़ाई तुमने व्यर्थ ही की, हमारा प्रयोजन तो सिर्फ़ ईडर लेने से था[3]। सुलतान ने निज़ामुल्मुल्क के स्थान पर नसरतुल्मुल्क को नियत किया, परन्तु उसके पहुंचने से पहले ही निज़ामुल्मुल्क वहां के बन्दोबस्त पर ज़हीरुल्मुल्क को नियत कर वहां से लौट गया। इस अवसर का लाभ उठाकर रायमल ने ईडर के इलाक़े में पहुंचकर ज़हीरुल्मुल्क पर हमला किया और उसे मार डाला[4]। यह ख़बर सुनकर सुलतान ने नसरतुल्मुल्क को लिखा कि बीसलनगर (बीजानगर) बदमाशों का

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५४-५५। रायसाहब हरबिलास सारड़ा, महाराणा सांगा, पृ० ५३-५४। बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २५२। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ८३।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २५२-५३।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ८३।

(४) वही, जि० ४, पृ० ८३। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ५५।

ठिकाना है इसलिए उसे लूट लो, परन्तु रायमल के आगे उसकी दाल न गली, जिससे सुलतान ने उसे वापस बुलाकर मलिक हुसेन बहमनी को जो अपनी बहादुरी के कारण निज़ामुल्मुल्क (मुबारिज़ुल्मुल्क) बनाया गया था, अपने मंत्रियों की इच्छा के विरुद्ध ईडर का हाकिम नियत किया[1]।

हि० स० ६२६ (वि० सं० १५७७=ई० स० १५२०) में एक दिन एक भाट फिरता हुआ ईडर पहुंचा और निज़ामुल्मुल्क के सामने भरे दरबार में महाराणा सांगा की प्रशंसा करते हुए उसने कहा कि महाराणा के समान इस समय भारत भर में कोई राजा नहीं है। महाराणा ईडर के राजा रायमल के रक्षक हैं, अतः भले ही थोड़े दिन ईडर में रह लो, परन्तु अन्त में वह रायमल को ही मिलेगा। यह सुनकर निज़ामुल्मुल्क ने बड़े क्रोध से कहा—देखें वह कुत्ता किस प्रकार रायमल की रक्षा करता है? मैं यहां बैठा हूं, वह क्यों नहीं आता। फिर दरवाज़े पर बैठे हुए कुत्ते की तरफ़ उंगली करके कहा कि अगर राणा यहां आया तो वह इस कुत्ते जैसा ही होगा[2]। भाट ने उत्तर दिया कि सांगा अवश्य आवेगा और तुम्हें ईडर से निकाल देगा। उस भाट ने जाकर यह सारा हाल महाराणा से कहा। यह सुनते ही उसने गुजरात पर चढ़ाई करने का निश्चय किया और सिरोही के इलाके में होता हुआ वह वागड़ में जा पहुंचा। वागड़ का राजा (उदयसिंह) भी महाराणा के साथ हो गया। महाराणा के ईडर के इलाके में पहुंचने की ख़बर सुनने पर सुलतान ने और सेना भेजना चाहा, परन्तु उसके मंत्रियों ने निज़ामुल्मुल्क की बदनामी कराने के लिए वह बात टाल दी। सुलतान, क़िवामुल्मुल्क पर नगर की रक्षा का भार सौंपकर मुहम्मदाबाद को पहुंचा, जहां निज़ामुल्मुल्क ने उसको यह ख़बर पहुंचाई कि राणा के साथ ४०००० सवार हैं और ईडर में केवल ५०००, अतएव ईडर की रक्षा न की जा सकेगी। इस विषय में सुलतान ने अपने मंत्रियों की सलाह ली, परन्तु वे इस बात को टालते ही रहे। इस समय तक राणा ईडर पर आ पहुंचा और निज़ामुल्मुल्क, जिसको मुबारिज़ुल्मुल्क का ख़िताब मिला था, भागकर अहमदनगर के किले में जा रहा और

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २६४। हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ० ७८।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २६४–६५। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ७८–७९।

सुलतान के आने की प्रतीक्षा करने लगा[1]। महाराणा ने ईडर की गद्दी पर रायमल को बिठाकर अहमदनगर को जा घेरा। मुसलमानों ने किले के दरवाज़े बन्द कर लड़ाई शुरू की। इस युद्ध में महाराणा की सेना का एक नामी सरदार डूंगरसिंह चौहान[2] (वागड़ का) बुरी तरह घायल हुआ और उसके कई भाई-बेटे मारे गए। डूंगरसिंह के पुत्र कान्हसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई। किले के लोहे के किवाड़ तोड़ने के लिये जब हाथी आगे बढ़ाया गया तब वह उनमें लगे हुए तीक्ष्ण भालों के कारण मुहरा न कर सका। यह देखकर वीर कान्हसिंह ने भालों के आगे खड़े होकर महावत को कहा कि हाथी को मेरे बदन पर झोंक दे। कान्हसिंह पर हाथी ने मुहरा किया, जिससे उसका बदन भालों से छिन्न-छिन्न हो गया और वह तत्क्षण मर गया, परन्तु किवाड़ भी टूट गए[3]। इस घटना से राजपूतों का उत्साह और भी बढ़ गया, वे नंगी तलवारें लेकर किले में घुस गए और उन्होंने मुसलमान सेना को काट डाला। मुबारिज़ुल्मुल्क क़िले की पीछे की खिड़की से भाग गया। ज्यों ही वह किले से भाग रहा था, त्यों ही वही भाट—जिसने उसे भरे दरबार में कहा था कि सांगा आयगा और तुम्हें ईडर से निकाल देगा—दिखाई दिया और उसने कहा कि तुम तो सदा महाराणा के आगे भागा करते हो। इसपर लज्जित होकर वह नदी के दूसरे किनारे पर महाराणा की सेना से मुकाबला करने के लिए ठहरा[4]। उसका पता लगते ही महाराणा उसपर टूट पड़ा, जिससे मुसलमानों में भगदड़ पड़ गई, बहुतसे मुसलमान सरदार मारे गए, मुबारिज़ुल्मुल्क भी बहुत घायल हुआ और सुलतान की सारी सेना तितर-बितर होकर अहमदाबाद को भाग गई। मुसलमानों के असबाब के साथ कई हाथी भी महाराणा के हाथ लगे। महाराणा ने अहमदनगर को लूटकर बहुतसे मुसलमानों को क़ैद किया; फिर वह बड़नगर को लूटने चला,

---

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २६५-६६।

(२) डूंगरसिंह चौहान बाला का पुत्र था, जो पहले वागड़ में रहता था, फिर महाराणा सांगा की सेवा में आकर रहा, तो उसको बदनोर की जागीर मिली, जहां उसके बनवाए हुए तालाब, बावड़ियां और महल विद्यमान हैं (मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र २६, पृ० १)।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र २६, पृ० १। वीरविनोद, भा० १, पृ० ३५६। हरबिलास सारड़ा, महाराणा सांगा; पृ० ८०-८१।

(४) हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ८१।

परंतु वहां के ब्राह्मणों ने उससे अभयदान की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर वह वीसलनगर की ओर बढ़ा। महाराणा ने लड़ाई में वहां के हाकिम हातिमखां को मारकर शहर को लूटा। इस प्रकार महाराणा ने अपने अपमान का बदला लिया, सुलतान को भयभीत किया, निज़ामुल्मुल्क का घमंड चूर्ण कर दिया और रायमल को ईडर का राज्य देकर चित्तोड़ को प्रस्थान किया[1]।

सिकन्दर लोदी के समय से ही महाराणा ने दिल्ली के अधीनस्थ इलाके अपने राज्य में मिलाना शुरू कर दिया था, परन्तु अपने राज्य की निर्बलता के कारण वह महाराणा से लड़ने को तैयार न हो सका। वि० सं० १५७४ (ई० स० १५१७) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली के तख़्त पर बैठा और तुरन्त ही उसने बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करदी। यह ख़बर सुनकर महाराणा भी उससे मुक़ाबला करने के लिये आगे बढ़ा। हाड़ोती की सीमा पर खातोली गांव के पास दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ। एक पहर तक लड़ाई होने के बाद सुलतान अपनी सेना सहित भाग निकला और उसका एक शाहज़ादा क़ैद हुआ, जिसे कुछ समय तक क़ैद रखने के बाद महाराणा ने दण्ड लेकर छोड़ दिया। इस युद्ध में महाराणा का बायां हाथ तलवार से कट गया और घुटने पर एक तीर लगने के कारण वह सदा के लिये लँगड़ा हो गया[2]।

दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी से लड़ाइयां

खातोली की पराजय का बदला लेने के लिये सुलतान ने वि० सं० १५१८ में एक सेना चित्तोड़ की ओर रवाना की। 'तारीखे सलातीने अफ़ग़ाना' में इस लड़ाई के संबंध में इस तरह लिखा है—"इस सेना में मियां हुसेनखां ज़रबख़्श, मियां खानखाना फ़ारमुली और मियां मारूफ़ मुख्य अफसर थे और सेनापति मियां माखन था। हुसेनखां, सुलतान एवं माखनखां से नाराज़ होकर एक हज़ार सवारों सहित राणा से जा मिला, क्योंकि सुलतान माखन द्वारा उसको पकड़वाना चाहता था। पहले तो राणा ने इसको भेद-नीति समझा, परन्तु अंत में उसने उसे अपने पक्ष में ले लिया। हुसेन के इस तरह अलग हो जाने से मियां माखन

(१) फ़ॉर्ब्स, रासमाला; पृ० २९५। हरविलास सारड़ा, महाराणा सांगा, पृ० ८२-८३। बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २६९-७०।

(२) टॉ, रा; जि० १, पृ० ३५१। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५४। हरविलास सारड़ा; महाराणा सांगा, पृ० ५६।

निराश हो गया, यद्यपि उसके पास ३०००० सवार और ३०० हाथी थे। दूसरे दिन मियां माखन ने राणा पर चढ़ाई की। राणा भी हुसेन को साथ लेकर बड़े सैन्य सहित आगे बढ़ा। मियां माखन ने अपनी सेना को इस तरह जमाया कि ७००० सवारों सहित सय्यदखां फुरत और हाजीखां दाहिनी ओर, तथा दौलत खां, अल्लाहदाद खां और यूसफ़खां बाईं ओर रक्खे गये। जब दोनों सेनाएं तैयार हो गईं तो हिन्दू बड़ी वीरता से आगे बढ़े और सुलतान की सेना को हराने में सफल हो गये। बहुत से मुसलमान मारे गये, शेष सेना बिखर गई और मियां माखन अपने डेरे को लौट गया। इस दिन शाम को मियां हुसेन ने मियां माखन को एक पत्र लिखा कि अब तुमको ज्ञात हुआ होगा कि एक दिल होकर लड़नेवाले क्या-क्या कर सकते हैं। तुम्हें धिक्कार है कि ३०००० सवार इतने थोड़े से हिन्दुओं से हार गये। मारूफ को फ़ौरन भेजो ताकि राणा को जल्दी हराया जा सके। हुसेन ने मारूफ को भी इस आशय का एक पत्र लिखा कि अब तुमने अच्छी तरह देख लिया है कि मियां माखन किस तरह कार्य-संचालन करता है। अब हमें सुलतान की ओर से लड़ना चाहिये, यद्यपि उसने हमारे साथ उचित व्यवहार नहीं किया, तो भी हमने उसका नमक खाया है। मियां मारूफ ने ६००० सवार लेकर मियां हुसेन से दो कोस पर डेरा डाला जिसकी खबर पाते ही हुसेन भी महाराणा से अलग होकर उससे जा मिला। राणा की सेना विजय का आनन्द मना रही थी, इतने में अफ़गानों ने उस पर एकदम हमला कर दिया। इस युद्ध में महाराणा भी घायल हुआ और उसे राजपूत उठा ले गये, मारूफ ने राणा के १५ हाथी और ३०० घोड़े सुलतान के पास भेजे[1]। ऊपर लिखे हुए वर्णन का पिछला अंश विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि 'तारीखे दाउदी' और 'वाकेआते मुश्ताकी' आदि में इस धोखे का वर्णन नहीं मिलता। यदि हुसेन की सहायता से सुलतान की विजय हुई होती, तो वह उसको युद्ध के कुछ दिनों पश्चात् चंदेरी में न मरवाता और न उसके घातकों को पारितोषक देता[2]। वस्तुतः इस युद्ध में राजपूतों की ही विजय हुई। यह लड़ाई धौलपुर के पास हुई थी और बादशाह बाबर अपनी दिनचर्या की पुस्तक में महाराणा की विजय होना लिखता है[3]। राजपूतों ने मुसलमान सेना

(१) तारीखे सलातीन अफ़गाना—इलियट्, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० ५, पृ० १९–२०।

(२) हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा, पृ० ६२।

(३) तुज़के बाबरी का ए. एस. बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५९३।

को भगाकर बयाने तक उसका पीछा किया। इस युद्ध में महाराणा को मालवे का कुछ भाग, जिसे सिकन्दरशाह लोदी ने अपने अधिकार में कर लिया था, मिला[1]।

मेदिनीराय की सहायता करना

महमूद (दूसरे) के समय में मालवे के राज्य की स्थिति डाँवाडोल हो रही थी। मुसलमान अमीर शक्तिशाली बन गये और वे महमूद को अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहते थे। जब उसको अपने प्राणों का भय हुआ, तब वह मांडू से भाग निकला। उसके चले जाने पर अमीरों ने उसके भाई साहिबखां को मालवे का सुलतान बनाया[2]। इस आपत्ति-काल में मालवे का प्रबल राजपूत सरदार मेदिनीराय महमूद का सहायक बना और उसने साहिबखां की सेना को परास्त कर महमूद को फिर मांडू की गद्दी पर बिठाया। इस सेवा के बदले में सुलतान ने उसको अपना प्रधान मंत्री बनाया। विद्रोही पक्ष के अमीरों ने उसकी बढ़ी हुई शक्ति की ईर्ष्या कर दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी और गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र से यह कहकर सहायता मांगी कि मालवे का राज्य हिन्दुओं के हाथ में चला गया है और महमूद तो नाममात्र का सुलतान रह गया है। दिल्ली के सुलतान ने १२००० सेना साहिबखां की सहायता के लिये भेजी और मुज़फ़्फ़र स्वयं सेना के साथ मालवे की तरफ़ बढ़ा। मेदिनीराय ने सब विद्रोहियों पर विजय पाई, दिल्ली तथा गुजरात की सेनाओं को परास्त किया और मालवे में महमूद का राज्य स्थिर कर दिया[3]। निराश और हारे हुए अमीर मेदिनीराय के विरुद्ध सुलतान को भड़काने का यत्न करने लगे और उसमें वे इतने सफल हुए कि मेदिनीराय को मरवाने के लिये उस (सुलतान) को उद्यत कर दिया। अन्त में सुलतान ने उसे मरवाने का प्रपंच रचा, परन्तु वह घायल होकर बच गया। इस घटना के बाद मेदिनीराय सुलतान से सचेत रहने लगा और चुने हुए ५०० राजपूतों के साथ महल में जाने लगा। मूर्ख सुलतान को उसकी इस सावधानी से भय हो गया, जिससे वह मांडू छोड़कर गुजरात को भाग

(१) अर्सकिन, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० १, पृ० ४८०।

(२) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० २४७।

(३) वही, जि० ४, पृ० २४८–५४। हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० ६४–६८।

गया[1]। सुलतान मुज़फ्फर उसको साथ लेकर मांडू की तरफ़ चला, तो मेदिनीराय भी अपने पुत्र पर मांडू के क़िले की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा सांगा से सहायता लेने के लिये चित्तोड़ पहुंचा। महाराणा ने मेदिनीराय के साथ मांडू को प्रस्थान किया, परन्तु सारंगपुर पहुंचने पर यह ख़बर मिली कि मुज़फ्फ़रशाह ने हज़ारों राजपूतों को मारने के बाद मांडू को विजय कर सुलतान को फिर गद्दी पर बिठा दिया है और उसकी रक्षा के लिये आसफ़ख़ां की अध्यक्षता में बहुतसी सेना रखकर वह गुजरात को लौट गया है, जिससे महाराणा भी मेदिनीराय के साथ चित्तोड़ को लौट गया[2] और उसने गागरौन, चंदेरी[3] आदि इलाके जागीर में देकर मेदिनीराय को अपना सरदार बनाया।

हि० स० ९२५ (वि० सं० १५७६=ई० स० १५१९) में सुलतान महमूद अपनी रक्षार्थ रक्खी हुई गुजरात की सेना के भरोसे मेदिनीराय पर

महाराणा का महमूद को कैद करना

चढ़ाई कर गागरौन की तरफ़ चला, जहां मेदिनीराय का प्रतिनिधि भीमकरण[4] रहता था। यह ख़बर पाते ही महाराणा सांगा भी ५० हज़ार सेना लेकर महमूद से लड़ने को चला और गागरौन के पास दोनों सेनाएं जा पहुंचीं। गुजरात की सेना के अफ़सर आसफ़ख़ां ने लड़ाई न करने की सलाह दी, परन्तु सुलतान लड़ने को उतारू हुआ और लड़ाई शुरू हुई, जिसमें मालवे के तीस सरदार और गुजरात का प्रायः सारा सैन्य राजपूतों के हाथ से नष्ट हुआ। इस लड़ाई में आसफ़ख़ां का पुत्र मारा गया और वह स्वयं भी घायल हुआ। सुलतान महमूद भी बुरी तरह

(१) ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० २५५-५९। हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ० ६८-६९।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २६३। ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० २६०-६१।

(३) तुज़ुके बाबरी से पाया जाता है कि चंदेरी का क़िला मालवे के सुलतान महमूद के अधीन था। सिकन्दरशाह लोदी ने मुहम्मदशाह (साहिबख़ां) का पक्ष लेकर बड़ी सेना भेजी, उस समय उसके बदले में चंदेरी को ले लिया। फिर जब सुलतान इब्राहीम लोदी राणा सांगा के साथ की लड़ाई में हारा, उस समय चंदेरी पर राणा का अधिकार हो गया था (तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५९३)।

(४) मिराते सिकन्दरी में भीमकरण नाम मिलता है (बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६३), परन्तु मुंशी देवीप्रसाद ने हेमकरण पाठ दिया है (महाराणा संग्रामसिंघजी का जीवनचरित्र, पृ० ६)।

घायल होकर गिरा, उसे उठवाकर महाराणा ने अपने तम्बू में पहुंचाया और उसके घावों का इलाज कराया। फिर वह उसे अपने साथ चित्तोड़ ले गया[1] और वहां तीन मास तक क़ैद रक्खा।

एक दिन महाराणा सुलतान को एक गुलदस्ता देने लगा। इसपर उसने कहा कि किसी चीज़ के देने के दो तरीके होते हैं। एक तो अपना हाथ ऊंचा कर अपने से छोटे को देवे या अपना हाथ नीचा कर बड़े को नज़र करे। मैं तो आपका क़ैदी हूं, इसलिये यहां नज़र का तो कोई सवाल ही नहीं तो भी आपको ध्यान रहे कि भिखारी की तरह केवल इस गुलदस्ते के लिये हाथ पसारना मुझे शोभा नहीं देता। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और गुलदस्ते के साथ मालवे का आधा राज्य[2] देने की बात भी उसे कह दी। महाराणा की इस उदारता से प्रसन्न होकर सुलतान ने वह गुलदस्ता ले लिया[3]। फिर तीसरे ही दिन महाराणा ने फ़ौज-ख़र्च लेकर सुलतान को एक हज़ार राजपूतों के साथ मांडू को भेज दिया। सुलतान ने भी अधीनता के चिह्नस्वरूप महाराणा को रत्नजटित मुकुट तथा सोने की कमरपेटी—ये (दोनों) सुलतान हुशंग के समय से राज्य-चिह्न के रूप में वहां के सुलतानों के काम आया करते थे—भेट की[4]। आगे को अच्छा बर्ताव रखने के लिये महाराणा ने सुलतान के एक शाहज़ादे को 'ओल' (ज़ामिन) के तौर पर चित्तोड़ में रख लिया[5]। महाराणा के इस उदार

(१) बेले, हिस्टी ऑफ़ गुजरात, पृ० २६४। ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० २६३।

(२) बाबर बादशाह लिखता है कि राणा सांगा ने, जो बड़ा ही प्रबल हो गया था, मांडू के इलाक़े रणथंभोर, सारंगपुर, भिलसा और चंदेरी ले लिये थे (तुज़ुक बाबरी का बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४८३)।

(३) मुन्शी देवीप्रसाद, महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० २८-२९। हरबिलास सारड़ा, महाराणा सांगा, पृ० ७३।

(४) बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान महमूद राणा सांगा के हाथ क़ैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध 'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमरपटी उसके पास थी। सुलह के समय ये दोनों वस्तुएं राणा ने उससे ले ली थीं (तुज़ुके बाबरी का बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ६१२-१३)।

(५) हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा, पृ० ७४। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५७। मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है कि सुलतान महमूद का एक शाहज़ादा, जो राणा सांगा के यहां क़ैद था, गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह के सैन्य के साथ की मन्दसोर की लड़ाई के बाद मुक्त किया गया था (बेले, हिस्टी ऑफ़ गुजरात, पृ० २७५)।

बर्ताव की मुसलमान लेखकों ने बड़ी प्रशंसा की है[1], परन्तु राजनैतिक परिणाम की दृष्टि से महाराणा की यह उदारता राजपूतों के लिये हानिकारक ही हुई।

गुजरात के सुलतान का मेवाड़ पर आक्रमण

मुबारिज़ुल्मुल्क के उच्चारण किये हुए अपमानमूलक शब्दों पर क्रुद्ध हो, कर महाराणा सांगा ने गुजरात पर चढ़ाई कर वहां की जो बर्बादी की, उसका बदला लेने के लिये सुलतान मुज़फ्फ़र लड़ाई की तैयारी करने लगा। अपनी सेना को उत्साहित करने के लिये उसका वेतन बढ़ा दिया और एक साल की तनख्वाह भी ख़ज़ाने से पेशगी दे दी गई। सोरठ का हाकिम मलिक अयाज़ बीस हज़ार सवार और तोपख़ाने के साथ उसके पास आ पहुंचा। सुलतान से मिलने पर उसने निवेदन किया कि यदि आप मुझे भेजें, तो मैं या तो राणा को क़ैद कर यहां ले आऊंगा या उसको परम-धाम को पहुंचा दूंगा। यह बात सुलतान को पसन्द आई और हि० स० ६२७ मुहर्रम (वि० सं० १५७७ पौष=ई० स० १५२० दिसम्बर) में उसको खिलअत देकर एक लाख सवार, एक सौ हाथी और तोपख़ाने के साथ भेजा। बीस हज़ार सवार और बीस हाथियों की दूसरी सेना भी मलिक की सहायतार्थ किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में भेजी गई। ये दोनों सेनाएं मोड़ासा होती हुई वागड़ में पहुंचीं और डूंगरपुर को जलाकर सागवाड़े होती हुई बांसवाड़े गईं। वहां से थोड़ी दूर पर पहाड़ों में शुजाउल्मुल्क के दो सौ सिपाहियों की राजपूतों से कुछ मुठभेड़ होने के पश्चात् सारी गुजराती सेना मन्दसोर पहुंची और उसने वहां के किले पर, जिसका रक्षक अशोकमल राजपूत था, घेरा डाला। महाराणा भी उधर से एक बड़ी सेना के साथ मन्दसोर से दस कोस पर नांदसा गांव में आ ठहरा। मांडू का सुलतान महमूद भी मलिक अयाज़ की सेना से आ मिला। मलिक अयाज़ ने किले में सुरंग लगवाने और साबात[2] बनवाने का प्रबन्ध कर घेरा आगे बढ़ाया। रायसेन का तंवर

(१) बादशाह अकबर का बख्शी निज़ामुद्दीन अपनी पुस्तक तबकाते अकबरी में लिखता है कि जो काम राणा सांगा ने किया वैसा काम अब तक और किसी से न हुआ। सुलतान मुज़फ्फ़र गुजराती ने महमूद को अपनी शरण में आने पर सहायता दी थी, परन्तु युद्ध में विजय पाने और सुलतान को क़ैद करने के पश्चात् केवल राणा ने उसको पीछा राज्य दिया (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५६)।

(२) अकबर की चित्तोड़-विजय के वर्णन में 'साबात' का रोचक विवरण फ़ारसी पुस्तकों में मिलता है। साबात हिन्दुस्तान का ही ख़ास युद्ध-साधन है। यहां के सुदृढ़ क़िलों में तोपें

सलहदी दस हज़ार सवारों के साथ एवं आसपास के सब राजा, राणा से आ मिले। इस प्रकार दोनों तरफ़ बड़ी भारी सेनाएं लड़ने को एकत्र हो गयी, परन्तु अपने अफ़सरों से अनबन हो जाने के कारण मलिक अयाज आगे न बढ़ सका और संधि करके दस कोस पीछे हट गया। सेनापति के पीछे हट जाने के कारण सुलतान महमूद और दूसरे सरदार भी वापस चले गये। मलिक अयाज़ गुजरात को लौट गया, जहां पहुंचने पर सुलतान ने उसे बुरा भला कहकर वापस सोरठ भेज दिया[1]।

बन्दूके और युद्ध सामग्री बहुत होने के कारण वे साबात से ही लिये जाते है। साबात ऊपर से ढंका हुआ एक चौड़ा रास्ता होता है, जिसमे किलेवालो की मार से सुरक्षित रहकर हमला करनेवाले किले के पास तक पहुच जाते है। अकबर ने दो साबात बनवाए, जो बादशाही डेरे के सामने थे। वे इतने चौड़े थे कि उनमे दो हाथी और दो घोड़े चल जा सकें; ऊचे इतने थे कि हाथी पर बैठा हुआ आदमी भाला खड़ा किये जा सके। जब साबात बनाए जा रहे थे, तब राणा के सात आठ हज़ार सवार और कई गोलंदाज़ों ने उनपर हमला किया। कारीगरों के बचाव के लिए गाय भैस के मोटे चमड़े की छावन थी, तो भी वे इतने मरे कि ईंट-पत्थर की तरह लाशे चुनी गईं। बादशाह ने किसी से बेगार न ली, कारीगरो को रुपए और दाम बरसाकर भरपूर मज़दूरी दी। एक साबात किले की दीवार तक पहुच गया और वह इतना ऊचा था कि दीवार उसमे नीची दिखाई देती थी। साबात की चमड़े की छत पर बादशाह के लिये बैठक थी कि वह अपने 'वीरो का करतब' देखता रहे और युद्ध मे भाग भी ले सके। अकबर स्वय बन्दूक लेकर उसपर बैठा और वहां से मार भी कर रहा था। इधर सुरंग लगाई जा रही थी और किले की दीवारो के पत्थर काटकर सेंध लग रही थी (तारीखे अलफ़ी, इलियट; जि० ५, पृ० १७१-७३)। साबात किले के दोनो ओर बनाए गये थे और ५ हजार कारीगर और खाती उनपर लगे थे। साबात एक तरह की दीवार (?मार्ग) है, जो किले से गोली की मार की दूरी पर खड़ी की जाती है और उसके तख्ते बिना कमाए चमडे से ढके तथा मजबूत बँधे होते हैं। उनकी रक्षा मे किले तक कूचा-सा बन जाता है। फिर दीवारो को तोपो से उड़ाते हैं और सेंध लगने पर बहादुर भीतर घुस जाते है। अकबर ने जयमल को साबात पर बैठकर गोली से मारा था (तबकाते अकबरी, इलियट्, जि० ५, पृ० ३२६-२७)। इससे मालूम होता है कि साबात ढका हुआ मार्ग-सा होता था, जिसमे शत्रु किले तक पहुंच जाते थे, किन्तु और जगह के वर्णनो से जान पड़ता है कि यह ऊंचा टेकरा का सा भी हो, जिसपर से किले पर गरगज (ऊचे स्थान) की तरह मार की जा सके।

(नागरीप्रचारिणी पत्रिका—नवीन संस्करण—भाग २, पृ० २५४, टि० ३)।

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २७१-७५। हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० ८४-८७। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ९०-९४।

मुसलमान इतिहास-लेखकों ने इस हार का कारण मुसलमान सरदारों की अनबन होना ही बतलाया है। मिराते सिकन्दरी में लिखा है कि सुलतान महमूद और किवामुल्मुल्क तो राणा से लड़ना चाहते थे, परन्तु मलिक अयाज़ इसके विरुद्ध था, इसलिये वह बिना लड़े ही संधि करके चला गया। इसके बाद सुलतान महमूद भी महाराणा से ओल में रक्खे हुए अपने शाहज़ादे के लौटाने की संधि कर लौट गया[1]। मुसलमान लेखकों का यह कथन मानने योग्य नहीं है, क्योंकि मुसलमानी सेना का मुख्य सेनापति मलिक अयाज़ हारकर वापस गया, जिससे वहां उसे सुलतान मुज़फ्फर ने झिड़का, तो सुलतान महमूद महाराणा को संधि करने पर बाधित कर सका हो, यह समझ में नहीं आता। संभव है, कि उसने सांगा को दंड (जुर्माना) देकर शाहजादे को छुड़ाया हो। फ़िरिश्ता से यह भी पाया जाता है कि दूसरे साल सुलतान मुज़फ्फर ने फिर चढ़ाई की तैयारी की, परन्तु राणा का कुंवर, मलिक अयाज़ की की हुई संधि के अनुसार कुछ हाथी तथा रुपये नज़राने के लिये लाया[2], जिससे चढ़ाई रोक दी गई। यह कथन भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि यदि मलिक अयाज़ ऐसी संधि करके लौटा होता, तो सुलतान उसे बुरा भला न कहता।

कुंवर भोजराज और उसकी स्त्री मीरांबाई

महाराणा सांगा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई के साथ वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) में हुआ था। परन्तु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहान्त हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह युवराज हुआ। कर्नल टॉड ने जनश्रुति के अनुसार[3] मीरांबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिखा है[4] और उसी

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २७४-७५।

(२) वही, पृ० २७५, टि० ॥।

(३) देखो ऊपर पृ० ६२२, टिप्पण ३।

(४) मीरांबाई 'मेड़तणी' कहलाती है, जिसका आशय मेड़तिया राजवंश की कन्या है। जोधपुर के राव जोधा का एक पुत्र दूदा, जिसका जन्म वि० सं० १४९७ (ना० प्र० प०; भाग १, पृ० ११४) में हुआ था, वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) या उससे पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसी से राठोड़ों की मेड़तिया शाखा चली। दूदा का ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव, जिसका जन्म वि० सं० १५३४ (ई० स० १४७७) में हुआ था (वही; पृ० ११४), उस

आधार पर भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रंथों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुम्भा की राणी मानने लग गए हैं, जो भ्रम ही है।

हिन्दुस्तान में बिरला ही ऐसा गांव होगा, जहां भगवद्भक्त हिन्दू स्त्रियां या पुरुष मीराबाई के नाम से परिचित न हों और बिरला ही ऐसा मन्दिर होगा, जहां उसके बनाए हुए भजन न गाये जाते हों। मीरांबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा ने निर्वाह के लिये १२ गांव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गांव में वि० सं० १५५५ (ई० स० १४९८) के आसपास[1] होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहान्त हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ। वि० सं० १५७२ (ई० स० १५१५) में राव दूदा के देहान्त होने पर वीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहान्त हो गया। यह घटना किस सम्वत् में हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तो भी सम्भव है कि यह वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) और १५८० (ई० स० १५२३) के बीच किसी समय हुई हो।

मीरांबाई बचपन से ही भगवद्भक्ति में रुचि रखती थी, इसलिये वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रही। यह भक्ति उसके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदा, वीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में उसका पिता रत्नसिंह, महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीरांबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी और

(दूदा) के पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसके छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराबाई थी। महाराणा कुंभा वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में मारा गया, जिसके ६ वर्ष बाद मीराबाई के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ था। ऐसी दशा में मीराबाई का महाराणा कुंभ की राणी होना सर्वथा असंभव है।

(१) हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ६६।

सुदूर स्थानों से साधु सन्त उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफ़ दिया करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने उस(मीरांबाई)को मरवाने के लिये विष देने आदि के प्रयोग भी किए, परंतु वे निष्फल ही हुए। मीरांबाई की ऐसी स्थिति जानकर उसको वीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहां भी उसके दर्शनार्थी साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीरांबाई तीर्थयात्रा को चली गई और द्वारकापुरी में जाकर रहने लगी, जहां वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में[1] उसका देहान्त हुआ।

भक्तशिरोमणि मीरांबाई के बनाए हुए ईश्वर-भक्ति के सैकड़ों भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और जगह-जगह गाए जाते हैं। मीरांबाई का मलार राग तो बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी कविता भक्तिरस-पूर्ण, सरल और सरस है। उसने राग-गोविन्द नामक कविता का एक ग्रन्थ भी बनाया था। मीरांबाई के सम्बन्ध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्त्व नहीं है।

कुंवर भोजराज की मृत्यु के बाद रत्नसिंह युवराज हुआ, जिसके छोटे भाई उदयसिंह और विक्रमादित्य थे। उनको जागीर मिलने के सम्बन्ध में मुहणोत नैणसी ने लिखा है—'राणा सांगा का एक विवाह हाड़ा राव नर्बद की पुत्री करमेती (कर्मवती) से भी हुआ था, जिससे विक्रमादित्य और उदयसिंह उत्पन्न हुए। राणा का इस राणी पर विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने राणा से निवेदन किया कि आप चिरंजीवी हों आपका युवराज रत्नसिंह है और विक्रमादित्य तथा उदयसिंह बालक हैं, इसलिये आपके सामने ही इनकी जागीर नियत हो जाय तो अच्छा है। राणा ने पूछा, तुम क्या चाहती हो? इसके उत्तर में उसने कहा कि रत्नसिंह की सम्मति लेकर रणथंभोर जैसी कोई जागीर इनको दे दी जाय और हाड़ा सूरजमल जैसे राजपूत को इनका संरक्षक बनाया जाय। राणा ने इसे स्वीकार कर दूसरे दिन रत्नसिंह से कहा कि विक्रमादित्य

उदयसिंह और विक्रमादित्य को रणथंभोर की जागीर देना

(१) हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ० ९६। मुंशी देवीप्रसाद; मीरांबाई का जीवनचरित्र, पृ० २८। चतुरकुलचरित्र, भाग १, पृ० ८०।

और उदयसिंह तुम्हारे छोटे भाई हैं, जिनको कोई ठिकाना देना चाहिये। महा शक्तिशाली सांगा से रत्नसिंह ने यही कहा कि आपकी जो इच्छा हो, वही जागीर दीजिए। इसपर राणा ने उनको रणथंभोर का इलाक़ा जागीर में देने की बात कही, तो रत्नसिंह ने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर जब विक्रमादित्य और उदयसिंह को रणथंभोर का मुजरा करने की आज्ञा हुई, तो उन्होंने मुजरा किया। उस समय बूंदी का हाड़ा सूरजमल भी दरबार में हाज़िर था। राणा ने उसको कहा कि हम इन्हें रणथंभोर देकर तुम्हारी संरक्षा में रखते हैं। सूरजमल ने निवेदन किया कि मुझे इस बात से क्या मतलब, मैं तो चित्तोड़ के स्वामी का सेवक हूं। तब राणा ने कहा—'ये दोनों बालक तुम्हारे भानजे हैं, बूंदी से रणथंभोर निकट भी है और हमें तुम्हारे पर विश्वास है, इसी लिये इनका हाथ तुम्हें पकड़वाते हैं'। सूरजमल ने जवाब दिया कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आपके पीछे रत्नसिंह मुझे मारने को तैयार होंगे, इसलिये आपके कहने से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता, यदि रत्नसिंह ऐसा कह दें, तो बात दूसरी है। राणा ने रत्नसिंह की ओर देखा, तो उसने सूरजमल से कहा कि जैसा महाराणा फ़रमाते हैं वैसा करो, ये मेरे भाई हैं और आप भी हमारे सम्बन्धी हैं, मैं इसमें बुरा नहीं मानता। तब सूरजमल ने राणा की यह आज्ञा मान ली और साथ जाकर रणथंभोर में विक्रमादित्य और उदयसिंह का अधिकार करा दिया[1]"।

विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा सांगा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र महाराणी करमेती के विशेष आग्रह से दी, परन्तु अन्त में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिये घातक ही हुआ।

गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह के आठ शाहज़ादे थे, जिनमें सिकन्दरशाह सबसे बड़ा होने से राज्य का उत्तराधिकारी था। सुलतान भी उसी को अधिक चाहता था, क्योंकि वही सबमें योग्य था। सुलतान का दूसरा बेटा बहादुरखां (बहादुरशाह) भी गद्दी पर बैठना चाहता था, जिसके लिये वह षड्यन्त्र रचने लगा।

गुजरात के शाहज़ादों का महाराणा की शरण में आना

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र २५।

यह शेख़ जिऊ नाम के मुसलमान मुरशिद (गुरु) का, जो उसे बहुत चाहता था और 'गुजरात का सुलतान' कहकर संबोधन किया करता था, मुरीद (शिष्य) बन गया। एक दिन शेख़ ने बहुतसे लोगों के सामने यह कह दिया कि बहादुरशाह ही गुजरात का सुलतान होगा, जिससे सिकन्दरशाह उसको मरवाने का प्रयत्न करने लगा। बहादुरशाह ने प्राणरक्षा के लिए भागने का निश्चय किया और वहां से भागने के पहले वह अपने मुरशिद से मिला। शेख़ के यह पूछने पर कि तू गुजरात के राज्य के अतिरिक्त और क्या चाहता है, बहादुरशाह ने जवाब दिया कि मैं राणा के अहमदनगर को जीतने, वहां मुसलमानों को क़तल करने और मुसलमान स्त्रियों को क़ैद करने के बदले चित्तोड़ के किले को नष्ट करना चाहता हूं। शेख़ ने पहले तो इसका कोई उत्तर न दिया, पर उसके बहुत आग्रह करने पर यह कहा कि 'सुलतान' के (तेरे) नाश के साथ ही चित्तोड़ का नाश होगा। बहादुरशाह ने कहा कि इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। तदनन्तर[1] अपने भाई चांदख़ां और इब्राहीमख़ां[2] को साथ लेकर वह वहां से भागकर चांपानेर और बांसवाड़े होता हुआ चित्तोड़ में राणा सांगा की शरण आया, जिसने उसको आदरपूर्वक अपने यहां रक्खा। राणा सांगा की माता (जो हलवद के राजा की पुत्री थी) उसे बेटा कहा करती थी[3]।

एक दिन राणा के एक भतीजे ने बहादुरशाह को दावत दी। नाच के समय एक सुन्दरी लड़की के चातुर्य्य से बहादुरशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशंसा करने लगा, जिसपर राणा के भतीजे ने उससे पूछा, क्या आप इसे पहचानते हैं? यह अहमदनगर के क़ाज़ी की लड़की है। जब महाराणा ने अहमदनगर अपने अधिकार में किया, तो क़ाज़ी को मारकर मैं इसे यहां लाया था, इसके साथ की स्त्रियां और लड़कियां को दूसरे राजपूत ले आए। उसका कथन समाप्त भी न होने पाया था कि बहादुरशाह ने गुस्से में आकर उसको तलवार से मार डाला। राजपूतों ने उसे तत्काल घेर लिया और मारना

(१) मिराते सिकन्दरी। बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३००-३०१।

(२) मिराते सिकन्दरी में जहां बहादुरशाह के गुजरात से भागने का वर्णन है, वहां तो इन दोनों भाइयों के नाम नहीं दिये, परन्तु उसके चित्तोड़ से लौटने के प्रसंग में इन दोनों के उसके साथ होने का उल्लेख है (बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३२६)।

(३) वही पृ० ३०१।

चाहा, परन्तु उसी समय राणा की माता हाथ में कटार लिये हुए वहां आई और उसने कहा कि यदि कोई मेरे बेटे बहादुर को मारेगा, तो मैं भी यह कटार खाकर मर जाऊंगी। यह सारा हाल सुनकर राणा ने अपने भतीजे को ही दोष दिया और कहा कि उसे शाहज़ादे के सामने ऐसी बातें न करनी चाहिए थीं; यदि शाह-ज़ादा उसे न भी मारता, तो मैं उसे दण्ड देता[1]। फिर बहादुरशाह यह देखकर, कि लोग अब मुझसे घृणा करने लगे हैं, चित्तोड़ छोड़कर मेवात की ओर चला गया, परन्तु थोड़े दिनों बाद वह चित्तोड़ को लौट आया।

उधर मुज़फ्फ़रशाह के मरने पर वि० सं० १५८२ (ई० स० १५२६) में सिकन्दरशाह गुजरात का सुलतान हुआ। थोड़े ही दिनों में वह भी मारा गया और इमादुलमुल्क ने नासिरशाह को सुलतान बना दिया। पठान अली शेर ने गुजरात से आकर यह खबर बहादुरशाह को दी, जिसपर चांदखां को तो उसने वहीं छोड़ा और इब्राहीमखां को साथ लेकर वह गुजरात को चला गया[2]।

सिकन्दरशाह के गुजरात के स्वामी होने पर उसके छोटे भाई लतीफखां ने सुलतान बनने की आशा से नन्दरबार और सुलतानपुर के पास सैन्य एकत्र कर विद्रोह खड़ा करने का प्रयत्न किया। सिकन्दरशाह ने मलिक लतीफ को शरज़हखां का खिताब देकर उसको दमन करने के लिए भेजा, परन्तु उसके चित्तोड़ में शरण लेने की खबर सुनकर शरज़हखां चित्तोड़ को चला, जहां वह बुरी तरह से हारा और उसके १७०० सिपाही मारे गए[3]।

बाबर का हिन्दुस्तान में आना

बाबर फ़रग़ाना (रशियन तुर्किस्तान में), जिसे आजकल खोकन्द कहते हैं, के स्वामी प्रसिद्ध तीमूर के वंशज उमरशेख़ मिर्ज़ा का पुत्र था। उसकी माता चंगेज़खां के वंश से थी। उमरशेख़ के मरने पर वह ग्यारह वर्ष की उमर में फ़रग़ाने का स्वामी हुआ। राज्य पाते ही उसे बहुत वर्षों तक लड़ते रहना पड़ा, कभी वह कोई प्रान्त जीतता

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३०५-६।

(२) वही; पृ० ३२६।

इसी बहादुरशाह ने सुलतान बनने पर महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर आक्रमण कर उसे लिया था।

(३) ब्रिग्ज़; फिरिश्ता, जि० ४, पृ० ६६।

था और कभी अपना भी खो बैठता था। एक बार वह दिखहाट गांव में वहां के मुखिया के घर ठहरा। उस(मुखिया)की १११ साल की बूढ़ी माता उसको भारत पर तीमूर की चढ़ाई की कथाएं सुनाया करती थी, जो उसने तीमूर के साथ वहां गये हुए अपने एक सम्बन्धी से सुनी थीं[1]। सम्भव है कि इन कथाओं के सुनने से उसके दिल में भारत में अपना राज्य स्थापित करने की इच्छा उत्पन्न हुई हो। जब तुर्किस्तान में अपना राज्य स्थिर करने की उसे कोई आशा न रही, तब वह वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में काबुल आया और वहां पर अधिकार कर लिया। वहां रहते हुए उसे थोड़े ही दिन हुए थे कि भेरा (पंजाब में) के इलाके के मालिक दरियाखां के बेटे यारहुसेन ने उसे हिन्दुस्तान में बुलाया। बाबर अपने सेनापतियों से सलाह कर शाबान हि० स० ६१० (वि० सं० १५६१ फाल्गुन=ई० स० १५०५ जनवरी) को काबुल से चला और जलालाबाद होता हुआ खैबर की घाटी को पार कर विकराम (विगराम) में पहुंचा, परन्तु सिन्धु पार करने का विचार छोड़कर कोहाट, बन्नू आदि को लूटता हुआ वापस काबुल चला गया[2]। इसके दो साल बाद अपने प्रबल तुर्क शत्रु शैबानीखां (शाबाकखां) से हारकर वह हिन्दुस्तान को लेने के इरादे से जमादिउल्-अव्वल हि० स० ६१३ (वि० सं० १५६४ आश्विन=ई० स० १५०७ सितम्बर) में हिन्दुस्तान की ओर चला और अदिनापुर (जलालाबाद) के पास डेरा डालने पर उसने सुना कि शैबानीखां कन्धार लेकर ही लौट गया है। इस खबर को सुनकर वह भी पीछा काबुल चला गया[3]। ई० स० १५१६ (वि० सं० १५७६) में उसने तीसरी बार हिन्दुस्तान पर हमला किया और सिआलकोट तक चला आया। इसी हमले में उसने सैयदपुर में ३० हज़ार दास दासियों को पकड़ा और वहां के हिन्दू सरदार को मारा। यहां से वह फिर काबुल लौट गया[4]।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर कमज़ोर सुलतान इब्राहीम लोदी के होने के कारण वहां का शासन बहुत ही शिथिल हो गया और उसकी निर्बलता

---

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० १५० ।

(२) वही, पृ० २२६–३५ ।

(३) वही, पृ० ३४१–४३ ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; बाबरनामा, पृ० २०४ ।

का लाभ उठाकर बहुतसे सरदारों ने विद्रोह कर अपने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का यत्न किया। पंजाब के हाकिम दौलतखां लोदी ने हि० स० ६३० (वि० सं० १५८१=ई० स० १५२४) में इब्राहीम लोदी से विद्रोह कर बाबर को हिन्दुस्तान में बुलाया। वह गक्खरों के देश में होता हुआ लाहौर के पास आ पहुंचा और कुछ प्रदेश जीतकर उसे दिलावरखां को जागीर में दे दिया, फिर वह काबुल चला गया[1]। उसके चले जाने पर सुलतान इब्राहीम लोदी ने वही प्रदेश फिर अपने अधिकार में कर लिया, जिसकी खबर पाकर उसने पांचवीं बार भारतवर्ष में आने का निश्चय किया। बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है कि राणा सांगा ने भी पहले मेरे पास दूत भेजकर मुझे भारत में बुलाया और कहलाया था कि आप दिल्ली तक का इलाका ले लें और मैं (सांगा) आगरे तक का ले लूं[2]। इन्हीं दिनों इब्राहीम लोदी का चाचा अलाउद्दीन (आलमखां) अपनी सहायता के लिये उसे बुलाने को काबुल गया और उसके बदले में उसे पंजाब देने को कहा[3]। इन सब बातों को सोचकर वह स्थिर रूप से भारत पर अधिकार करने के लिये ता० १ सफर हि० स० ९३२ (मार्गशीर्ष सुदि ३ वि० सं० १५८२=१७ नवम्बर ई० स० १५२५) को काबुल से १२००० सेना लेकर चला और कुछ लड़ाइयां लड़ते हुए उसने पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में डेरा डाला। ता० ८ रजब शुक्रवार हि० स० ९३२ (वैशाख सुदि ८ वि० सं० १५८३=२० अप्रेल ई० स० १५२६) को इब्राहीम लोदी से युद्ध हुआ, जिसमें वह मारा गया और बाबर दिल्ली के राज्य का स्वामी हुआ। वहां कुछ महीने ठहरकर उसने आगरा भी जीत लिया[4]।

महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई

बाबर यह अच्छी तरह जानता था कि हिन्दुस्तान में उसका सबसे भयंकर शत्रु महाराणा सांगा था, इब्राहीम लोदी नहीं। यदि बाबर न आता तो भी इब्राहीम लोदी तो नष्ट हो जाता। महाराणा की बढ़ती हुई शक्ति और प्रतिष्ठा को वह जानता था। उसे यह भी निश्चय था कि महाराणा से युद्ध करने के दो ही परिणाम हो सकते हैं—या तो

(१) मुंशी देवीप्रसाद; बाबरनामा, पृ० २०५-६।

(२) तुजुके बाबरी का अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ५२९।

(३) प्रो० रशब्रुक विलियम्स; एन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्स्टीन्थ सैन्चरी; पृ० १२२।

(४) तुजुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४७५-७६।

वह भारत का सम्राट् हो जाय, या उसकी सब आशाओं पर पानी फिर जाय और उसे वापस काबुल जाना पड़े। इधर महाराणा सांगा भी जानता था कि अब इब्राहीम लोदी से भी अधिक प्रबल शत्रु आ गया है, जिससे वह अपना बल बढ़ाने लगा और खण्डार (रणथंभोर से कुछ दूर) के किले पर, जो मकन के बेटे हसन के अधिकार मे था, चढ़ाई कर दी, अन्त में हसन ने सुलह कर किला राणा को सौंप दिया[1]। सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से बयाना (भरतपुर राज्य में) बहुत महत्त्व का स्थान था। वह महाराणा सांगा के अधिकार में था और उसने अपनी तरफ़ से निज़ामखां को जागीर में दे रक्खा था[2]। इसपर अधिकार करने के लिये बाबर ने तर्दीबेग और कूचबेग की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। निज़ामखां का भाई आलमखां बाबर से मिल गया। निज़ामखां महाराणा सांगा को भी किला सौंपना नहीं चाहता था और बाबर से लड़ने में अपने को असमर्थ देखकर उससे दोआब (अन्तरवेद) में २० लाख का एक परगना लेकर उसे किला सौंप दिया[3]। सांगा के शीघ्र आने के भय से बाबर ने अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहा और उसके लिये उसने मुहम्मद जैतून और तातारखां को अपने पक्ष मे मिला लिया, जिसपर उन्होंने बड़ी आय के परगने लेकर धौलपुर और ग्वालियर के किले उसे दे दिये[4]। बाबर ने पश्चिमी अफ़ग़ानों के प्रबल सरदार हसनखां मेवाती को भी अपनी तरफ़ मिलाने के विचार से उसके पुत्र नाहरखां को, जो पानीपत की लड़ाई मे क़ैद हुआ था, छोड़कर ख़िलअत दी और उसके बाप के पास भेज दिया[5], परन्तु हसनखां बाबर के जाल मे न फँसा।

इब्राहीम लोदी के पतन के बाद अफ़ग़ान अमीरों को यह मालूम होने लगा कि बाबर हिन्दुस्तान मे रहकर अफ़ग़ानों को नष्ट करना और अपना राज्य दृढ़ करना चाहता है। इसपर वे सब तुर्कों को निकालने के लिये मिल गये। अफ़ग़ानों के हाथ से दिल्ली और आगरा छूट जाने के बाद पूर्वी अफ़ग़ानों ने बाबरखां लोहानी को सुलतान मुहम्मदशाह के नाम से बिहार के तख़्त पर बिठा

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५३०।

(२) हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ० १२०।

(३) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५३८-३९।

(४) वही; पृ० ५३९-४०।

(५) वही; पृ० ५४५।

दिया[1]। पश्चिमी अफ़ग़ानों ने मेवात (अलवर) के स्वामी हसनखां की अध्यक्षता में इब्राहीम लोदी के भाई महमूद का पक्ष लिया। हसनखां के पक्षवालों ने महाराणा सांगा को अपना मुखिया बनाकर तुर्कों को हिन्दुस्तान से निकालने की उससे प्रार्थना की और हसनखां मेवाती १२००० सेना के साथ उसकी सेवा में आ रहा[2]।

खंडार को जीतकर महाराणा बयाना की तरफ बढ़ा और उसे भी ले लिया। इसके सम्बन्ध में बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है—'हमारी सेना में यह खबर पहुंची कि राणा सांगा शीघ्रता से आ रहा है, उस समय हमारे गुप्तचर न तो बयाने के क़िले में जा सके और न वहां कोई ख़बर ही पहुंचा सके। बयाने की सेना कुछ दूर निकल आई, परन्तु राणा से हारकर भाग निकली। इसमें संगरखां मारा गया। कितावेग ने एक राजपूत पर हमला किया, जिसने उसी के एक नौकर की तलवार छीनकर बेग के कन्धे पर ऐसा वार किया कि वह फिर राणा के साथ की लड़ाई में शामिल ही न हो सका। किस्मती, शाहमंसूर बर्लास और अन्य भागे हुए सैनिकों ने राजपूत-सेना की वीरता और पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की[3]।

ता० ६ जमादिउल् अव्वल सोमवार (फाल्गुन सुदि १० वि० सं० १५८३ =११ फ़रवरी ई० स० १५२७) को सांगा का सामना करने के लिये बाबर रवाना हुआ, परन्तु थोड़े दिन आगरे के पास ठहरकर अपनी सेना को एकत्र करने और तोपखाने को ठीक करने में लगा रहा। भारतीय मुसलमानों पर विश्वास न होने के कारण उसने उन्हें बाहर के क़िलों पर भेजकर वहां के तुर्क सरदारों को[4] एवं शाहज़ादे हुमायूं[5] को भी जौनपुर से बुला लिया। पांच दिन आगरे में ठहरकर सीकरी में पानी का सुभीता देखकर, तथा कहीं राणा वहां के जल-स्थानों पर अधिकार न कर ले, इस भय से भी वहां जाने का विचार किया। किस्मती और दरवेश मुहम्मद सार्बान को सीकरी में डेरे लगाने के लिये भेज-

(१) अर्स्किन, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० १, पृ० ४४३।

(२) तुज़ुके बाबरी का ए.एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६२।

(३) वही, पृ० ५४७-४८।

(४) वही, पृ० ५४७।

(५) वही, पृ० ५४४।

कर स्वयं भी सेना के साथ वहां पहुंचा और मोर्चेबन्दी करने लगा। वहां बयाने का हाकिम मेहदी ख़्वाजा राणा सांगा से हारकर उससे आ मिला। यहां बाबर को ख़बर मिली कि राणा सांगा भी बसावर (बयाना से १० मील वायव्य कोण में) के पास आ पहुंचा है[1]।

ता० २० जमादीउल्-अव्वल हि० स० ६३३ (वि० सं० १५८३ चैत्र वदि ६=ई० स० १५२७ फ़रवरी ता० २२) को अब्दुल अज़ीज, जो बाबर का एक मुख्य सेनापति था, सीकरी से आगे बढ़कर खानवा आ पहुंचा। महाराणा ने उसपर हमला किया, जिसका समाचार पाकर बाबर ने शीघ्र ही सहायतार्थ मुहिबअली ख़लीफ़ा, मुल्लाहुसेन आदि की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। राजपूतों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई, शत्रुओं का झंडा छीन लिया, मुल्ला न्यामत, मुल्ला दाउद आदि कई बड़े २ अफ़सर मारे गये और बहुतसे क़ैद भी हुए। मुहिबअली भी, जो पीछे से सहायता के लिये आया था, कुछ न कर सका और उसका मामा ताहरतिबरी राजपूतों पर दौड़ा, परन्तु वह भी क़ैद हुआ। मुहिबअली भी लड़ाई में गिर गया और उसके साथी उसे उठा ले गये। राजपूतों ने मुग़ल-सेना को हराकर दो मील तक उसका पीछा किया[2]। इस विषय में मि० स्टेन्ली-लेनपूल का कथन है कि 'राजपूतों की शूरवीरता और प्रतिष्ठा के उच्च-भाव उन्हें साहस और बलिदान के लिये इतना उत्तेजित करते थे कि जिनका बाबर के अर्द्ध-सभ्य सिपाहियों के ध्यान में आना भी कठिन था'[3]। राजपूतों के समीप आने के समाचार लगातार पहुंचने पर बाबर कुछ तोपों को लाने की आज्ञा देकर आगे चला, परन्तु इस समय तक राजपूत अपने डेरों में लौट गये थे।

महाराणा की तीव्रगति, बयाने की लड़ाई और वहां से लौटे हुए शाहमंसूर किस्मती आदि से राजपूतों की वीरता की प्रशंसा सुनने के कारण मुग़ल सेना पहले ही हतोत्साह हो गई थी, अब्दुल अज़ीज़ की पराजय ने तो उसे और भी निराश कर दिया। इन्हीं दिनों काबुल से सुलतान क़ासिम हुसेन और अहमद

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५४८।

(२) वही; पृ० ५४६-५०।

(३) स्टेन्ली लेनपूल, बाबर, पृ० १७६।

यूसफ़ आदि के साथ ५०० सिपाही आये, जिनके साथ ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ़ भी था। सहायक होने के बदले ज्योतिषी भी निराशा और भय, जो पहले ही सेना में फैले हुए थे, बढ़ाने का कारण हुआ, क्योंकि उसने यह सम्मति दी कि मंगल का तारा पश्चिम में है, इसलिये इधर (पूर्व) से लड़नेवाले (हम) पराजित होंगे[1]। बाबर अपनी दिनचर्य्या में लिखता है—"इस समय पहले की घटनाओं से क्या छोटे और क्या बड़े, सभी सैनिक भयभीत और निरुत्साह हो रहे थे। कोई भी आदमी ऐसा न था, जो बहादुरी की बात कहता या हिम्मत की सलाह देता। वज़ीर, जिनका कर्तव्य ही नेक सलाह देना था तथा अमीर, जो राज्य की सम्पत्ति भोगते थे, वीरता की बात भी नहीं कहते थे और न उनकी सलाह वीर पुरुषों के योग्य थी[2]"। अपनी सेना को उत्साहित करने के लिये बाबर ने खाइयां खुदवाईं और सेना की रक्षार्थ उसके पीछे सात-सात, आठ-आठ गज़ की दूरी पर गाड़ियां खड़ी कराकर उन्हें परस्पर जंजीरों से जकड़वा दिया। जहां गाड़ियां नहीं थीं, वहां काठ के तिपाए गड़वाए और सात-सात, आठ-आठ गज़ लंबे चमड़े के रस्सों से बांधकर उन्हें मजबूत करा दिया। इस तैयारी में बीस-पचीस दिन लग गये[3]। उसने शेख़ जमाली को इस अभिप्राय से मेवात पर हमला करने के लिये भेजा कि हसनखां महाराणा से अलग हो मेवात को चला जाय[4]।

एक दिन बाबर इसी बेचैनी और उदासी में डूबा हुआ था कि उसे एक उपाय सूझा। वह ता० २३ जमादिउल्-अव्वल हि० स० ९३३ (चैत्र वदि ९ वि० सं० १५८३=२५ फरवरी ई० स० १५२७) को अपनी सेना को देखने के लिये जा रहा था, रास्ते में उसे यह ख़याल हुआ कि धर्माज्ञा के विरुद्ध किये हुए घोर पापों का प्रायश्चित्त करने का मैं सदा विचार करता रहा हूं, परन्तु अभी तक वैसा न कर सका। यह सोचकर उसने फिर कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब की सोने-चांदी की सुराहियां और प्याले तथा मजलिस को सजाने का

---

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५५०-५१।

(२) वही, पृ० ५५६।

(३) वही; पृ० ५५०।

(४) वही; पृ० ५५१।

सामान मँगवाकर उसे तुड़वा दिया और गरीबों को बांट दिया। उसने अपनी दाढ़ी न कटवाने की प्रतिज्ञा भी की और उसका अनुकरण करीब ३०० सिपाहियों ने किया[1]। कर्नल टॉड ने लिखा है कि 'शराब के पात्रों के तोड़ने से तो सेना में फैली हुई निराशा और भी बढ़ गई'[2], परन्तु सेना के इतने निराश होते हुए भी बाबर निराश न हुआ। उसने जीवन के इतने उतार-चढ़ाव देखे थे कि वह निराश होना जानता ही न था। उसका पूर्वजीवन उत्तर की जंगली और क्रूर जातियों के साथ लड़ने-भिड़ने में व्यतीत हुआ था। हार पर हार और आपत्ति पर आपत्ति ने उसे साहसी, स्थिति को ठीक समझनेवाला और चालाक बना दिया था। इन संकटों से उसकी विचार-शक्ति दृढ़ हो गई थी तथा यह भी वह भली भांति जान गया था कि विकट अवस्थाओं में लोगों से किस तरह काम निकालना चाहिये। सेना की इस निराश अवस्था में उसने अन्तिम उपाय-स्वरूप मुसलमानों के धार्मिक भावों को उत्तेजित करने का निश्चय किया और अफ़सरों तथा सिपाहियों को बुलाकर कहा—

"सरदारो और सिपाहियो! प्रत्येक मनुष्य, जो संसार में आता है, अवश्य मरता है; जब हम चले जायंगे तब एक ईश्वर ही बाकी रहेगा, जो कोई जीवन का भोग करने बैठेगा उसको अवश्य मरना भी होगा; जो इस संसाररूपी सराय में आता है उसे एक दिन यहां से विदा भी होना पड़ता है, इसलिये बदनाम होकर जीने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूं कि कीर्ति के साथ मेरी मृत्यु हो तो अच्छा होगा, शरीर तो नाशवान् है। परमात्मा ने हमपर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो ग़ाज़ी कहलावेंगे, इसलिये सबको कुरान हाथ में लेकर क़सम खानी चाहिये कि प्राण रहते कोई भी युद्ध में पीठ दिखाने का विचार न करे"।

इस भाषण के बाद सब सिपाहियों ने हाथ में कुरान लेकर ऐसी ही प्रतिज्ञा की[3], तो भी बाबर को अपनी जीत का विश्वास न हुआ और उसने रायसेन के सरदार

---

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५५१-५२।

(२) टॉ, रा, जि० १, ३५५।

(३) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५५६-५७।

सलहदी द्वारा सुलह की बात चलाई। महाराणा ने अपने सरदारों से सलाह की, परन्तु सरदारों को सलहदी का बीच में पड़ना पसन्द न होने के कारण उन्होंने महाराणा के सामने अपनी सेना की प्रबलता और मुसलमानों की निर्बलता प्रकट कर सुलह की बात को जमने न दिया[1]। इस तरह संधि की बात कई दिन तक चलकर बन्द हो गई। इन दिनों बाबर बहुत तेज़ी से अपनी तैयारी करता रहा, परन्तु महाराणा सांगा के लिये यह ढील बहुत हानिकारक हुई। महाराणा की सेना में जितने सरदार थे, वे सब देशप्रेम के भाव से इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे; सब के भिन्न भिन्न स्वार्थ थे और उनमें से कुछ तो परस्पर शत्रु भी थे। इतने दिन तक शान्त बैठने से उन सरदारों में वह जोश और उत्साह न रहा, जो युद्ध में आने के समय था। इतने दिन तक युद्ध स्थगित रखने से महाराणा ने बाबर को तैयारी करने का मौक़ा देकर बड़ी भूल की[2]।

विलम्ब करना अनुचित समझकर ता० ६ जमादिउस्सानी हि० स० ६३३ (चैत्र सुदि ११ वि० सं० १५८३=१३ मार्च ई० स० १५२७) को बाबर ने सेना के साथ कूच किया और एक कोस जाकर डेरा डाला। युद्ध के लिये जो जगह सोची गई, उसके आगे खाइयां खुदवाकर तोपों को जमाया, जिन्हें जंजीरों से अच्छी तरह जकड़ दिया और उनके पीछे जंजीरों से जकड़ी हुई गाड़ियां और तिपाइयों की आड़ में तोपची और बन्दूकची रखे गये। तोपों की दाहिनी और बाईं तरफ़ मुस्तफ़ा रूमी और उस्ताद अली[3] खड़े हुए थे। तोपों की पंक्ति के पीछे

(१) तुज़ुके बाबरी में सुलह की बात का उल्लेख नहीं है, परन्तु राजपूताने की ख्यातों आदि में उसका उल्लेख मिलता है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६५)। कर्नल टॉड ने भी इसका उल्लेख किया है (टॉ, रा, जि० १, पृ० ३५६)। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स ने इस बात का विरोध किया है (ऐन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्सटीन्थ सैञ्चरी, पृ० १५५-५६), परन्तु स्वयं बाबर ने युद्ध के पूर्व की अपनी सेना की निराशा का जो वर्णन किया है, उसे देखते हुए सुलह की बातचीत होना सम्भव ही प्रतीत होता है। कर्नल टॉड ने तो यहां तक लिखा है कि 'हमारा दृढ़ विश्वास है कि उस समय बाबर ऐसी स्थिति में था कि वह किसी भी शर्त को अस्वीकार न करता' (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६)।

(२) टॉ, रा, जि० १, पृ० ३५६।

(३) मुस्तफ़ा रूमी और उस्ताद अली, दोनों ही बाबर के तोपखाने के मुख्य अफ़सर थे। उस्ताद अली तोपें ढालने में भी निपुण था। मुस्तफ़ा रूमी ने रूमियों की शैली की मज़बूत गाड़ियां बनवाकर खनवे की लड़ाई में सेना की रक्षार्थ आड़ के तौर खड़ी करवाई थीं।

बाबर की सारी सेना कई भागों में विभक्त होकर खड़ी थी। सेना का अग्रभाग (हरावल) दो हिस्सों में बांटा गया था, दक्षिणी भाग में चीनतीमूर, सुलेमानशाह, यूनस अली और शाह मंसूर बरलास आदि तथा बाईं ओर के भाग में अलाउद्दीन लोदी (आलमखां), शेख ज़ैन, मुहिब अली और शेरखां अपने-अपने सैन्य सहित खड़े हुए थे। इन दोनों के बीच कुछ पीछे की ओर हटकर सहायतार्थ रखी हुई सेना के साथ बाबर घोड़े पर सवार था। अग्रभाग (हरावल) से दक्षिण पार्श्व में हुमायूं की अध्यक्षता में मीर हामा, मुहम्मद कोकलताश, खानखाना दिलावरखां, मलिक दाद करानी, क़ासिम हुसैन, सुलतान और हिन्दू बेग आदि की सेनाएं थीं। हुमायूं के अधीनस्थ सैन्य के निकट इराक़ का राजदूत सुलेमान आक़ा और सीस्तान का हुसैन आक़ा युद्ध देखने के लिये खड़े हुए थे। इससे भी दाहिनी ओर तर्दीक, मलिक क़ासिम और बाबा कश्का की अध्यक्षता में युद्ध-समय में शत्रु को घेरनेवाली[1] एक सेना थी। इसी तरह हरावल के वाम-पार्श्व में खलीफ़ा के निरीक्षण में महदी ख़्वाजा, मुहम्मद सुलतान मिरज़ा, आदिल सुलेमान, अब्दुल अज़ीज़ और मुहम्मद अली अपने-अपने सैन्य के साथ उपस्थित थे। इस सैन्य से बाईं तरफ़ मुमीन आताक़ और रुस्तम तुर्कमान की अध्यक्षता में घेरा डालनेवाली दूसरी सेना खड़ी थी[2]।

---

(१) बादशाह बाबर अपनी सेनाओं के दोनों दूरस्थ पार्श्वों पर एक-एक ऐसी सेना रखता था, जो युद्ध के जम जाने पर दोनों तरफ से घूमती हुई आगे बढ़कर शत्रुओं को घेर लेती थी। व्यूहरचना की इस रीति (Flanking movement—तुलगमा) से राजपूत अपरिचित थे, परन्तु बाबर इसके लाभों को भली भांति जानता था और हरएक बड़े युद्ध में इस प्रणाली से, जो विजय का एक साधन मानी जाती थी, काम लेता था।

(२) तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५६४-६८। प्रो० रशब्रुक विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर ऑफ़ दी सिक्सटींथ सेञ्चुरी, पृ० १४६-५२।

बाबर की कुल सेना कितनी थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसने स्वयं इसका उल्लेख अपनी दिनचर्या में कहीं नहीं किया और न किसी अन्य मुसलमान इतिहास-लेखक ने। प्रो० रशब्रुक विलियम्स ने उसकी सेना आठ-दस हज़ार के क़रीब बताई है (पृ० १५२), जो सर्वथा स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि बाबर की दिनचर्या की पुस्तक से पाया जाता है कि जब वह काबुल से चला, तब उसके साथ १२००० सेना थी (तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४५२)। जब वह पंजाब में आया, तब ख़्वाजह और अन्य अमीर, जो बाबर की तरफ़ से हिन्दुस्तान में छोड़े गये थे, ससैन्य

इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये महाराणा की सेना में हसनखां मेवाती और इब्राहीम लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी अपनी अपनी सेनाओं सहित आ मिले। मारवाड़ का राव गांगा[1], आंबेर का राजा पृथ्वीराज[2], ईडर का राजा भारमल, वीरमदेव (मेड़तिया), नरसिंहदेव[3], वागड़ (डूंगरपुर) का रावल उदयसिंह,

उससे आ मिले। इन्द्री पहुंचने तक सुलेमान शेखज़ादा एवं बहुतसे अफ़गान सरदार भी आकर ससैन्य मिल गये थे, जिनमें आलमखां, दिलावरखां आदि मुख्य थे इसपर बाबर की कुल सेना की भीड़भाड़ उसी की दिनचर्य्या के अनुसार तीस-चालीस हज़ार हो गई (वही, पृ० ४५६)। इस तरह पानीपत के युद्ध में ही उसकी सेना ४० हजार के लगभग थी। उस युद्ध में कुछ सेना मारी भी गई होगी, परन्तु उस विजय के बाद बहुतसे अफ़ग़ान सरदार उसके अधीन हो गये, जिससे घटने की अपेक्षा उसकी सेना का बढ़ना ही अधिक संभव है। शेख़ गोरन के द्वारा दो तीन हजार सिपाही भरती होने का तो स्पष्ट उल्लेख है (वही, पृ० ५२६)। इसके साथ आगे यह भी लिखा है कि जब बाबर ने दरबार किया, तो शेख बायज़ीद, फीरोजखां, महमूदखां और काज़ी जीया उसके अधीन हुए और उन्हें उसने बड़ी २ जागीरें दीं (वही; पृ० ५२१)। खानवा की लड़ाई से पहले उसने हुमायूं, चीनतीमूर, तरदी बेग और कुच बेग आदि की अध्यक्षता में भिन्न २ स्थानों को जीतने के लिये सेना भेजना शुरू किया। प्रो० रशब्रुक विलियम्स के कथनानुसार यदि उसकी सेना केवल १०००० होती तो भिन्न २ दिशाओं में सेना भेजना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता। नासिरखां नुहानी और मारूफ़ फ़ारमली की ४०-५० हजार सेना का मुक़ाबला करने के लिये शाहजादे हुमायूं को जोनपुर की तरफ़ भेजा (वही; पृ० ५३०), तो उसके साथ कम से-कम ६-७ हजार सेना भेजी होगी। इन्हीं दिनों उसने संभल, इटावा, धौलपुर, ग्वालियर, जौनपुर और कालपी जीत लिये, जहां की सेनाएं भी उसके साथ अवश्य रही होंगी। खानवा के युद्ध से पूर्व हुमायूं आदि तुर्क सरदार भी अपनी-अपनी सेना सहित लौट आए थे। बाबर ने अपनी दिनचर्या में भी सांगा के साथ के युद्ध की व्यूह-रचना में अलाउद्दीन, खानखाना दिलावरखां, मलिक दाउद कर्रानी, शेख़ गोरन, जलालखां, कमालखां और निज़ामखां आदि अफ़ग़ान सरदारों के नाम दिये हैं, जिनसे स्पष्ट है कि इस युद्ध में उसने अपने अधीनस्थ सरदारों से पूरी सहायता ली थी। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि खानवा के युद्ध के समय बाबर के साथ कम से-कम पचास साठ हज़ार सेना होनी चाहिये।

(१) राव गांगा (मारवाड़ का) की सेना इस युद्ध में सम्मिलित हुई थी। राव गांगा की तरफ़ से मेड़ते के रायमल और रतनसिंह भी इस युद्ध में गये थे (मुंशी देवीप्रसाद, मीरांबाई का जीवनचरित्र, पृ० ६)।

(२) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६४।

(३) नरसिंहदेव शायद महाराणा सांगा का भतीजा हो।

चन्द्रभाण चौहान, माणिकचन्द चौहान[1], दिलीप, रावत रत्नसिंह[2] कांधलोत (चूंडावत), रावत जोगा[3] सारंगदेवोत, नरबद[4] हाड़ा, मेदिनीराय[5], वीरसिंह देव, झाला अज्जा[6], सोनगरा रामदास, परमार गोकुलदास[7], खेतसी, रायमल राठोर (जोधपुर की सेना का मुखिया), देवलिया का रावत बाघसिंह और बीकानेर का कुंवर कल्याणमल[8] भीससैन्य महाराणा के साथ थे[9]। इस प्रकार महाराणा के झण्डे के नीचे प्रायः सारे राजपूताने के राजा या उनकी सेना और कई बाहरी रईस, सरदार, शाहज़ादे आदि थे। महाराणा की सारी सेना[10] चार

---

(१) चन्द्रभाण चौहान और माणिकचन्द चौहान, दोनों पूर्व (अन्तरवेद) से महाराणा की सहायतार्थ आये थे। इनके वंशजों में इस समय बेदला, कोठारिया और पारसोलीवाले—प्रथम श्रेणी के सरदारों में है।

(२) रत्नसिंह के वंश में सलूम्बर का ठिकाना प्रथम श्रेणी के सरदारों में है।

(३) इसके वंश में कानोड़ का ठिकाना प्रथम श्रेणी और बाठरड़े का द्वितीय श्रेणी के सरदारों में है।

(४) नरबद हाड़ा (बूंदी के राव नारायणदास का छोटा भाई और सूरजमल का चाचा) षट्पुर (खटकड़) का स्वामी और बूंदी की सेना का मुखिया था।

(५) मेदिनीराय चन्देरी का स्वामी था।

(६) झाला अज्जा सादड़ी(बड़ी)वालों का मूलपुरुष था।

(७) यह कहां का था, निश्चय नहीं हो सका, शायद बिजोल्यावालों का पूर्वज हो।

(८) यह बीकानेर के राव जैतसी का पुत्र था और उक्त राव की तरफ़ से महाराणा की सहायतार्थ बीकानेर की सेना का अध्यक्ष होकर लड़ने गया था (मुंशी सोहनलाल, तारीख़-बीकानेर; पृ० ११५-१६)। उक्त तारीख़ में खानवा की लड़ाई का वि० सं० १५६८ (ई० स० १५४१) में होना लिखा है, जो ग़लत है।

(९) तुज़ुके बाबरी का बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६१-६२ और ५७३। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६४। ख्यात।

(१०) महाराणा सांगा के साथ खानवा के युद्ध में कितनी सेना थी, इसका ब्योरेवार विवेचन ख्यातों में तो मिलता नहीं और पिछले इतिहास-लेखकों ने उसकी जो संख्या बतलाई है, वह बाबर की दिनचर्या की पुस्तक से ली गई है। बाबर ने अपनी सेना की संख्या बताने में तो मौन ही धारण किया और उक्त पुस्तक में दिये हुए फ़तहनामे में महाराणा की सेना की जो संख्या दी है, उसमें अतिशयोक्ति की गई है। उसमें महाराणा तथा उसके साथ के राजाओं, सरदारों आदि की सेना की संख्या नीचे लिखे अनुसार दी है—

राणा सांगा	...	...	१०००००	सवार
सलाहउद्दीन (सलहदी, शल्यहृति)	...	...	३००००	”

भागों—अग्रभाग (हरावल), पृष्ठ-भाग (चण्डावल, चन्दावल), दक्षिण-पार्श्व और वाम-पार्श्व—में विभक्त थी। महाराणा स्वयं हाथी पर सवार होकर सैन्य संचालन कर रहा था।

ता० १३ जमादिउस्सानी हि० स० ९३३ (चैत्र सुदि १४ वि० सं० १५८४= १७ मार्च ई० स १५२७) को सवेरे ९½ बजे के करीब युद्ध प्रारम्भ हुआ। राजपूतों ने पहले पहल मुग़ल-सेना के दक्षिण पार्श्व पर हमला किया, जिससे मुग़ल सेना का वह पार्श्व एकदम कमज़ोर हो गया; यदि वहां और थोड़ी देर तक सहायता न पहुंचती, तो मुग़लों की हार निश्चित थी। बाबर ने एकदम सहायता भेजी और चीनतीमूर सुलतान ने राजपूतों के वामपार्श्व के मध्य भाग पर हमला किया, जिससे मुगल-सेना का दक्षिणपार्श्व नष्ट होने से बच गया। चीनतीमूर के इस हमले से राजपूतों के अग्रभाग और वामपार्श्व में विशेष अन्तर पड़ गया, जिससे मुस्तफ़ा ने अच्छा अवसर देखकर तोपों से गोलों की

रावल उदयसिंह (वागड़ का)	...	...	१२०००	सवार
मेदिनीराय	...	...	१२०००	,,
हसनखां (मेवाती) ..	...	...	१००००	,,
महमूदखां (सिकन्दर लोदी का पुत्र)		...	१००००	,,
भारमल (ईडर का) ...	...	...	४०००	,,
नरपत (नरबद) हाड़ा	...	...	७०००	,,
सत्र्वी (? शत्रुसेन खीची)	...	...	६०००	,,
बिरमदेव (वीरमदेव मेड़तिया)	...	...	४०००	,,
चन्द्रभान चौहान	...	...	४०००	,,
भूपतराय (सलहदी का पुत्र)	...	...	६०००	,,
मानिकचन्द चौहान	...	...	४०००	,,
दिलीपराय ...	...	...	४०००	,,
गागा ...	...	...	३०००	,,
कर्मसिंह ...	...	...	३०००	,,
डूंगरसिंह	...	...	३०००	,,
		कुल	२२२०००	

इस प्रकार २२२००० सवार तो बाबर ने गिनाए हैं (वही; पृ० ५६२ और ५७३)। यदि सलहदी के पुत्र भूपत के ६००० सवार सलहदी की सेना के अन्तर्गत मान लिये जावें, तो भी बाबर की बतलाई हुई सेना २१६००० होती है और बाबर ने एक स्थल पर राणा की सेना

वर्षा शुरू कर दी। इस तरह मुग़लों के दक्षिणपार्श्व की सेना को सम्हल जाने का मौक़ा मिल गया। मुग़ल सेना का दक्षिणपार्श्व की तरफ़ विशेष ध्यान देखकर राजपूतों ने वामपार्श्व पर ज़ोरशोर से हमला किया[१], परन्तु इसी समय एक तीर महाराणा के सिर में लगा, जिससे वह मूर्छित हो गया और कुछ सरदार उसे पालकी में बिठाकर मेवाड़ की तरफ़ ले गये। इसपर कुछ सरदारों ने रावत रत्नसिंह को—यह सोचकर कि राजपूत सेना महाराणा को अपने में अनुपस्थित देखकर हताश न हो जाय—महाराणा के हाथी पर सवार होने और सैन्य-सञ्चालन करने को कहा, परन्तु उसने उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं, इसलिये मैं एक क्षण के लिये भी राज्य-चिह्न धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो कोई राज्यच्छत्र धारण करेगा, उसकी पूर्ण रूप से सहायता करूंगा और प्राण रहने तक शत्रु से लड़ूंगा[२]। इसपर झाला अज्जा को सब राज्यचिह्नों के साथ महाराणा के हाथी पर सवार किया[३] और उसकी अध्यक्षता में सारी सेना लड़ने लगी[४]। वामपार्श्व पर राजपूतों

में २०१००० सवार होना बतलाया है (वहीं, पृ० ५६२), जो विश्वास योग्य नहीं है। पिछले मुसलमान इतिहास-लेखकों ने भी बाबर के इस कथन को अतिशयोक्ति मानकर इसपर विश्वास नहीं किया। अकबर के बख़्शी निज़ामुद्दीन ने अपनी पुस्तक तबकाते अकबरी में राणा सांगा की सेना १२०००० (अर्सकिन, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० १, पृ० ४६६) और शाह नवाज़खां (सम्सामुद्दौला) ने मआसिरुल-उमरा में १००००० लिखा है (मआसिरुल-उमरा, जि० २, पृ० २०२, बंगाल एशियाटिक सोसायटी का संस्करण), जो संभव है।

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६८–६९। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स, एन एम्पायर बिल्डर ऑफ़ दी सिक्सटींथ सेन्चुरी, पृ० १५३।

(२) हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ० १४५–४६।

(३) झाला अज्जा ने महाराणा के सब राज्यचिह्न धारण कर युद्ध संचालन करने में अपना प्राण दिया, जिसकी स्मृति में उसके मुख्य वंशधर सादड़ी के राजराणा को अब तक महाराणा के वे समस्त राज्यचिह्न धारण करने का अधिकार चला आता है।

(४) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६६। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० १४६–४७।

ख्यातों, वीरविनोद और कर्नल टॉड के राजस्थान आदि में लिखा मिलता है कि ऐन लड़ाई के वक्त तंवर सलहदी, जो महाराणा की हरावल में था, राजपूतों को धोखा देकर अपने सारे सैन्य सहित बाबर से जा मिला (टॉ; रा, जि० १, पृ० ३५६। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६६। हरबिलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० १०५), परंतु इसका उल्लेख किसी मुसलमान लेखक ने

खानवा के युद्ध की व्यूहरचना[1]

युद्ध के प्रारंभ की स्थिति
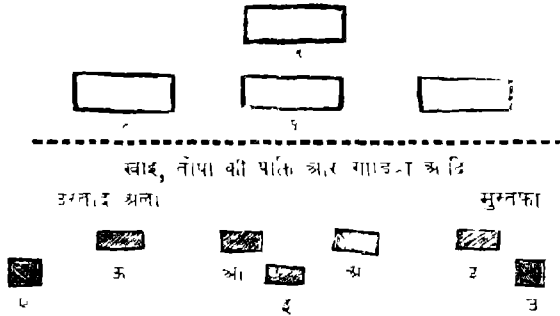
युद्ध के अन्त की स्थिति
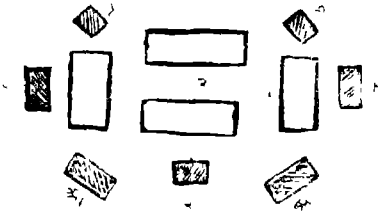
महाराणा की सेना

१—हरावल (अग्रभाग)

२—चन्दावल (पृष्ठ भाग)

३—वामपार्श्व

४—दक्षिणपार्श्व

बाबर की सेना

अ—हरावल का दक्षिण भाग

आ—हरावल का वाम भाग

इ—बाबर (सहायक सेना के साथ)

ई—दक्षिणपार्श्व

उ—दक्षिणपार्श्व को घेरा डालनेवाली सेना

ऊ—वामपार्श्व

ए—वामपार्श्व को घेरा डालनेवाली सेना

(१) प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स की पुस्तक के आधार पर।

के इस आक्रमण को देखकर वामपार्श्व की घेरनेवाली सेना के अफ़सर मुमीन आताक और रुस्तम तुर्कमान ने आगे बढ़कर राजपूतों पर हमला किया और बाबर ने भी खलीफ़ा की सहायतार्थ ख्वाजा हुसेन की अध्यक्षता में एक सेना भेजी।

अब तक युद्ध अनिश्चयात्मक हो रहा था, एक तरफ़ मुग़लों का तोपखाना धड़ाधड़ अग्नि-वर्षा कर राजपूतों को नष्ट कर रहा था, तो दूसरी ओर राजपूतों का प्रचण्ड आक्रमण मुग़लों की संख्या को बेतरह कम कर रहा था। इस समय बाबर ने दोनों पार्श्वों की घेरा डालनेवाली सेना को आगे बढ़कर घेरा डालने के लिये कहा और उस्ताद अली को भी गोले बरसाने के लिये हुक्म दिया। तोपों के पीछे सहायतार्थ रक्खी हुई सेना को उसने बन्दूकचियों के बीच में कर राजपूतों के अग्रभाग पर हमला करने के लिये आगे बढ़ाया। तोपों की उस मार से राजपूतों का अग्रभाग कुछ कमज़ोर हो गया। उनकी इस अवस्था को देखकर मुग़लों ने राजपूतों के दक्षिण और वामपार्श्व पर बड़े जोर से हमला किया और बाबर की हरावल के दोनों भागों एवं दोनों पार्श्वों की सेनाएं तोपखाने सहित अपनी अपनी दिशा में आगे बढ़ती हुई घेरा डालनेवाली सेनाओं की सहायक हो गई। इस आकस्मिक आक्रमण से राजपूतों में गड़बड़ी मच गई और वे अग्रभाग की तरफ़ जाने लगे, परन्तु फिर उन्होंने कुछ सम्हलकर मुग़लों के दोनों पार्श्वों पर हमला किया और मध्य भाग (हरावल) तक उनको खदेड़ते हुए वे बाबर के निकट पहुंच गये। इस समय तोपखाने ने मुग़ल सेना की बड़ी सहायता की, तोपों के गोलों के आगे राजपूत

नहीं किया और न अर्स्किन और स्टेन्ली लेनपूल आदि विद्वानों ने। प्रो० रशब्रुक विलियम्स ने तो इस कथन का विरोध भी किया है। यदि सलहदी बाबर से मिल गया होता और उससे बाबर को सहायता मिली होती, तो अवश्य उसे कोई बड़ी जागीर मिलती, परन्तु ऐसा पाया नहीं जाता। बाबर ने तो उस युद्ध के पीछे उसकी पहले की जागीर तक छीनना चाहा और चंदेरी लेने ही उसपर आक्रमण करने का निश्चय किया था (देखो पृ० ६६६, टि० १)। दूसरी बात यह है कि यदि सलहदी महाराणा को धोखा देकर बाबर से मिल गया होता, तो वह फिर चित्तोड़ में आकर मुँह दिखाने का साहस कभी न करता, परन्तु जब महमूदशाह ने उसको मरवाना चाहा, तब वह महाराणा रत्नसिंह के पास चला आया (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात; पृ० ३४६)। इन सब बातों का विचार करते हुए उसके बाबर से मिल जाने के कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

न ठहर सके और पीछे हटे। मुग़लों ने फिर आक्रमण किया और सब ने मिलकर राजपूत सेना को घेर लिया। राजपूतों ने तलवारों और भालों से उनका सामना किया, परन्तु चारों ओर से घिर जाने और सामने से गोलों की वर्षा होने से उनका संहार होने लगा[1]। युद्ध के प्रारंभ और अन्त की दोनों पक्ष की सेनाओं की स्थिति पृ० ६८६ में दिये हुए नक्शे से स्पष्ट हो जायगी।

उदयसिंह, हसनखां मेवाती, माणिकचन्द चौहान, चंद्रभाण चौहान, रत्नसिंह चूंडावत, झाला अज्जा, रामदास सोनगरा, परमार गोकलदास, रायमल राठोड़, रत्नसिंह मेड़तिया और खेतसी आदि इस युद्ध में मारे गये[2]। राजपूतों की हार हुई और मुग़ल सेना ने डेरों तक उनका पीछा किया। बाबर ने विजयी होकर ग़ाज़ी की उपाधि धारण की। विजय-चिह्न के तौर पर राजपूतों के सिरों की एक मीनार (ढेर) बनवाकर वह बयाना की ओर चला, जहां उसने राणा के देश पर चढ़ाई करनी चाहिये या नहीं, इसका विचार किया, परन्तु ग्रीष्म ऋतु का आगमन जानकर चढ़ाई स्थगित कर दी[3]।

इस पराजय का मुख्य कारण महाराणा सांगा का प्रथम विजय के बाद तुरन्त ही युद्ध न करके बाबर को तैयारी करने का पूरा समय देना ही था। यदि वह खानवा के पास की लड़ाई के बाद ही आक्रमण करता, तो उसकी जीत निश्चित थी[4]। राजपूत केवल अपनी अदम्य वीरता के साथ शत्रु-सेना पर तलवारों

(१) तुजुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५६८-७३। प्रो० रशब्रुक विलियम्स; ऐन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, पृ० १५३-५४। अर्स्किन; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४७२-७३।

(२) तुजुके बाबरी का ए. एस. बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५७३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६।

इस युद्ध में बाबर की सेना का कितना संहार हुआ और कौन कौन अफ़सर मारे गये, इस विषय में बाबर ने तो अपनी दिनचर्या की पुस्तक में मौन ही धारण किया है और न पिछले मुसलमान इतिहास-लेखकों ने कुछ लिखा है, तो भी संभव है कि बाबर की सेना का भीषण संहार हुआ हो। भाटों के एक दोहे से पाया जाता है कि बाबर के सैन्य के ५०००० आदमी मारे गये थे, परन्तु इसको भी हम अतिशयोक्ति से रहित नहीं समझते।

(३) तुजुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५७६-७७।

(४) एल्फ़िन्स्टन ने लिखा है कि यदि राणा मुसलमानों की पहली घबराहट पर ही आगे बढ़ आता, तो उसकी विजय निश्चित थी (हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४२३, नवम संस्करण)।

और भालों से आक्रमण करते थे और बाबर की इस नवीन व्यूहरचना से अनभिज्ञ होने के कारण वे अपनी प्राचीन रीति से ही लड़ते थे और उनको यह विचार भी न था कि दोनों पार्श्वों पर दूरस्थित शत्रु-सेना अन्य सेनाओं के साथ आगे बढ़कर उन्हें घेर लेगी। उनके पास तोपें और बन्दूकें न थीं, तो भी वे तोपों और बन्दूकों की परवाह न कर बड़ी वीरता से आगे बढ़-बढ़कर लड़ते रहे, जिससे भी उनकी बड़ी हानि हुई। हाथी पर सवार होकर महाराणा ने भी बड़ी भूल की, क्योंकि इससे शत्रु को उसपर ठीक निशाना लगाकर घायल करने का मौका मिला और उसको वहां से मेवाड़ की तरफ ले जाने का भी कुछ प्रभाव सेना पर अवश्य पड़ा।

इस पराजय से राजपूतों का वह प्रताप, जो महाराणा कुम्भा के समय में बहुत बढ़ा और इस समय तक अपने शिखर पर पहुंच चुका था, एकदम कम हो गया, जिससे भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति में राजपूतों का वह उच्च स्थान न रहा। राजपूतों की शायद ही कोई ऐसी शाखा हो, जिसके राजकीय परिवार में से कोई-न-कोई प्रसिद्ध व्यक्ति इस युद्ध में काम न आया हो। इस युद्ध का दूसरा परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ की प्रतिष्ठा और शक्ति के कारण राजपूतों का जो संगठन हुआ था वह टूट गया। इसका तीसरा और अंतिम परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में मुगलों का राज्य स्थापित हो गया और बाबर स्थिर रूप से भारतवर्ष का बादशाह बना, परन्तु इस युद्ध से वह भी इतना कमज़ोर हो गया कि राजपूताने पर चढ़ाई करने का साहस न कर सका। इस युद्ध से काणोता व बसवा गांव तक मेवाड़ की सीमा रह गई जो पहिले पीलिया खाल (पीलाखाल) तक थी[1]।

महाराणा संग्रामसिंह का रणथंभोर में पहुंचना

मूर्छित महाराणा को लेकर राजपूत जब बसवा गांव (जयपुर राज्य) में पहुंचे, तब महाराणा सचेत हुआ और उसने पूछा—सेना की क्या हालत है और विजय किसकी हुई? राजपूतों के सारा वृत्तान्त सुनाने पर अपने को युद्ध स्थल से इतनी दूर ले आने के लिये उसने उन्हें बुरा-भला कहा और वहीं डेरा डालकर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की। कई सरदारों ने महाराणा को दूसरी बार युद्ध करने के विचार से रोका,

(१) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६७।

परन्तु उसने यह जवाब दिया कि जब तक मैं बाबर को विजय न कर लूंगा, चित्तोड़ न लौटूंगा। फिर वह बसवा से रणथंभोर जा रहा।

इन दिनों महाराणा बहुत निराश रहता था, न किसी से मिलना जुलना और न महल से बाहर निकलता था। इस उदासीनता को दूर करने के लिये एक दिन सोदा बारहठ जमणा (? टोडरमल चाँचल्या) नामक एक चारण महाराणा के पास गया। पहले तो उसे राजपूतों ने महाराणा से मिलने न दिया, परन्तु उसके बहुत आग्रह करने पर उसको भीतर जाने दिया। उसने वहां जाकर सांगा को यह गीत सुनाया—

गीत

सतबार जरासँध आगळ श्रीरँग,
विमुहा टीकम दीध वग।
मेळि घात मारे मधुसूदन,
असुर घात नांखे अळग ॥ १ ॥
पारथ हेकरसां हथणापुर,
हटियो त्रिया पडंतां हाथ।
देख जका दुरजोधण कीधी,
पछै तका कीधी सज पाथ ॥ २ ॥
इकरां रामतणी तिय रावण,
मंद हरेगो दहकमळ।
टीकम सोहिज पथर तारिया,
जगनायक ऊपरां जळ ॥ ३ ॥
एक राड़ भवमांह अवत्थी,
असरस आणै केम उर।
मालतणा केवा कण मांगा,
सांगा तू सालै असुर[1] ॥ ४ ॥

आशय—महाराणा! आपको निराश न होना चाहिये। जरासंध से सौ (कई) बार हारकर भी श्रीकृष्ण ने अन्त में उसे हराया। जब दुर्योधन ने

(१) ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश, पृ० ७०-७१।

द्रौपदी पर हाथ मारा, तब अर्जुन हस्तिनापुर से चला गया, परन्तु पीछे से उसने क्या क्या किया ? एक बार मूर्ख रावण सीता को हर ले गया था, जिसपर रामचन्द्र ने जल पर पत्थर तैराकर (समुद्र पर पुल बांधकर) कैसा बदला लिया ? हे राणा, तू एक हार पर क्यों इतना दुःख करता है ? तू तो शत्रु के लिये साल (दुःखरूप) है ।

यह गीत सुनकर महाराणा की निराशा दूर हो गई और उसने उसे बकाण नामक गांव दिया, जो अभी तक उसके वंश में चला आता है[1] ।

महाराणा सांगा के सिक्के और शिलालेख

महाराणा सांगा के पांच-छः प्रकार के तांबे के सिक्के देखने में आये, जिनकी एक तरफ़ राणा संग्रामसह, श्रीसंग्रामसह, श्रीराणा संग्रामसह, श्रीसंग्रामसाह, श्रीसंग्रमसह या श्रीराणा सगमसह लेख मिलता है । पूरा लेख किसी सिक्के पर नहीं पाया गया, अलग २ सिक्कों पर लेख का भिन्न-भिन्न अंश आया है, किसी किसी सिक्के पर लेख के नीचे १५७५ और १५८० के अंक भी मिलते हैं, जो संवतों के सूचक हैं । सिक्कों की दूसरी तरफ किसी पर खड़ी रेखा के दोनों तरफ नीचे की ओर झुकी हुई दो दो वक्र रेखाएं हैं, जो शायद मनुष्य की भद्दी मूर्ति बनाने का यत्न हो. किसी पर त्रिशूल, स्वस्तिक का चिह्न और नीचे या ऊपर एक दो फारसी अक्षर, जो शाह या साह के सूचक हों, मिलते हैं[2] । किसी पर पान की-सी आकृति और एक दो फ़ारसी अक्षर हैं, जैसे कि आजकल के उदयपुरी पैसों (ढींगलों) पर मिल आते हैं । ये सिक्के चौकोर, परन्तु मोटे, भद्दे और असावधानी से बने हुए हैं, जिनपर के लेख में शुद्धता का विचार रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता । ये सिक्के कुंभा के तांबे के सिक्कों जैसे सुन्दर नहीं हैं ।

---

(१) महाराणा चारणों के वीररस-पूर्ण गीतों के सुनने का अनुरागी था, इसी से उसने कई चारणों को जागीरें भी दी थीं । बृहत् इतिहास वीरविनोद के कर्त्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के पूर्व पुरुष महपा जैतावत को उसने वि० सं० १५७५ वैशाख सुदि ७ को ढोकलिया गांव दिया, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३५८) । ऐसे ही महियारिया हरिदास को भी कुछ गांव दिये थे, जिनमें से पाचली गांव अब तक उसके वंश में चला आता है (वहीं, भाग १, पृ० ३७१) ।

(२) डब्ल्यू. डब्ल्यू. वेब, दी करंसीज़ ऑफ़ राजपूताना, पृ० ७, प्लेट १, चित्र ६, १० और ११ ।

महाराणा सांगा उमर भर युद्ध ही करता रहा, इसलिये उसे मन्दिरादि बनाने का समय मिला हो, ऐसा पाया नहीं जाता। इसी से स्वयं महाराणा का खुदवाया हुआ कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला। उसके राजत्वकाल के दो शिलालेख मिले हैं जिनमें से एक चित्तोड़ से वि० सं० १५७४ वैशाख सुदि १३ का। उसमें राजाधिराज संग्रामसिंह के राज्य-समय उसके प्रधान द्वारा दो बीघे भूमि देवी के मन्दिर को अर्पण करने का उल्लेख है। दूसरा शिलालेख, वि० सं० १५८४ ज्येष्ठ वदि १३ का, डिग्गी (जयपुर राज्य में) के प्रसिद्ध कल्याणरायजी के मन्दिर में लगा हुआ है, जिससे पाया जाता है कि राणा संग्रामसिंह के समय तिवाड़ी ब्राह्मणों ने वह मंदिर बनवाया था।

महाराणा सांगा की मृत्यु

यद्यपि खानवा के युद्ध में राजपूत हारे थे, तो भी उनका बल नहीं टूटा था। बाबर को अब भी डर था कि कहीं राजपूत फिर एकत्र हो हमला कर उससे राज्य न छीन लें, इसीलिये उसने उनपर आक्रमण कर उनकी शक्ति को नष्ट करने का विचार किया। इस निश्चय के अनुसार वह मेदिनीराय पर जो महाराणा के बड़े सेनापतियों में से एक था, चढ़ाई कर कालपी इरिच और कचवा (खजवा) होता हुआ ता० २६ रबीउस्सानी हि० स० ६३४ (वि० सं० १५८४ माघ वदि १३=ता० १६ जनवरी ई० स० १५२८) को चन्देरी पहुंचा[1]। बदला लेने के लिये इस अवसर को उपयुक्त जानकर महाराणा ने भी चन्देरी को प्रस्थान किया और कालपी से कुछ दूर इरिच गांव में डेरा डाला, जहां उसके साथी राजपूतों ने, जो नये युद्ध के विरोधी थे, उसको फिर युद्ध में प्रविष्ट देखकर विष दे दिया[2]। शनैः शनैः विष का प्रभाव बढ़ता देखकर वे उसको वहां से लेकर लौटे और मार्ग में कालपी[3] स्थान पर माघ

(१) तुजुक बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५६२।

(२) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३६७। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० १५६-५७। मुंशी देवीप्रसाद का कथन है कि 'महाराणा मुकाम एरिच से बीमार होकर पीछे लौटे और रास्ते में ही जान देकर वचन निभा गये कि मैं फ़तह किये बिना चित्तोड़ को नहीं जाऊंगा' (महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० १४)।

(३) वीरविनोद, भा० १, पृ० ३६६, टि० १।

'अमरकाव्य' में कालपी स्थान में महाराणा का देहान्त होना और मांडलगढ़ में दाहक्रिया होना लिखा है, जो ठीक ही है। वीरविनोद में खानवा के युद्धक्षेत्र से महाराणा के बसवा में लाये

सुदि ९ वि० सं० १५८४[1] (ता० ३० जनवरी १५२८) को उसका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार उस समय के सबसे बड़े प्रतापी हिन्दूपति महाराणा सांगा की जीवन-लीला का अन्त हुआ।

भाटों की ख्यातों के अनुसार महाराणा सांगा ने २८ विवाह किये थे, जिनसे उसके सात पुत्र—भोजराज,[2] कर्णसिंह, रत्नसिंह,[3] विक्रमादित्य, उदयसिंह,[4]

जाने पर वहीं देहान्त होना लिखा है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६७), जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(१) महाराणा की मृत्यु का ठीक दिन अनिश्चित है। वीरविनोद में वि० सं० १५८४ वैशाख (ई० स० १५२७ अप्रेल) में इस घटना का होना लिखा है (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३७२), जो स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुहणोत नैणसी ने सांगा के जन्म और गद्दीनशीनी के संवतों के साथ तीसरा संवत् १५८४ कार्तिक सुदि ५ दिया है और साथ में लिखा है कि राणा सांगा सीकरी की लड़ाई में हारा (ख्यात; पत्र ४, पृ० २), परन्तु नैणसी की पुस्तक में विराम-चिह्नों का अभाव होने के कारण उक्त तीसरे संवत् को मृत्यु का संवत् भी मान सकते हैं और ऐसा मानकर ही वीरविनोद में महाराणा सांगा के उत्तराधिकारी रत्नसिंह की गद्दीनशीनी की यही तिथि दी है (वीरविनोद; भाग २, पृ० १); परन्तु नैणसी की दी हुई यह तिथि भी स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि उक्त तिथि हि० स० ९३४ ता० ३ सफ़र (ई० स० १५२७ ता० २९ अक्टूबर) को थी। बाबर बादशाह ने हि० स० ९३४ ता० ७ जमादि-उल्-अव्वल (वि० सं० १५८४ माघ सुदि ८=ई० स० १५२८ ता० २९ जनवरी) के दिन चन्देरी को विजय किया और दूसरे दिन अपने सैनिकों से सलाह की कि यहां से पहले रायसेन, भिलसा और सारंगपुर के स्वामी सलहदी पर चढ़ें या राणा सांगा पर (तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५९६)। इससे निश्चित है कि उक्त तिथि तक महाराणा सांगा की मृत्यु की सूचना बाबर को मिली न थी, अर्थात् वह जीवित था। चतुरकुलचरित्र में महाराणा की मृत्यु वि० सं० १५८४ माघ सुदि ९ (ता० ३० जनवरी ई० स० १५२८) को होना लिखा है (ठाकुर चतुरसिंह, चतुरकुलचरित्र; पृ० २७), जो संभवतः ठीक हो, क्योंकि बाबर के चन्देरी में ठहरते समय सांगा एरिच में पहुंचा था और एकआध दिन बाद उसका स्वर्गवास हो गया था।

(२) भोजराज का जन्म सोलंकी रायमल की पुत्री कुंवरबाई से हुआ था (बड़वे देवीदान की ख्यात। वीरविनोद; भाग २, पृ० १)।

(३) रत्नसिंह जोधपुर के राव जोधा के पोते बाघा सूजावत की पुत्री धनाई (धनबाई, धनकुंवर) से उत्पन्न हुआ था (बड़वे देवीदान की ख्यात। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७१। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ५, पृ० १ और पत्र २५, पृ० १)।

(४) विक्रमादित्य और उदयसिंह बूंदी के राव भांडा की पोती और नरबद की बेटी करमेती (कर्मवती) से पैदा हुए थे (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७१। नैणसी की ख्यात; पत्र २५, पृ० १)।

महाराणा सांगा की सन्तति

पर्वतसिंह और कृष्णसिंह—तथा चार लड़कियां—कुंवरबाई, गंगाबाई, पद्माबाई और राजबाई—हुईं। कुंवरों में से भोजराज, कर्णसिंह, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह तो महाराणा के जीवन-काल में ही मर गये थे।

महाराणा सांगा वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्यायपरायण शासक था। अपने शत्रु को कैद करके छोड़ देना और उसे पीछा राज्य दे देना सांगा

महाराणा सांगा का व्यक्तित्व

जैसे ही उदार और वीर पुरुष का कार्य था। वह एक सच्चा क्षत्रिय था, उसने कितने ही शाहज़ादों, राजाओं आदि को अपनी शरण में आने पर अच्छी तरह रक्खा और आवश्यकता पड़ने पर उनके लिये युद्ध भी किया। प्रारंभ से ही आपत्तियों में पलने के कारण वह निडर, साहसी, वीर और एक अच्छा योद्धा बन गया था, जिससे वह मेवाड़ को एक साम्राज्य बना सका। मालवे के सुलतान को परास्त कर और उससे रणथम्भोर,[1] गागरौन, कालपी, भिलसा तथा चन्देरी जीतकर उसने अपने राज्य को बहुत बढ़ा दिया था[2]। गानपराने के [illegible] कई नामी राजा आदि

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है—'रणथम्भोर जैसे अजेय दुर्ग का, जिसकी रक्षा शाही सेनापति अली बख़्श कर रहा था, सफलता से हस्तगत करने से सांगा की बड़ी कीर्ति हुई' (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६)। मुसलमान तवारीखों से पाया जाता है कि मालवे के सुलतान महमूद दूसरे को अपनी कैद में छोड़ने पर उसके जो इलाके महाराणा के हस्तगत हुए, उनमें रणथम्भोर भी था। संभव है, अली सुलतान महमूद का किलेदार हो और महाराणा को किला सौंप देने से उसने इनकार किया हो, अतएव उससे लड़कर किला लेना पड़ा हो।

(२) मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि राणा सांगा ने बांधव (बांधवगढ़, रीवां) के बघेले मुकुन्द से लड़ाई की, जिसमें मुकुन्द भागा और उसके बहुतसे हाथी राणा के हाथ लगे (ख्यात, पत्र ५, पृ० १) परन्तु रीवां की ख्यात या रीवां के किसी इतिहास में वहां के राजाओं में मुकुन्द का नाम नहीं मिलता और न नैणसी ने बांधोगढ़ के बघेलों के वृत्तान्त में दिया है। कायस्थ अभयचन्द के पुत्र माधव ने रीवां के राजा वीरभानु के, जो बादशाह हुमायूं का समकालीन था, राज्य समय वि० सं० १५६७ (ई० स० १५४०) से कुछ पूर्व 'वीरभानूदय' काव्य लिखा, जिसमें मुकुन्द का नाम नहीं है, यद्यपि उक्त काव्य का कर्त्ता माधव महाराणा सांगा का समकालीन था। नैणसी ने रीवां के बघेलों के इतिहास में वीरभानु के वंशधर विक्रमादित्य के संबंध में लिखा है कि वह मुकुन्दपुर में रहा करता था (ख्यात, पत्र ३१, पृ० १)। यदि वह नगर उसी मुकुन्द का बसाया हुआ हो, तो यही मानना पड़ेगा कि मुकुन्द बांधवगढ़ (रीवां) का राजा नहीं, किन्तु वहां के किसी राजा के छोटे भाइयों में से था।

भी उसकी अधीनता या मेवाड़ के गौरव के कारण मित्रभाव से उसके झंडे के नीचे लड़ने में अपना गौरव समझते थे। इस प्रकार राजपूत जाति का संगठन होने के कारण वे बाबर से लड़ने को एकत्र हुए। सांगा अन्तिम हिन्दू राजा था, जिसके सेनापतित्व मे सब राजपूत जातियां विदेशियों (तुर्कों) को भारत से निकालने के लिये सम्मिलित हुई। यद्यपि उसके बाद और भी वीर राजा उत्पन्न हुए, तथापि ऐसा कोई न हुआ, जो सारे राजपूताने की सेना का सेनापति बना हो। सांगा ने दिल्ली के सुलतान को भी जीतकर आगरे के पास पीलाखाल को अपने राज्य की उत्तरी सीमा निश्चित की और गुजरात को लूटकर छोड़ दिया। इस तरह गुजरात, मालवे और दिल्ली के सुलतानों को परास्त कर[1] उसने महाराणा कुंभा के आरंभ किये हुए कार्य को, जो उदयसिंह के कारण शिथिल हो गया था, आगे बढ़ाया। बाबर लिखता है कि 'राणा सांगा अपनी वीरता और तलवार के बल से बहुत बड़ा हो गया था। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि मालवे, गुजरात और दिल्ली के सुलतानों मे से कोई भी अकेला उसे हरा नहीं सकता था। करीब २०० शहरों में उसने मस्जिदें गिरवा दीं और बहुतसे मुसलमानों को कैद किया। उसका मुल्क १० करोड़ की आमदनी का था, उसकी सेना में १००००० सवार थे। उसके साथ ७ राजा, ६ राव और १०४ छोटे सरदार रहा करते थे'[2]। उसके तीन उत्तराधिकारी भी यदि वैसे ही वीर और योग्य होते, तो मुग़लों का राज्य भारतवर्ष में जमने न पाता।

---

(१) *इब्राहिम पूरब दिसा न उलटै,*
पछम मुदाफर न दे पयाण ॥
दखणी महमदसाह न दौड़ै,
सांगो दामण बहुँ सुरताण ॥ १ ॥

(ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश, पृ० ६५)।

आशय—इब्राहीम पूर्व से, मुज़फ़्फ़रशाह पश्चिम से और मुहम्मदशाह दक्षिण से इधर (चित्तोड़ की तरफ़) नहीं बढ़ सकता, क्योंकि सांगा ने उन तीनों सुलतानों के पैर जकड़ दिये हैं।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४८३ और ५६१-६२। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा सग्रामसिंघजी का जीवनचरित्र; पृ० ६।

इतना बड़ा राज्य स्थिर करनेवाला होने पर भी वह राजनीति में अधिक निपुण नहीं था; उसने इब्राहीम लोदी को नष्ट करने के लिये उससे भी प्रबल शत्रु (बाबर) को बुलाने का यत्न किया। अपने शत्रु को पकड़कर फिर छोड़ देना उदारता की दृष्टि से भले ही उत्तम कार्य हो, परन्तु राजनीति के विचार से बुरा ही था। इसी तरह गुजरात के सुलतान को हराकर उसके इलाकों पर अधिकार न करना भी उसकी भूल ही थी। राजपूतों की बहुविवाह की कुरीति से वह बचा हुआ नहीं था; अपने छोटे लड़कों को रणथंभोर जैसी बड़ी जागीर देकर उसने भविष्य के लिये एक कांटा बो दिया।

महाराणा सांगा का क़द मझोला, बदन गठा हुआ, चेहरा भरा हुआ, आंखें बड़ी, हाथ लंबे और रंग गेहुंआ था[1]। अपने भाई पृथ्वीराज के साथ के झगड़े में उसकी एक आंख फूट गई थी, इब्राहीम लोदी के साथ के दिल्ली के युद्ध में उसका एक हाथ कट गया और एक पैर से वह लँगड़ा हो गया था। इनके अतिरिक्त उसके शरीर पर ८० घाव भी लगे थे और शायद ही उसके शरीर का कोई अंश ऐसा हो, जिसपर युद्धों में लगे हुए घावों के चिह्न न हों[2]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४८। वीरविनोद, भाग १, पृ० ३७१।

(२) वही; पृ० ३४८।

पांचवां अध्याय

महाराणा रत्नसिंह से महाराणा अमरसिंह तक

रत्नसिंह (दूसरा)

महाराणा सांगा की मृत्यु के समाचार पहुंचने पर उसका कुंवर रत्नसिंह[1] वि० सं० १५८४ माघ सुदि १५ (ई० स० १५२८ ता० ५ फरवरी) के आसपास[2] चित्तोड़ के राज्य का स्वामी हुआ।

महाराणा सांगा के देहान्त के समय महारानी हाड़ी कर्मवती अपने दोनों पुत्रों के साथ रणथम्भोर में थी। अपने छोटे भाइयों के हाथ में रणथम्भोर की पचास-साठ लाख की जागीर का होना रत्नसिंह को बहुत अखरता था, क्योंकि वह उसकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। कर्मवती और अपने दोनों भाइयों को चित्तोड़ बुलाने के लिये उसने पूरबिये पूरणमल को पत्र देकर रणथम्भोर भेजा और कर्मवती से कहलाया कि आप सब को यहां आ जाना चाहिये। उत्तर में उसने कहलाया कि स्वर्गीय महाराणा इन दोनों भाइयों को रणथम्भोर की जागीर देकर मेरे भाई सूरजमल को इनका संरक्षक बना गये हैं, इसलिये यह बात उसी के अधीन है। जब महाराणा का सन्देश सूरजमल को सुनाया गया, तो उसने उस बात को टालने के लिये कहा कि मैं चित्तोड़ आऊंगा और इस विषय में महाराणा से स्वयं बातचीत कर लूंगा। महाराणा सांगा ने जो दो बहुमूल्य वस्तु—सोने की कमरपेटी और रत्न-जटित मुकुट—सुलतान मुहमूद से ली

हाडा सूरजमल से विरोध

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने रत्नसिंह का जन्म वि० सं० १५५३ वैशाख वदि ८ को होना लिखा है (महाराणा रत्नसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ५५)।

(२) देखो पृ० ६६६, टि० १।

थीं, वे विक्रमादित्य के पास होने से उनको भेजने के लिये भी रत्नसिंह ने कहलाया था, परन्तु उसने भेजने से इनकार कर दिया। पूरणमल ने यह सारा हाल चित्तोड़ जाकर महाराणा से कहा। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ[1]।

उधर हाड़ी कर्मवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी, जिसके लिये उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रपञ्च रचा। फिर अशोक नामक सरदार के द्वारा बादशाह से इस विषय में बातचीत होने लगी। बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है—"हि० स० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० सं० १५८५ आश्विन सुदि १५=ई० स० १५२८ ता० २८ सितम्बर) को राणा सांगा के दूसरे पुत्र विक्रमाजीत के, जो अपनी माता पद्मावती (?कर्मवती) के साथ रणथम्भोर में रहता था, कुछ आदमी मेरे पास आये। मेरे ग्वालियर को रवाना होने से पहले भी विक्रमाजीत के अत्यन्त विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर राणा के अधीनता स्वीकार करने के समाचार लेकर आये थे। उस समय यह बात तय हो गई थी कि उतनी आमद के परगने उसे दिये जायेंगे और उनको नियत दिन ग्वालियर आने को कहा गया। वे नियत समय से कुछ दिन पीछे वहां आये। यह अशोक विक्रमाजीत की माता का रिश्तेदार था, उसने विक्रमाजीत को मेरी सेवा के लिये राज़ी कर लिया था। सुलतान महमूद से लिया हुआ रत्नजटित मुकुट और सोने की कमरपेटी भी, जो विक्रमाजीत के पास थी, उसने मुझे देना स्वीकार किया और रणथम्भोर देकर मुझसे बयाना लेने की बातचीत की, परन्तु मैंने बयाने की बात को टालकर शम्साबाद देने को कहा; फिर उनको ख़िलअत दी और ९ दिन के बाद बयाने में मिलने को कहकर विदा किया[2]"। फिर आगे वह लिखता है—"हि० स० ९३५ ता० ५ सफ़र (वि० सं० १५८५ कार्तिक सुदि ६=ई० स० १५२८ ता० १९ अक्टूबर) को देवा का पुत्र हामूसी (?) विक्रमाजीत के पहले के राजपूतों के साथ इसलिये भेजा गया कि वह रणथंभोर सौंपने और विक्रमाजीत के सेवा स्वीकार करने की शर्तें हिंदुओं की रीति

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ४।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ६१२-१३।

के अनुसार तय करे। मैंने यह भी कहा कि यदि विक्रमाजीत अपनी शर्तों पर दृढ़ रहा, तो उसके पिता की जगह उसे चित्तोड़ की गद्दी पर बिठा दूंगा[1]"।

ये सब बातें हुईं, परन्तु सूरजमल रणथम्भोर जैसा किला बाबर को दिलाना नहीं चाहता था; उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिये यह प्रपंच रचा था; इसी से रणथम्भोर का किला बादशाह को सौंपा न गया[2], परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और भी बढ़ गया[3]।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह का भाई शाहज़ादा चांदखां उससे विद्रोह कर सुलतान महमूद के पास मांडू में जा रहा। बहादुरशाह ने चांदखां को उससे मांगा, परन्तु जब उसने न दिया, तो वह मांडू पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा[4]। महाराणा सांगा का देहान्त होने पर मालवेवालों पर मेवाड़वालों की जो धाक जमी थी, उसका प्रभाव कम हो गया। मालवे के कई एक इलाके मेवाड़ के अधिकार में होने के कारण सुलतान महमूद पहले ही से महाराणा से जल रहा था, ऐसे में रायसेन का सलहदी और सीवास का सिकन्दरखां[5]—जिनको वह अपने इलाके अधिकृत कर लेने के कारण मारना चाहता था[6]—महाराणा से आ मिले, जिससे वह महाराणा से और भी अप्रसन्न हो गया और अपने सेनापति शरज़हखां को मेवाड़ का इलाक़ा लूटने के लिये भेजा। इसपर महाराणा मालवे पर चढ़ाई कर संभल को लूटता हुआ सारंगपुर तक पहुंच गया, जिसपर शरज़हखां लौट गया और

महमूद खिलजी की चढ़ाई

---

(१) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ६१६-१७।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७।

(३) महाराणा रत्नसिंह और सूरजमल के बीच अनबन होने की और भी कथाएं मिलती हैं, परन्तु उनके निर्मूल होने के कारण हमने उन्हें यहां स्थान नहीं दिया।

(४) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६५।

(५) मिराते सिकन्दरी में सिकन्दरख़ां नाम दिया है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४९), परन्तु फ़िरिश्ता ने उसके स्थान पर मुईनख़ां नाम लिखा है और उसको सिकन्दरख़ां का दत्तक पुत्र माना है (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६६)।

(६) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४९। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६६।

महमूद भी, जो उज्जैन में था, मांडू को चला गया[1]। ऐसे में गुजरात का सुलतान भी मालवे पर चढ़ाई करने के इरादे से वागड़ में आ पहुंचा और महाराणा के वकील डूंगरसी तथा जाजराय उसके पास पहुंचे। लौटते समय मालवे का मुल्क लूटते हुए महाराणा सलहदी सहित खरजी की घाटी के पास सुलतान बहादुरशाह से मिला, तो उसने महाराणा को ३० हाथी तथा कितने एक घोड़े भेट किये और १५०० ज़रदोज़ी खिलअतें उसके साथियों को दीं। सलहदी तथा अपने दोनों वकीलों और कुछ सरदारों को अपने सैन्य सहित सुलतान के साथ करके राणा चित्तोड़ चला गया[2]। महाराणा के इस तरह सुलतान बहादुर से मिल जाने के कारण हताश होकर सुलतान महमूद ने गुजरात के सुलतान से कहलाया कि मैं आपके पास आता हूं, परन्तु वह इसमें टालाटूली करता रहा। अधिक प्रतीक्षा न कर बहादुरशाह मांडू पहुंच गया और थोड़ी सी लड़ाई के बाद महमूद को क़ैद कर अपने साथ ले गया[3]। इस तरह मालवे का स्वतन्त्र राज्य तो गुजरात में मिल गया, जिससे उस राज्य का बल बढ़ गया।

महाराणा रत्नसिंह का शिलालेख और सिक्का

स्वयं महाराणा रत्नसिंह का तो अब तक कोई शिलालेख नहीं मिला, परन्तु उसके मंत्री कर्मसिंह (कर्मराज) का खुदवाया हुआ एक शिलालेख शत्रुंजय तीर्थ (काठियावाड़ में पालीताणा के पास) से मिला है, जिसका आशय यह है कि संग्रामसिंह के पराक्रमी पुत्र रत्नसिंह के राज्य-समय उसके मंत्री कर्मसिंह ने गुजरात के सुलतान बाहदर (बहादुरशाह) से स्फुरन्मान (फ़रमान) प्राप्त कर शत्रुञ्जय का सातवां उद्धार कराया और पुण्डरीक के मन्दिर का जीर्णोद्धार कर उसमें आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की। इस उद्धार के काम के लिये तीन सूत्रधार (सुथार) अहमदाबाद से और उन्नीस चित्तोड़ से गये थे, जिनके नाम उक्त लेख में दिये गये हैं। उक्त लेख में मंत्री कर्मसिंह के वंश का विस्तृत परिचय भी दिया है[4]। मुसलमानों के समय में मन्दिर बनाने की बहुधा मनाई थी, परन्तु संभव

(१) ब्रिग्ज, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६४-६५। मुंशी देवीप्रसाद, महाराणा रतनसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० ५०-५१।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३४७-५०। ब्रिग्ज़, फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६६-६७।

(३) बेले; हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० ३५२-५३।

(४) ए. इं; जि० २, पृ० ४२-४७।

है कि कर्मसिंह ने महाराणा रत्नसिंह की सिफ़ारिश से बहादुरशाह का फ़रमान प्राप्त कर शत्रुंजय का उद्धार कराया हो।

महाराणा रत्नसिंह का एक तांबे का सिक्का हमें मिला, जो महाराणा कुंभा के सिक्कों की शैली का है, सांगा के सिक्कों जैसा भद्दा नहीं। उसकी एक तरफ़ 'राणा श्री रतनसीह' लेख है और दूसरी तरफ़ के चिह्न आदि सिक्के के घिस जाने के कारण अस्पष्ट हैं।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के हाड़ा सूरजमल के बीच अनबन बहुत बढ़ गई थी, इसलिये महाराणा ने उसको छल से मारने की ठान ली। इस विषय में मुहणोत नैणसी लिखता है—

महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु

"राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूंदी के निकट पहुंचा और सूरजमल को भी बुलाया। वह जान गया कि राणा मुझे मरवाने के लिये ही बुला रहा है और इस पसोपेश में रहा कि वहां जाऊं या न जाऊं। एक दिन उसने अपनी माता खेतू से, जो राठोड़ वंश की थी, पूछा कि राणा के दूत मुझे बुलाने को आये हैं, राणा मुझसे अप्रसन्न है और वह मुझे मारेगा, इसलिये तुम्हारी आज्ञा हो तो हाथ दिखाऊं। इसपर माता ने उत्तर दिया—'बेटा, ऐसा क्यों करे? हम तो सदा से दीवाण (राणा) के सेवक रहे हैं, हमने कोई अपराध तो किया नहीं, जो राणा तुम्हारा वध करे। शीघ्र उसके पास जाओ और उसकी अच्छी तरह सेवा करो'। माता की यह आज्ञा सुनकर वह वहां से चला और बूंदी तथा चित्तोड़ के सीमा पर के गोकर्ण तीर्थवाले गांव में उससे आ मिला। राणा के मन में बुराई थी, तो भी उसने ऊपरी दिल से आदर किया और 'सूरभाई' कह कर उसका सम्बोधन किया। एक दिन उसने सूरजमल से कहा कि हमने एक नया हाथी खरीदा है, जिसपर आज सवारी कर तुम्हें दिखावेंगे। राणा हाथी पर सवार हुआ और सूरजमल घोड़े पर सवार हो उसके आगे आगे चलने लगा। एक तंग स्थान पर राणा ने उसपर हाथी पेला, परन्तु घोड़े को एड़ लगाकर वह आगे निकल गया और उसपर क्रुद्ध हुआ। राणा ने मीठी मीठी बातें बनाकर कहा कि इसमें हमारा कोई दोष नहीं है, हाथी अपने आप झपट पड़ा था।

फिर एक दिन पीछे उसने कहा कि आज सूअरों की शिकार खेलेंगे। राव ने कहा, बहुत अच्छा। राणा ने अपनी पंवार वंश की राणी से कहा कि कल

हम एकल सूअर को मारेंगे और तुम्हें भी तमाशा दिखावेंगे। दूसरे ही दिन राणी गोकर्ण तीर्थ पर स्नान करने गई। थोड़ी देर पहले सूरजमल भी वहां स्नानार्थ गया हुआ था। राणी के पहुंचते ही वह वहां से निकल गया। राणी की दृष्टि उसपर पड़ी, तो उसने एक दासी से पूछा, यह कौन है? उसने उत्तर दिया कि यह बूंदी का स्वामी हाड़ा सूरजमल है, जिसपर दीवाण (राणा) अप्रसन्न हैं। राणी तुरंत ताड़ गई कि जिस सूअर को राणा मारना चाहते हैं, वह यही है। रात को उसने राणा से फिर सूअर की बात छेड़ी और निवेदन किया कि उस एकल को मैंने भी देखा है, दीवाण उसे न छेड़ें, उसके छेड़ने में कुशल नहीं।

दूसरे ही दिन सवेरे सूरजमल को साथ ले राणा शिकार को गया। शिकार के मौके पर केवल राणा, पूरणमल पूरविया, सूरजमल और उसका एक खवास (नौकर) थे। राणा ने पूरणमल को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया, परंतु उसकी हिम्मत न पड़ी, तब राणा ने सवार होकर उसपर तलवार का वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा कट गया। इसपर पूरणमल ने भी एक वार किया, जो सूरजमल की जांघ पर लगा तब तो लपककर सूरजमल ने पूरणमल पर प्रहार किया, जिससे वह चिल्लाने लगा। उसे बचाने के लिये राणा वहां आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की लगाम पकड़कर झुके हुए राणा की गर्दन के नीचे ऐसा कटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा ने घोड़े पर से गिरते-गिरते पानी मांगा तो सूरजमल ने कहा कि काल ने तुझे खा लिया है, अब तू जल नहीं पी सकता। वहीं राणा और सूरजमल, दोनों के प्राण-पक्षी उड़ गये। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और राणी पंवार उसके साथ सती हुई"[1]। यह घटना वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में[2] हुई।

(१) ख्यात; पत्र २६ और २७, पृ० १।

(२) कर्नल टॉड ने रत्नसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १५८६ में होना माना है, जो स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि वि० स० १५८४ माघ सुदि ६ (३० जनवरी ई० स० १५२८) के आसपास महाराणा का स्वर्गवास होना ऊपर बतलाया जा चुका है। इसी तरह रत्नसिंह का देहान्त वि० सं० १५६१ (ई० स० १५३४) में मानना भी निर्मूल ही है, क्योंकि उसके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य के समय बहादुरशाह के सेनापति तातारखां ने ता० ५ रज्जब हि० स० ६३६ अर्थात् वि० सं० १५८६ माघ सुदि ६ को चित्तोड़ के नीचे

विक्रमादित्य (विक्रमाजीत)

महाराणा रत्नसिंह के निस्संतान होने से उसका छोटा भाई विक्रमादित्य[1] रणथंभोर से आकर वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। शासन करने के लिये वह तो बिलकुल अयोग्य था। अपने ख़िदमतगारों के अतिरिक्त उसने दरबार में सात हज़ार पहलवानों को रख लिया, जिनके बल पर उसको अधिक विश्वास था और अपने छिछोरेपन के कारण वह सरदारों की दिल्लगी उड़ाया करता था, जिससे वे अप्रसन्न होकर अपने-अपने ठिकानों में चले गये और राज्यव्यवस्था बहुत बिगड़ गई।

बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई

मालवे पर अधिकार करने से गुजरात के सुलतान की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। मेवाड़ की यह अवस्था देखकर उसने चित्तोड़ पर हमला करने का विचार किया। सलहदी के मुसलमान हो जाने के पीछे जब बहादुरशाह ने रायसेन के किले—जो उसके भाई लखमनसेन (लक्ष्मणसिंह) की रक्षा में था—को घेरा, उस समय सलहदी का पुत्र भूपतराय महाराणा से मदद लेने को गया, जिसपर वह उसके साथ ४०-५० हज़ार सवार तथा बहुतसे पैदल आदि सहित उसकी सहायतार्थ चला[2]। इसपर बहादुरशाह ने हि० स० ६३६ (वि० सं० १५८६=ई० स० १५३२) में मुहम्मदख़ां आसीरी और इमादुल्मुल्क को मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजा। चालीस हज़ार सवार लेकर विक्रमादित्य भी उसकी तरफ़ बढ़ा। सुलतान बहादुर को जब राणा की इस बड़ी सेना का पता लगा, तो वह भी अख़्तियारख़ां को

के दो दरवाज़े विजय कर लिये थे, ऐसा मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३७०)। महाराणा विक्रमादित्य का वि० सं० १५८८ वैशाख का एक ताम्रपत्र मिल चुका है (वीरविनोद, भाग २, पृ० २५), उससे भी वि० सं० १५८८ से पूर्व उसका देहान्त होना निश्चित है। बड़वे-भाटों की ख्यातों तथा अमरकाव्य में इस घटना का संवत् १५८७ दिया है, जो कार्त्तिकादि होने से चैत्रादि १५८८ होता है।

(१) देखो पृ० ६७२-७३।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३६०।

रायसेन पर आक्रमण करने के लिये छोड़कर अपनी सेना हताश न हो जाय इस विचार से २४ घंटों में ७० कोस की सफ़र कर अपनी सेना से स्वयं आ मिला[1]। अपने को लड़ने में असमर्थ देखकर राणा चित्तोड़ लौट गया; इसपर सुलतान भी पहले रायसेन को और पीछे चित्तोड़ को लेने का विचार कर मालवे को लौट गया[2]।

रायसेन को जीतने के बाद बहादुरशाह ने बड़ी भारी तैयारी कर हि० स० ६३६ (वि० सं० १५८६=ई० स० १५३२) में मुहम्मदखां आसीरी को चित्तोड़ पर हमला करने के लिये भेजा और खुदावन्दखां को भी, जो उस समय मांडू में था, मुहम्मदखां आसीरी से मिल जाने के लिये लिखा। ता० १७ रबिउस्सानी हि० स० ६३६ (मार्गशीर्ष वदि ४ वि० सं० १५८६=१६ नवम्बर ई० स० १५३२) को सुलतान स्वयं सेना लेकर मुहम्मदाबाद से चला और तीन दिन में मांडू जा पहुंचा। मुहम्मदखां और खुदावन्दखां जब मन्दसोर में पहुंचे, तब राणा ने संधि करने के लिये उनके पास अपने वकील भेजे। वकीलों ने उनसे संधि की बातचीत की और कहा कि राणा मालवे का वह प्रदेश, जो उसके पास है, सुलतान को दे देगा और उसे कर भी दिया करेगा[3]। इन्हीं दिनों महाराणा के बुरे बर्ताव से अप्रसन्न होकर उसके सरदार नरसिंहदेव (महाराणा सांगा का भतीजा) और मेदिनीराय (चन्देरी का) आदि बहादुरशाह से जा मिले और उसे वे महाराणा की सेना का भेद बताते रहते थे[4]। सुलतान ने संधि का प्रस्ताव अस्वीकार कर अलाउद्दीन के पुत्र तातारखां को भी चित्तोड़ पर भेजा, जो ता० ५ रज्जब हि० स० ६३६ (माघ सुदि ६ वि० सं० १५८६=३१ जनवरी ई० स० १५३३) को वहां जा पहुंचा और उसके नीचे के दो दरवाज़ों पर अधिकार कर लिया। तीन दिन बाद मुहम्मदशाह और खुदावन्दखां भी तोपखाने के साथ वहां पहुंच गये। इसके बाद सुलतान भी कुछ सवारों के साथ मांडू से चलकर वहां जा पहुंचा। दूसरे ही दिन उसने चित्तोड़ पर आक्रमण किया और

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३६१-६२।

(२) वही; पृ० ३६२-६३।

(३) वही; पृ० ३६६-७०।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० २७।

अलफ़ख़ां को ३०००० सवारों के साथ लाखोटा दरवाज़े (बारी) पर, तातारख़ां, मेदिनीराय और कुछ अफ़ग़ान सरदारों को हनुमान पोल पर, मल्लूख़ां और सिकन्दरख़ां को मालवे की फ़ौज के साथ सफ़ेद बुर्ज़ (धोली बुर्ज़) पर और भूपतराय तथा अलपख़ां आदि को दूसरे मोर्चे पर तैनात कर बड़ी तेज़ी से हमला किया[1]। 'तारीख़े बहादुरशाही' का कर्ता लिखता है कि इस समय सुलतान के पास इतनी सेना थी कि वह चित्तोड़ जैसे चार क़िलों को घेर सकता था[2]। इधर राणी कर्मवती ने बादशाह हुमायूं से सहायता मिलने की आशा पर अपना वकील उसके पास भेजा, परन्तु उसने सहायता न दी।

रूमीख़ां ने, जो सुलतान का योग्य सेनापति था, बड़ी चतुरता दिखाई। क़िले की दीवारों को तोपों से उड़ा देने का यत्न किया गया, जिससे भयभीत होकर राणा की माता (कर्मवती) ने सन्धि करने के लिये वकील भेजकर सुलतान से कहलाया कि महमूद ख़िलजी से लिये हुए मालवे के ज़िले लौटा दिये जावेंगे और महमूद का वह जड़ाऊ मुकुट तथा सोने की कमरपेटी भी दे दी जायगी; इनके अतिरिक्त १० हाथी, १०० घोड़े और नक़द भी देने को कहा। सुलतान ने इस संधि को स्वीकार कर लिया और ता० २७ शाबान हि० स० ६३६ (चैत्र वदि १४ वि० सं० १५८६=ता० २४ मार्च ई० स० १५३३) को सब चीज़ें लेकर वह चित्तोड़ से लौट गया[3]।

---

(१) बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ० ३७०-७१।

(२) वही, पृ० ३७१।

(३) वही, पृ० ३७१-७२।

मुहणोत नैणसी से पाया जाता है कि बहादुरशाह से जो संधि हुई, उसमें महाराणा ने उदयसिंह को सुलतान की सेवा में भेजना स्वीकार किया था, जिससे सुलतान उसे अपने साथ ले गया। सुलतान के कोई शाहज़ादा न होने से वज़ीरों ने अर्ज़ की कि यदि आप किसी भाई-भतीजे को गोद बिठा लें, तो अच्छा होगा। सुलतान ने कहा, राणा का भाई (उदयसिंह) ठीक है, वह बड़े घराने का है, मुसलमान बनाकर वह गोद रख लिया जायगा। उदयसिंह के राजपूतों ने जब यह बात सुनी तो वे उसको वहां से ले भागे। दूसरे दिन यह बात सुनते ही बादशाह ने दूसरी बार चित्तोड़ को आ घेरा (ख्यात, पत्र ११, पृ० २)। यह कथन मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि इसका उल्लेख मिराते अहमदी, मिराते सिकन्दरी, फ़िरिश्ता आदि फ़ारसी तवारीख़ों में कहीं नहीं मिलता, और न वह सुलतान की दूसरी चढ़ाई का कारण माना जा सकता है।

बहादुरशाह की उक्त चढ़ाई से भी महाराणा का चाल-चलन कुछ न सुधरा और सरदारों के साथ उसका बर्ताव पहले का-सा ही बना रहा, जिससे कुछ और सरदार भी बहादुरशाह से जा मिले और उसे चित्तोड़ ले लेने की सलाह देने लगे।

बहादुरशाह की चित्तोड़ पर दूसरी चढ़ाई

मुहम्मदज़मां के विद्रोह करने पर हुमायूं ने उसे कैद कर बयाने के किले में भेज दिया, जहां से वह एक जाली फ़रमान के ज़रिये से छूटकर सुलतान बहादुरशाह के पास जा रहा। हुमायूं ने उसको गुजरात से निकाल देने या अपने सुपुर्द करने को लिखा, परन्तु उसने उसपर कुछ ध्यान न दिया। इस बात पर उन दोनों में अनबन होने पर सुलतान ने तातारखां को ४०००० सेना के साथ हुमायूं पर आक्रमण करने को भेज दिया और वह बुरी तरह से हारकर लौटा; तब हुमायूं ने सुलतान को नष्ट करने का विचार किया[1]। हुमायूं से शत्रुता होने के कारण बहादुरशाह भी चित्तोड़ जैसे सुदृढ़ दुर्ग को अधिकार में करना चाहता था। इसलिये वह मांडू से चित्तोड़ को लेने के लिये बढ़ा और क़िले के घेरे का प्रबन्ध रूमीखां के सुपुर्द किया तथा क़िला फ़तह होने पर उसे वहां का हाकिम बनाने का वचन दिया[2]।

उधर हुमायूं भी बहादुरशाह से लड़ने के लिये चित्तोड़ की तरफ़ बढ़ा और ग्वालियर आ पहुंचा, जिसकी ख़बर पाते ही सुलतान ने उसको इस आशय का पत्र लिखा कि मैं इस समय जिहाद (धर्मयुद्ध) पर हूं, अगर तुम हिन्दुओं की सहायता करोगे, तो खुदा के सामने क्या जवाब दोगे? यह पत्र पढ़कर हुमायूं ग्वालियर में ही ठहर गया[3] और चित्तोड़ के युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करता रहा।

बहादुरशाह के इस आक्रमण के लिये चित्तोड़ के राजपूत तैयार न थे, क्योंकि कुछ सरदार तो बहादुरशाह से मिल गये थे और शेष सब महाराणा के बुरे बर्ताव के कारण अपने अपने ठिकानों में जा रहे थे। बहादुरशाह की

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० १२४-२५।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३८१।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० १२६।

फ़िरिश्ता ने हुमायूं का सारंगपुर तक आना लिखा है (जि० ४, पृ० १२६), परन्तु मिराते सिकन्दरी में उसका ग्वालियर में ही ठहर जाना बतलाया है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३८१)।

दूसरी चढ़ाई होने वाली है, यह खबर पाते ही कर्मवती ने सब सरदारों को निम्न आशय के पत्र लिखे—"अब तक तो चित्तोड़ राजपूतों के हाथ में रहा, पर अब उनके हाथ से निकलने का समय आ गया है। मैं क़िला तुम्हें सौंपती हूं, चाहे तुम रखो चाहे शत्रु को दे दो। मान लो तुम्हारा स्वामी अयोग्य ही है; तो भी जो राज्य वंशपरंपरा से तुम्हारा है, वह शत्रु के हाथ में चले जाने से तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी[1]"। हाड़ी कर्मवती का यह पत्र पाते ही सरदारों में, जो राणा के बर्ताव से उदासीन हो रहे थे, देशप्रेम की लहर उमड़ उठी और चित्तोड़ की रक्षार्थ मरने का संकल्प कर वे कर्मवती के पास उपस्थित हो गये। देवलिये का रावत बाघसिंह[2], साईदास रत्नसिंहोत (चूंडावत), हाड़ा अर्जुन,[3] रावत सत्ता, सोनगरा माला, डोडिया भाण, सोलंकी भैरवदास, झाला सिंहा, झाला सज्जा, रावत नरबद आदि सरदारों ने मिलकर सोचा कि बहादुरशाह के पास सेना बहुत अधिक है और हमारे पास क़िले में लड़ाई का या खाने पीने का सामान इतना भी नहीं है कि दो-तीन महीने तक चल सके। इसलिये महाराणा विक्रमादित्य को तो उदयसिंह सहित बूंदी भेज दिया जाय और युद्ध समय तक देवलिये के रावत बाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि बनाया जाय। ऐसा ही किया गया। बाघसिंह सरदारों से यह कहकर—कि आपने मुझे महाराणा का प्रतिनिधि बनाया है, इसलिये मैं क़िले के बाहरी दरवाज़े पर रहूंगा—भैरव पोल पर जा खड़ा हुआ और उसके भीतर सोलंकी भैरवदास को हनुमान पोल पर, झाला राजराणा सज्जा और उसके भतीजे राजराणा सिंहा को गणेश पोल पर, डोडिये भाण और अन्य राजपूत सरदारों को इसी तरह सब जगहों, दरवाज़ों, परकोटे और कोट पर खड़ाकर लड़ाई शुरू कर दी, परन्तु शत्रु का बल अधिक होने, और उसके पास गोला-बारूद तथा यूरोपियन (पोर्चुगीज़) अफ़सर होने से वे उसको हटा न सके। इसी समय बीकाखोह की तरफ़ से सुरंग के द्वारा क़िले की पैंतालीस हाथ दीवार उड़ जाने से हाड़ा अर्जुन अपने

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २६।

(२) देवलिये (प्रतापगढ़) का रावत बाघसिंह दीवाण (महाराणा) का प्रतिनिधि बना, जिससे उसके वंशज अब तक दीवाण (देवलिये दीवाण) कहलाते हैं।

(३) हाड़ा अर्जुन हाड़ा नरबद का पुत्र था और बूंदी के राव सुलतान के बालक होने से उसकी सेना का मुखिया बनकर आया था।

साथियों सहित मारा गया। इस स्थान पर बहुतसे गुजरातियों ने हमला किया, परन्तु राजपूतों ने भी उनको बड़ी बहादुरी से रोका। बहादुरशाह ने तोपों को आगे कर पाडलपोल, सूरजपोल और लाखोटा बारी की तरफ़ हमला किया, तब राजपूतों ने भी दुर्ग-द्वार खोल दिये और बड़ी वीरता से वे गुजराती सेना पर टूट पड़े। देवलिया प्रतापगढ़ के रावत बाघसिंह और रावत नरबद पाडल-पोल पर, देसूरी का सोलंकी भैरवदास भैरवपोल पर तथा देलवाड़े का राजराणा सज्जा व सादड़ी का राजराणा सिंहा हनुमान पोल पर, इसी तरह दूसरे स्थानों पर रावत दूदा[1] रत्नसिंहोत (चूंडावत), रावत सत्ता रत्नसिंहोत (चूंडावत), सिसोदिया कम्मा रत्नसिंहोत (चूंडावत), सोनगरा माला (बालावत), रावत देवीदास (सूजावत), रावत बाघ (सूरचंदोत), सिसोदिया रावत नंगा[2] (सिंहावत), रावत करमा (चूंडावत), डोडिया भाण[3] आदि सरदार अपनी अपनी सेना सहित युद्ध में काम आये। इस लड़ाई में कई हज़ार[4] राजपूत मारे गये और बहुतसी स्त्रियों ने हाड़ी कर्मवती के साथ जौहर कर अपने सतीत्व-रक्षार्थ अग्नि में प्राणाहुति दे दी[5]। इस युद्ध में बहादुरशाह की विजय हुई और उसने क़िले पर अधिकार कर लिया[6]। यह युद्ध 'चित्तोड़ का दूसरा शाका' नाम से प्रसिद्ध है।

सुलतान ने, चित्तोड़ विजय होने पर, अपने तोपख़ाने के अध्यक्ष रूमीख़ां को उसका हाकिम बनाने के लिये वचन दिया था, परन्तु मंत्रियों और अमीरों के कहने से उसने अपना विचार बदल दिया, जिससे रूमीख़ां ने बहुत खिन्न होकर हुमायूं को एक गुप्त पत्र भेजकर कहलाया कि यदि आप इधर आवें तो शीघ्र विजय हो सकती है[7]।

विक्रमादित्य का चित्तोड़ पर फिर अधिकार

(१) दूदा, सत्ता और कम्मा, तीनों सुप्रसिद्ध वीरव्रती चूंडा के वंशज रावत रत्नसिंह के पुत्र थे।

(२) नंगा सुप्रसिद्ध चूंडा के पुत्र कांधल के बेटे सिंह का पुत्र था।

(३) इसके वंश में सरदारगढ के सरदार हैं।

(४) ख्यातों आदि में बत्तीस हज़ार राजपूतों का लड़ाई में और तेरह हज़ार स्त्रियों का जौहर में प्राण देना लिखा है, जो अतिशयोक्ति ही है।

(५) वीरविनोद; भा० २, पृ० ३१।

(६) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८३। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२६।

(७) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८३-८४।

इस पत्र को पाकर हुमायूं बहादुरशाह की तरफ़ चला, जिसकी ख़बर सुनते ही सुलतान भी थोड़ी-सी सेना चित्तोड़ में रखकर हुमायूं से लड़ने को मन्दसोर[1] गया, जहां हुमायूं भी आ पहुंचा। सुलतान ने रूमीख़ां से युद्ध के विषय में सलाह की। रूमीख़ां ने, जो गुप्त रूप से हुमायूं से मिला हुआ था, युद्ध के लिये ऐसी शैली बताई, जिससे सुलतान की सेना अनभिज्ञ थी, उसी से सुलतान कुछ न कर सका। दो मास तक वहां पड़ा रहने और थोड़ा बहुत लड़ने के बाद ता० २० रमज़ान हि० स० ९४१ (वैशाख वदि ७ वि० सं० १५९२= २५ मार्च ई० स० १५३५) को सुलतान कुछ साथियों सहित घोड़े पर सवार होकर मांडू को भाग गया[2]। हुमायूं ने उसका पीछा किया, जिससे वह मांडू से चांपानेर और खंभात होता हुआ दीव के टापू में पुर्तगालवालों के पास गया, जहां से लौटते समय समुद्र में मारा गया[3]। इस प्रकार शेख़ जीऊ की 'तेरे नाश के साथ ही चित्तोड़ का नाश होगा,' यह भविष्य-वाणी पूरी हुई।

इधर बहादुरशाह के हारने के समाचार सुनकर चित्तोड़ में उसकी रखी हुई सेना भी भागने लगी। ऐसा सुअवसर देखकर मेवाड़ के सरदारों ने पांच-सात हज़ार सेना एकत्र कर चित्तोड़ पर हमला किया, जिससे सुलतान की रही-सही फ़ौज भी भाग निकली और अधिक रक्तपात बिना मेवाड़वालों का क़िले पर अधिकार हो गया; फिर विक्रमादित्य और उदयसिंह को सरदार बूंदी से चित्तोड़ ले आये।

महाराणा विक्रमादित्य के तांबे के दो सिक्के हमको मिले हैं, जिनकी एक तरफ़ 'राणा विक्रमादित्य' लेख और संवत् के कुछ अंक हैं, दूसरी तरफ़ कुछ चिह्नों के साथ फ़ारसी अक्षरों में 'सुल' शब्द पढ़ा जाता है, जो संभवतः सुलतान का सूचक हो। ये सिक्के महाराणा कुंभा के सिक्कों की शैली के हैं[4]।

विक्रमादित्य के सिक्के और ताम्रपत्र

महाराणा विक्रमादित्य का ताम्रपत्र वि० सं० १५८९ वैशाख सुदि ११ को

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२६।

(२) बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३८४ ८६।

(३) वही, पृ० ३८६–९७।

(४) डब्ल्यू. डब्ल्यू. वेब; दी करंसीज़ ऑफ़ राजपूताना; पृ० ७।

मिला है, जिसमें पुरोहित जानाशंकर को जाल्या नाम का गांव दान करने का उल्लेख है[1]।

इतनी तकलीफ़ उठाने पर भी महाराणा अपनी बाल्यावस्था एवं बुरी संगति के कारण अपना चालचलन सुधार न सका और सरदारों के साथ उसका व्यवहार पूर्ववत् ही बना रहा, जिससे वे अपने अपने ठिकानों में चले गये; केवल कुछ स्वार्थी लोग ही उसके पास रहे। ऐसी दशा देखकर महाराणा रायमल के सुप्रसिद्ध कुंवर पृथ्वीराज का अनौरस (पासवानिया) पुत्र वणवीर चित्तोड़ में आया और महाराणा के प्रीतिपात्रों से मिलकर उसका मुसाहिब बन गया। वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में एक दिन, रात के समय उसने महाराणा को, जो उस समय १९ वर्ष का था, अपनी तलवार से मार डाला[2] और निष्कंटक राज्य करने की इच्छा से उदयसिंह का भी वध करना चाहा। महलों में कोलाहल होने पर जब उसकी स्वामिभक्त धाय पन्ना को महाराणा के मारे जाने का हाल मालूम हुआ, तब उस ने उदयसिंह को बाहर निकाल दिया और उसके पलंग पर उसी अवस्था के अपने पुत्र को सुला दिया[3]। वणवीर ने उस स्थान पर जाकर पन्ना से पूछा, उदयसिंह कहां है? उसने पलंग की तरफ़ इशारा किया, जिसपर उसने तलवार से उसका काम तमाम कर दिया। अपने पुत्र के मारे जाने पर उदयसिंह को लेकर पन्ना महलों से निकल गई। दूसरे ही दिन वणवीर मेवाड़ का स्वामी बनकर राज्य करने लगा।

विक्रमादित्य का मारा जाना

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ५५।

(२) अमरकाव्य में, जो महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय का बना हुआ है, विक्रमादित्य के मारे जाने का संवत् १५९३ दिया है (वीरविनोद, भाग २, पृ० १५१), जो विश्वास के योग्य है, क्योंकि वह काव्य इस घटना से अनुमान ७५ वर्ष पीछे का बना हुआ है।

(३) कर्नल टॉड ने लिखा है कि इस समय उदयसिंह की अवस्था छः वर्ष की थी, जिससे उसकी धाय पन्ना ने उसे एक फल के टोकरे में रखकर बारी जाति के एक नौकर द्वारा क़िले से बाहर भिजवा दिया (टॉ; रा, जि० १, पृ० ३६७-६८), जो स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उदयसिंह का जन्म वि० सं० १५७८ भाद्रपद सुदि १२ को हुआ था (प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह। नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ११५), अतएव वह उसके पिता सांगा के देहान्त-समय ही छः वर्ष का हो चुका था और इस समय उसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी।

(वणवीर)

चित्तोड़ का राज्य मिल जाने से वणवीर का घमंड बहुत बढ़ गया और सरदारों पर वह अपनी धाक जमाने लगा। उसने उन सरदारों पर, जो उसके अकुलीन होने के कारण उससे घृणा करते थे, सख़्ती करना शुरू किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये और जब उनको उदयसिंह के जीवित रहने का समाचार मिल गया, तो वे उसको राज्यच्युत करने के प्रयत्न में लगे।

एक दिन भोजन करते समय उसने रावत खान (कोठारियावालों के पूर्वज) को अपनी थाली में से कुछ जूठा भोजन देकर कहा कि इसका स्वाद अच्छा है, तुम भी खाकर देखो। उसने अपनी पत्तल पर उस पदार्थ के रखते ही खाना छोड़ दिया। वणवीर के यह पूछने पर कि भोजन क्यों नहीं करते हो, उसने जवाब दिया कि मैंने तो कर लिया। इसपर उसने कहा कि यह तो तुम्हारा बहाना है, तुम मुझे अकुलीन जानकर मुझ से घृणा करते हो। रावत ने उत्तर दिया कि मैंने तो ऐसा नहीं कहा, परंतु आप ऐसा कहते हैं, तो ठीक ही है। यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ और सीधा कुम्भलगढ़ चला गया, जहां उदयसिंह पहुंच गया था[1]। उसने बहुतसे सरदारों को उदयसिंह के पक्ष में कर लिया और अन्त में वणवीर[2] को राज्य छोड़कर भागना पड़ा, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

उदयसिंह (दूसरा)

उदयसिंह को लेकर पन्ना देवलिये के रावत रायसिंह के पास पहुंची, जिसने

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२-६३।

(२) चित्तोड़ के राम पोल के दरवाज़े के बाहरी पार्श्व में वणवीर के समय का एक शिलालेख खुदा हुआ है, जो वि० सं० १५६३ फाल्गुन वदि २ का है। उसमें ब्राह्मण, चारण, साधु आदि से जो दाण (महसूल, चुंगी) लिया जाता था, उसको छोड़ने का उल्लेख है।

उसके समय के कुछ तांबे के सिक्के भी मिले हैं, जिनपर 'श्रीराणा वणवीर' लेख मिलता है और नीचे संवत् की शताब्दी का अंक १५ दीखता है। ये सिक्के भी भद्दे हैं (डब्ल्यू. डब्ल्यू. वेब, दी करंसीज़ ऑफ़ राजपूताना, पृ० ७)।

उदयसिंह का बहुत कुछ सत्कार किया, परन्तु वणवीर के डर से सवारी और रक्षा आदि का प्रबन्ध कर उसने उसे डूंगरपुर भेज दिया। वहां के रावल आसकरण ने भी वणवीर के डर से उसे आश्रय न दिया और घोड़ा व राह-खर्च देकर विदा किया, तो पन्ना उसे लेकर कुंभलमेर पहुंची। वहां का क़िलेदार आशा देपुरा (महाजन) सारा हाल सुनकर सोच-विचार में पड़ गया और जब उसने उदयसिंह तथा पन्ना का हाल अपनी माता को सुनाया, तो उसने सम्मति दी कि तुम्हारे लिये यह बहुत अच्छा अवसर है। महाराणा सांगा ने तुम्हें उच्च पद पर पहुंचाया है, अतएव तुम भी उनके पुत्र की सहायता कर उस उपकार का बदला दो। माता के यह वचन सुनकर उसने उनको अपने पास रख लिया। यह बात थोड़े ही दिनों में सब जगह फैल गई, जिसपर वणवीर ने यह प्रसिद्ध किया कि उदयसिंह तो मेरे हाथ से मारा गया है और लोग जिसको उदयसिंह कहते हैं, वह तो बनावटी है, परन्तु उसका कथन किसी ने न माना, क्योंकि उस समय वह बालक नहीं था और उसके पन्द्रह वर्ष का होने के कारण कई सरदार तथा उसकी ननिहाल-(बूंदी)वाले उसे भली भांति पहचानते थे। कोठारिये के रावत खान ने कुंभलगढ़ पहुंचकर रावत सांईदास[1] (चूंडावत), केलवे से जग्गा[2], बागोर से रावत सांगा[3] आदि सरदारों को बुलाया। इन सरदारों ने उदयसिंह को मेवाड़ का स्वामी माना और राजगद्दी पर बिठलाकर नज़राना किया। इस घटना का वि० सं० १५९४ (ई० स० १५३७) में होना माना जाता है[4]।

उदयसिंह का राज्य पाना

सरदारों ने मारवाड़ से पाली के सोनगरे अखैराज (रणधीरोत) को बुलाकर उसकी पुत्री का विवाह उदयसिंह से कर देने को कहा। उसने उत्तर दिया कि विवाह करना मेरे लिये सब प्रकार से इष्ट ही है, परन्तु वणवीर ने वास्तविक उदयसिंह का मारा जाना और इनका कृत्रिम होना प्रसिद्ध कर रक्खा है; यदि आप सब सरदार इनका जूठा खा लें, तो मैं अपनी पुत्री का विवाह इनसे कर दूं। अखैराज

(१) यह रावत चूंडा का मुख्य वंशधर और सलूंबरवालों का पूर्वज था।

(२) यह रावत चूंडा के पुत्र कांधल का पौत्र, आमेटवालों का पूर्वज और सुप्रसिद्ध पत्ता का पिता था।

(३) उपर्युक्त जग्गा का भाई और देवगढ़वालों का मूल पुरुष।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६०–६३।

का संदेह दूर करने के लिये सब सरदारों ने उसका जूठा भोजन खाया[1]। इस-पर अखैराज ने भी उसके साथ अपनी बेटी का विवाह कर दिया। फिर उदयसिंह ने शेष सरदारों को परवाने भेजकर बुलाया। परवाने पाते ही बहुतसे सरदार और आसपास के राजा उसकी सहायतार्थ आ पहुंचे[2]। उधर मारवाड़ की तरफ़ से उसका श्वशुर अखैराज सोनगरा, कूंपा महराजोत आदि राठोड़ सरदारों को भी अपने साथ ले आया[3]। इस प्रकार बड़ी सेना एकत्र होने पर उदयसिंह कुंभलगढ़ से चित्तोड़ की तरफ़ चला।

वणवीर ने भी उदयसिंह की इस चढ़ाई का हाल सुनकर अपनी सेना तैयार की और कुंवरसी तंवर को उदयसिंह का मुकाबला करने के लिये भेजा। माहोली (मावली) गांव के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, जिसमें उदयसिंह की विजय हुई और कुंवरसी तंवर बहुत से सैनिकों सहित मारा गया। वहां से आगे बढ़कर उसने चित्तोड़ को जा घेरा और कुछ दिनों तक लड़ाई जारी रखने के बाद चित्तोड़ भी ले लिया। कोई कहते हैं कि वणवीर मारा गया और कुछ लोग कहते हैं कि वह भाग गया। इस प्रकार वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में[4] उदयसिंह अपने सारे पैतृक-राज्य का स्वामी बना।[5]

झाला सज्जा का पुत्र जैतसिंह किसी कारण से जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया, जिसने उसे खैरवे का पट्टा दिया। जैतसिंह ने अपनी पुत्री

(१) यह रिवाज़ तब से प्रचलित हुआ और अब तक विद्यमान है।

(२) वीरविनोद, भाग २, पृ० ६३।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र ५, पृ० १।

मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि उदयसिंह ने दूसरी शादी राठोड़ कूंपा (महराजोत) की लड़की से की थी, जिससे वह भी १५००० राठोड़ों के साथ आ मिला (महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० ८४), परन्तु नैणसी अखैराज का कूंपा को लाना लिखता है और शादी का उल्लेख नहीं करता। मेवाड़ के बड़वे की ख्यात में भी जहां उदयसिंह की राणियों की नामावली दी है, वहां कूंपा की पुत्री का नाम नहीं है।

(४) वीरविनोद, भाग २, पृ० ६३–६४। नैणसी की ख्यात, पत्र ५, पृ० १।

(५) भिन्न भिन्न पुस्तकों में उदयसिंह के चित्तोड़ लेने और वणवीर के भागने के संवत् भिन्न भिन्न मिलते हैं। अमरकाव्य में इस घटना का वि० स० १५९७ (ई० स० १५४०) में होना लिखा है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ६४, टि० २), जो विश्वास के योग्य है। यही संवत् कर्नल टॉड और मुंशी देवीप्रसाद ने भी माना है।

मालदेव से महाराणा का विरोध

स्वरूपदेवी का विवाह मालदेव से कर दिया। एक दिन मालदेव अपने सुसराल (खैरवे) गया, जहां स्वरूपदेवी की छोटी बहिन को अत्यन्त रूपवती देखकर उसने उसके साथ भी विवाह करने के लिये जैतसिंह से आग्रह किया; परन्तु जब उसने साफ़ इनकार कर दिया, तब मालदेव ने कहा कि मैं बलात् विवाह कर लूंगा। इस प्रकार अधिक दबाने पर उसने कहा कि मैं अभी तो विवाह नहीं कर सकता, दो महीने बाद कर दूंगा। राव मालदेव के जोधपुर चले जाने पर उसने महाराणा उदयसिंह के पास एक पत्र भेजकर अपनी पुत्री से विवाह करने के लिये कहलाया। महाराणा के इसे स्वीकार करने पर जैतसिंह अपनी छोटी लड़की और घरवालों को लेकर कुंभलगढ़ की तरफ़ गुढ़ा नाम के गांव में आ रहा। स्वरूपदेवी ने, जो उस समय खैरवे में थी, अपनी बहिन को विदा करते समय दहेज में गहने देने चाहे, परन्तु जल्दी में गहनों के डिब्बे के बदले राठाड़ों की कुलदेवी 'नागणेची' की मूर्तिवाला डिब्बा दे दिया। उधर से महाराणा भी कुंभलगढ़ से उसी गांव में पहुंचा और उससे विवाह कर लिया[1]। जब वह डिब्बा खोला गया, तो उसमें नागणेची की मूर्ति निकली, जिसको महाराणा ने पूजन में रखा[2] और तभी से

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव मालदेव की सगाई की हुई झाला सरदार की कन्या को महाराणा कुंभा ले आया था (टॉ, रा. जि० १, पृ० ३३८) जो विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मालदेव का जन्म महाराणा कुंभा के देहान्त से ४३ वर्ष पीछे हुआ था और झाला अज्जा व सज्जा महाराणा रायमल के समय वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में मेवाड़ में आये थे (देखो पृ० ५५३)। ऐसी दशा में कुंभा का मालदेव की सगाई की हुई सज्जा के पुत्र जैतसिंह की पुत्री को लाना कैसे सम्भव हो सकता है? झाली के महल कुंभलगढ़ के कटारगढ़ नामक सर्वोच्च स्थान पर कुंवर पृथ्वीराज के महलों के पास बने हुए थे, जो 'झाली का मालिया' नाम से प्रसिद्ध थे। कटारगढ़ पर के बहुधा सब पुराने महल तुड़वाकर वर्तमान महाराणा साहब ने उनके स्थान पर नये महल बनवाए हैं।

इस घटना का मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में होना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो महाराणा उदयसिंह मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिये ही लड़ रहा था, अतएव यह घटना उक्त संवत् से कुछ पीछे की होनी चाहिये।

(२) वीरविनोद, भाग २, पृ० ६७-६८। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० १०८-९।

उसको साल में दो बार (भाद्रपद सुदि ७ और माघ सुदि ७) विशेष रूप से पूजने का रिवाज़ चला आता है[1]।

इस बात पर क्रुद्ध होकर राव मालदेव ने कुंभलमेर पर आक्रमण किया। महाराणा ने भी मुकाबला करने के लिये सेना भेजी। युद्ध में दोनों तरफ़ से कई राजपूतों के मारे जाने के बाद मालदेव की सेना भाग निकली[2]।

महाराणा उदयसिंह और शेरशाह सूर

अब्बासखां सरवानी अपनी पुस्तक 'तारीख़े शेरशाही' में लिखता है—"जब हि० स० ६५० (वि० सं० १६००=ई० स० १५४३) में राव मालदेव के लड़ाई से भागने और उसके सरदार जैता, कूंपा आदि के सुलतान से लड़कर मारे जाने के बाद शेरशाह ने अजमेर ले लिया, तब उसके सरदारों ने कहा कि चातुर्मास निकट आगया है, इसलिये अब लौट जाना चाहिये। इसपर उसने उत्तर दिया कि मैं चातुर्मास्य ऐसी जगह बिताऊंगा, जहां से कुछ काम किया जासके। फिर वह चित्तोड़ की तरफ़ बढ़ा। जब वह चित्तोड़ से १२ कोस दूर था, उस समय राजा (राणा) ने क़िले की कुंजियां उसके पास भेज दी, जिससे वह चित्तोड़ में आया और ख़वासख़ां के छोटे भाई मियां अहमद सरवानी को वहां छोड़कर स्वयं लौट गया"[3]।

यह समय उदयसिंह के राज्य के प्रारंभ काल का ही था, जिससे संभव है कि उदयसिंह ने शेरशाह से लड़ना अनुचित समझ उससे सुलह कर उसे लौटा दिया हो। यदि चित्तोड़ का किला उसने ले लिया होता तो पीछा उदयसिंह के अधिकार में कैसे आया, इसका उल्लेख फ़ारसी तवारीखों या ख्यातों आदि में मिलना चाहिये था, परन्तु वैसा नहीं मिलता।

बूंदी का राव सुरताण अपने सरदारों आदि पर अत्याचार किया करता था, जिससे वे उससे अप्रसन्न रहते थे। बूंदी के लोगों की यह शिकायत सुनने पर

महाराणा का राव सुरजन को बूंदी का राज्य दिलाना

महाराणा ने बूंदी का राज्य हाड़ा सुरजन को, जो हाड़ा अर्जुन का पुत्र था और महाराणा के पास रहा करता था[4], देना निश्चय कर उसे सैन्य के साथ बूंदी पर भेजा। सुरताण

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ६८।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८। मारवाड़ की ख्यात, पृ० १०१।

(३) तारीख़े शेरशाही—इलियट, हिस्टी ऑफ़ इण्डिया, जि० ४, पृ० ४०६।

(४) मुहणोत नैणसी लिखता है—"हाड़ा सुरजन राणा का नौकर था; उसकी जागीर

वहां से भागकर महाराणा के सरदार रायमल खीची के पास जा रहा और सुर-जन बूंदी के राज्य का स्वामी हुआ। यह घटना वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में हुई[1]।

महाराणा उदयसिंह और हाजीखां पठान

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निकालने के लिये बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी (नासिरुल्मुल्क) को उसपर भेजा; उसके पहुंचने से पहले ही वह भागकर अजमेर चला गया[2]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिये पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा। हाजीखां ने महाराणा के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। इसपर महाराणा उसकी सहायतार्थ राव सुरजन, दुर्गा सिसोदिया[3], राव जयमल (मेड़तिये) को साथ लेकर अजमेर पहुंचा। तब सब राठोड़ों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे अच्छे सरदार पहले (शेरशाह आदि के साथ की लड़ाइयों में) मारे जा चुके है, यदि हम भी इस युद्ध में मारे गये, तो राव बहुत निर्बल हो जायगा। इस प्रकार उसे समझा-बुझाकर वे वापस ले गये[4]।

इस सहायता के बदले में महाराणा ने हाजीखां से रंगराय पातर (वेश्या), जो उसकी प्रेयसी थी, को मांगा। हाजीखां ने यह कहकर कि 'यह तो मेरी औरत है, इसे मैं कैसे दूं', उसे देने से इनकार किया। इसपर सरदारों ने महाराणा को उसे (वेश्या को) न मांगने के लिये समझाया, परंतु लम्पट राणा ने उनका

में १२ गाव थे। पीछे अजमेर में काम पड़ा, तब वह राणा की तरफ से लड़कर घायल हुआ था। फिर फूलिया खालसा किया जाकर बदनोर का पट्टा उसे दिया गया। इसी अवसर पर सुरताण के उपद्रव के समाचार पहुंचे, तब राणा ने सुरजन को बूंदी का राज-तिलक दिया और उसे बड़ा विश्वासपात्र जानकर रणथंभोर की किलेदारी भी सौंप दी" (ख्यात; पत्र २७, पृ० १)।

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ६९-७०।

(२) अकबरनामा—इलियट, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० ६, पृ० २१-२२।

(३) यह सिसोदियों की चन्द्रावत शाखा का रामपुरे का स्वामी और महाराणा उदयसिंह का सरदार था, जिसको बादशाह अकबर ने मेवाड़ का बल तोड़ने के लिये पीछे से अपनी सेवा में रख लिया था।

(४) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र १४, पृ० १।

कहना न माना और राव कल्याणमल[1] व जयमल (वीरमदेवोत) आदि को साथ लेकर उसपर चढ़ाई कर दी, जिससे हाजीखां ने मालदेव से मदद चाही। मालदेव का महाराणा से पहले से ही विरोध हो चुका था, इसलिये उसने राठोड़ देवीदास (जैतावत), जैतमाल (जैसावत) आदि के साथ १५०० सेना उसकी सहायतार्थ भेज दी। वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (ता० २४ जनवरी ई० स० १५५७) को हरमाड़ा (अजमेर ज़िले में) गांव के पास दोनों सेनाएं आ पहुंची। राव तेजसिंह और बालीसा[2] (बालेचा) सूजा ने कहा कि लड़ाई न की जाय, क्योंकि पांच हज़ार पठान और डेढ़ हज़ार राजपूतों को मारना कठिन है; परन्तु राणा ने उनकी बात न सुनी और युद्ध शुरू कर दिया। हाजीखां ने एक सेना तो आगे भेज दी और स्वयं एक हज़ार सवारों को लेकर एक पहाड़ी के पीछे जा छिपा। जब राणा की सेना शत्रु-सैन्य के बीच पहुंची, तब पीछे से हाजीखां ने भी उसपर हमला किया। हाजीखां का एक तीर राणा के लगा और उसकी फ़ौज ने पीठ दिखाई। राव तेजसिंह (डूंगरसिंहोत), बालीसा सूजा, डोडिया भीम, चूंडावत खीतर आदि सरदार राणा की तरफ़ से मारे गये[3]।

वि० सं० १६१६ चैत्र सुदि ७ गुरुवार (ता० १६ मार्च ई० स० १५५६) को ग्यारह घड़ी रात गये महाराणा के कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म हुआ[4]।

---

(१) बीकानेर का स्वामी। मारवाड़ की ख्यात में इस लड़ाई में उसका महाराणा के साथ रहना लिखा है। उसके पिता जैतसिंह को राव मालदेव ने मारा था, अतएव संभव है कि उसने इस लड़ाई में महाराणा का साथ दिया हो।

(२) बालेचा सूजा मेवाड़ से जाकर राव मालदेव की सेवा में रहा था। जब मालदेव ने झाली के मामले में कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, उस समय उसको भी साथ चलने को कहा, परंतु उसने अपनी मातृभूमि (मेवाड़) पर चढ़ने से इनकार किया और उसकी सेवा छोड़कर उसके गांव लूटता हुआ महाराणा के पास चला आया, तो उसने प्रसन्न होकर उसे दुगुनी जागीर दी। मालदेव ने बहुत क्रुद्ध होकर राठोड़ नगा (भारमलोत) को उसपर ५०० सवारों के साथ भेजा; उसने जाकर उसके चौपाए घेर लिये, तब सूजा ने भी सामना किया। इस लड़ाई में राठोड़ बाला, धन्ना और बीजा (भारमलोत) काम आये और सूजा ने अपने चौपाए छुड़ा लिये (मारवाड़ की ख्यात; पृ० १०६-१०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ७०)।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १४। मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ७५-७६।

(४) अमरसिंह की जन्मपत्री हमारे पासवाले प्रसिद्ध ज्योतिषी चण्डू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में विद्यमान है।

महाराणा का उदयपुर बसाना

इस अवसर पर चित्तोड़ से सवार होकर महाराणा एकलिंगजी के दर्शन को गया और वहां से शिकार के लिये आहाड़ गांव की तरफ़ चला। मार्ग में उसने देखा कि बेड़च नदी एक बड़े पहाड़ में से निकल कर मेवाड़ की तरफ़ मैदान में गई है। महाराणा ने अपने सरदारों और अहलकारों से सलाह की कि चित्तोड़ का किला एक अलग पहाड़ी पर होने से शत्रु घेरकर इसपर अधिकार कर सकता है और सामान की तंगी से क़िलेवालों को यह छोड़ना पड़ता है। यदि इन पहाड़ों में राजधानी बसाई जाय, तो रसद की कमी न रहेगी और क़िले की मज़बूती के साथ ही पहाड़ी लड़ाई करने का अवसर भी मिलेगा। सब सरदारों और अहलकारों को यह सलाह बहुत पसंद आई और महाराणा ने उसी समय से वर्तमान उदयपुर से कुछ उत्तर में महल तथा शहर बसाना शुरू किया, जिसके कुछ खंडहर 'मोती महल' नाम से विद्यमान हैं।

दूसरे दिन शिकार खेलते हुए महाराणा ने पीछोला तालाब के पासवाली पहाड़ी पर झाड़ी में बैठे हुए एक साधु को देखा। प्रणाम करने पर उसने कहा कि यदि यहां शहर बसाओगे तो वह तुम्हारे वंश के अधिकार से कभी न छूटेगा। महाराणा ने उसका कथन स्वीकार कर उसकी इच्छानुसार पहले का स्थान छोड़कर जहां वह साधु बैठा था, वहां एक महल की नींव अपने हाथ से डाली और अन्य महलों का बनना तथा शहर का बसना आरंभ हुआ। जिस महल की नींव महाराणा ने डाली थी, वह इस समय 'पानेड़ा' नाम से प्रसिद्ध है और वहीं मेवाड़ के राजाओं का राज्याभिषेक होता है। इसी संवत् में उदयसागर भी बनने लगा[1]।

मानसिंह देवड़े का महाराणा की सेवा में आना

सिरोही के स्वामी रायसिंह ने अपने अन्तिम समय सरदारों को बुलाकर कहा कि मेरा पुत्र उदयसिंह बालक है, इसलिये मेरे भाई दूदा देवड़ा को राज्यतिलक दे देना। रायसिंह के पीछे दूदा सिरोही का स्वामी हुआ। उसने भी अपने अन्तिम समय सरदारों से कहा कि राज्य का अधिकारी मेरा पुत्र मानसिंह नहीं, उदयसिंह है; इसलिये मेरे पीछे उसको गद्दी पर बिठाना और उदयसिंह से कहा कि

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ७२-७३।

यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मानसिंह को लोहियाणा गांव जागीर में देना। गद्दी पर बैठते ही उदयसिंह ने उसे लोहियाणा गांव दे दिया, परन्तु थोड़े दिनों पीछे उसने अपने चाचा का सब उपकार भूलकर उससे वह गांव छीन लिया, जिससे वह महाराणा उदयसिंह के पास चला आया। महाराणा ने उसे अठारह गांवो के साथ वरकाण बीजेवास का पट्टा देकर अपने पास रख लिया। इससे कुछ समय बाद वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) मे सिरोही का राव उदयसिंह शीतला से मर गया और उसका उत्तराधिकारी यही मानसिंह हुआ। वहां के राजपूत सरदारों ने इस भय से कि राव उदयसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर कहीं महाराणा उदयसिंह सिरोही पर अधिकार न कर ले, एक दूत को गुप्त रीति से भेजकर सारा वृत्तान्त मानसिंह को कहलाया तो महाराणा को सूचना दिये बिना ही वह भी पांच सवारो के साथ कुंभलगढ़ से सिरोही की ओर चला। इसकी सूचना मिलने पर महाराणा ने एक पुरोहित को जगमाल देवड़े के साथ मानसिंह के पास भेजकर कहलाया कि तुम हमारी आज्ञा बिना ही चले गये, इसलिये हम तुम्हारे चार परगने छीनते हैं। मानसिंह ने उस पुरोहित का आदर-सत्कार कर कहा कि महाराणा तो केवल चार परगनो के लिये ही फरमाते हैं, मैं तो सिरोही का राज्य नज़र करने को तैयार हूं। यह उत्तर सुनकर महाराणा प्रसन्न हुआ और उसके राज्य पर कुछ भी हस्तक्षेप न किया[1]।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई

अकबर से पूर्व तीन सौ से अधिक वर्षों तक मुसलमानों के भिन्न-भिन्न सात राजवंशों ने दिल्ली पर शासन किया, परन्तु उनमें से एक भी वंश १०० वर्ष तक राज्य न कर सका। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने यहां के राजपूत राजाओं को सहायक बनाने का यत्न नहीं किया और मुसलमानों के भरोसे ही वे अपना राज्य स्थिर करना चाहते थे। बादशाह अकबर यह अच्छी तरह जानता था कि भारतवर्ष में एकच्छत्र राज्य स्थापित करने के लिये राजपूत-नरेशों को अपना सहायक बनाना नितान्त आवश्यक है और जब अफ़गान भी मुग़लों के शत्रु बन रहे हैं तब राजपूतों की सहायता लिये विना मुग़ल-साम्राज्य की नींव सुदृढ़ नहीं हो

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २०७-१४। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ३२।

सकती। इसलिये उसने शनैः शनैः राजपूत राजाओं को अपने पक्ष में मिलाना चाहा और सबसे पहले आंबेर के राजा भारमल कछवाहे को अपना सेवक बनाकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

अकबर यह भी जानता था कि राजपूत नरेशों में सबसे प्रबल और सबका नेता चित्तोड़ का राणा है, इसलिये यदि उसको अपने अधीन कर लिया जाय तो अन्य सब राजपूत राजा भी मेरी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। उत्तर भारत पर शासन करने के लिये चित्तोड़ और रणथंभोर जैसे सुदृढ़ किलों पर अधिकार करना भी आवश्यक था। उन्हीं दिनों उसे महाराणा पर चढ़ाई करने का कारण भी मिल गया। बाज़बहादुर को, जो मालवे का स्वामी था और अकबर के डर से भाग गया था, महाराणा ने शरण दी[1]। इसी लिये उसने चित्तोड़ पर चढ़ाई करने का विचार किया। ता० २५ सफ़र हि० स० ९७५ (वि० सं० १६२४ आश्विन वदि १२=ता० ३१ अगस्त ई० स० १५६७) को मालवे जाते हुए अकबर ने बाड़ी स्थान पर डेरा डाला[2]। वहां से आगे चलकर वह धौलपुर में ठहरा, जहां राणा उदयसिंह का पुत्र शक्तिसिंह, जो अपने पिता से अप्रसन्न होकर उसे छोड़ आया था, बादशाह के पास उपस्थित हुआ। एक दिन अकबर ने हँसी में उसे कहा कि बड़े बड़े ज़मींदार (राजा) मेरे अधीन हो चुके हैं, केवल राणा उदयसिंह अब तक नहीं हुआ, अतएव उसपर मैं चढ़ाई करनेवाला हूं, तुम उसमें मेरी क्या सहायता करोगे? मेरे अकबर के पास आने से सब लोग यही समझेंगे कि मैं ही उसे अपने पिता के देश पर चढ़ा लाया हूं और इससे मेरी बड़ी बदनामी होगी, यह सोचकर शक्तिसिंह उसी रात को बिना सूचना दिये चित्तोड़

(१) विन्सेंट स्मिथ, अकबर दी ग्रेट मुग़ल, पृ० ८१–८२।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह को परास्त कर हुमायूं ने मालवे पर अधिकार कर लिया था। जब शेरशाह सूर ने हुमायूं का राज्य छीना तो मालवा भी उसके अधिकार में आ गया और शुजाअ़खां को वहां का हाकिम नियत किया। सूर वंश के निर्बल हो जाने पर शुजाअ़खां मालवे का स्वतन्त्र शासक बन गया। उसके मरने पर उसका पुत्र बाज़बहादुर (बायज़ीद) मालवे का स्वामी हुआ। वि० सं० १६१८ (ई० स० १५६२) में अकबर ने अब्दुल्लाहखां को उसपर भेजा, जिससे डरकर वह भागा और गुजरात आदि में गया, परन्तु अन्त में निराश होकर महाराणा उदयसिंह की शरण में आ रहा।

(२) अकबरनामे का एच् बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० २, पृ० ४४२।

भाग गया[1]। यह समाचार पाकर अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ और मालवे पर चढ़ाई करना स्थगित कर उसने चित्तोड़ को विजय करना निश्चय किया।

वह रबिउलअव्वल हि० स० ६७५ (वि० सं० १६२४ आश्विन=सितम्बर ई० स० १५६७) को चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ और सिवीसुपर (शिवपुर) तथा कोटा के किलों पर अधिकार करता हुआ गागरौन पहुंचा। आसफ़खां और वज़ीरखां को मांडलगढ़ पर, जो राणा के सुदृढ़ दुर्गों में से एक था और जिसका रक्षक वाल्वी (बल्लू या बालनोत) सोलंकी था, भेजा. उन दोनों ने उसे जीत लिया[2]। मालवे की चढ़ाई की व्यवस्था कर अकबर स्वयं सेना लेकर चित्तोड़ की ओर बढ़ा[3]।

इधर कुंवर शक्तिसिंह ने धौलपुर से चित्तोड़ आकर अकबर के चित्तोड़ पर आक्रमण करने के दृढ़ निश्चय की सूचना महाराणा को दी, इसपर सब सरदार बुलाये गये, तो जयमल[4] वीरमदेवोत, रावत साईदास चूंडावत, ईसरदास चौहान, राव बल्लू सोलंकी, डोडिया सांडा, राव संग्रामसिंह, रावत साहिबखान, रावत पत्ता, रावत नेतसी आदि सरदार उपस्थित हुए। उन्होंने महाराणा को यह सलाह दी कि गुजराती सुलतान से लड़ते लड़ते मेवाड़ कमज़ोर हो गया है और अकबर भी बड़ा बहादुर है, इसलिये आपको अपने परिवार सहित पहाड़ों की तरफ़ चला जाना चाहिये। इस सलाह के अनुसार महाराणा

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जिल्द २, पृ० ४४२-४३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ७३-७४।

(२) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० २, पृ० ४४३ ४४।

(३) वही, जि० २, पृ० ४६४।

कर्नल टॉड ने अकबर का चित्तोड़ पर दो बार आक्रमण करना लिखा है। पहली बार जब अकबर आया, तब महाराणा की उपपत्नी ने उसे भगा दिया। इसपर सरदारों ने अपना अपमान समझकर उसे मार डाला। चित्तोड़ की यह फूट देखकर अकबर दूसरी बार उसपर चढ़ आया (टॉ, रा; जि० १, पृ० ३७८-७९), परन्तु पहली चढ़ाई की बात कल्पित ही है।

(४) वीर जयमल राठोड़ वीरमदेव (मेड़तिये) के ११ पुत्रों में सब से बड़ा था। उसका जन्म वि० सं० १५६४ आश्विन सुदि ११ (ता० १७ सितम्बर ई० स० १५०७) को हुआ था। जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, परन्तु वह उससे फिर ले लिया गया था। अकबर ने वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में मिर्ज़ा शर्फुद्दीन को

राठोड़ जयमल और सिसोदिया पत्ता[1] को सेनाध्यक्ष नियत कर रावत नेतसी[2] आदि कुछ सरदारों सहित मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया और क़िले की रक्षार्थ ८००० राजपूत रहे[3]।

अकबर ने भी मांडलगढ़ से कूच कर ता० १९ रबीउस्सानी हि० स० ९७५ (मार्गशीर्ष वदि ६ वि० सं० १६२४=२३ अक्टूबर ई० स० १५६७) को क़िले के पास पहुंच कर डेरा डाला। अपने सेनापति बख्शीस को उसने घेरा डालने का काम सौंपा, जो एक महीने में समाप्त हुआ। इस अवसर में उसने आसफ़खां को रामपुरे के किले पर भेजा, जिसको उसने विजय कर लिया। राणा के कुंभलमेर और उदयपुर की तरफ़ जाने का समाचार सुनकर अकबर ने हुसेन कुलीखां को बड़ी सेना देकर उधर भेजा, परन्तु राणा का पता न लगने के कारण वह भी निराश होकर कुछ प्रदेश लूटता हुआ लौट आया[4]। चित्तोड़ पर अपना आक्रमण निष्फल होता देखकर अकबर ने सुरंग लगाने और साबात[5] बनाने का हुक्म दिया और जगह जगह मोर्चे रखकर तोपखाने से उनकी रक्षा की गई। लाखोटा दरवाज़े (बारी) के सामने अकबर स्वयं हसनखां, चग़ताईखां, राय पतरदास, इख़्तियारखां आदि अफ़सरों के साथ रहा, उसके मुकाबले में क़िले के भीतर राठोड़ जयमल रहा। यहां एक सुरंग खोदी गई। दूसरा मोर्चा क़िले से पूर्व की तरफ़ सूरज पोल दरवाज़े के सामने शुजातखां, राजा टोडरमल और कासिमखां की अध्यक्षता में तोपखाने सहित था, जिसके सामने रावत साईदास[6] (चूंडावत)

मेड़ता लेने के लिये भेजा। मिर्ज़ा ने किले का घेरा और सुरंग लगाना शुरू किया। एक दिन सुरंग से एक बुर्ज उड़ जाने के कारण शाही सेना क़िले में घुस गई। दिन भर लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ के बहुतसे आदमी हताहत हुए। फिर आपस में संधि होने पर दूसरे दिन जयमल ने क़िला छोड़ दिया, तो भी उसके सेनापति देवीदास ने संधि के विरुद्ध किले का सामान जला डाला और वह अपने ५०० राजपूतों के साथ मिर्ज़ा से लड़कर मारा गया। मेड़ते का किला छूटने पर जयमल सपरिवार महाराणा की सेवा में आ रहा था।

(१) वीर पत्ता प्रसिद्ध चूंडा के पुत्र कांधल का प्रपौत्र और आमेटवालों का पूर्वज था।

(२) कानोड़ वालों का पूर्वज।

(३) वीरविनोद; भा० २, पृ० ७४-७५; और ख्यात।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद जि० २, पृ० ४६४-६५।

(५) साबात के लिये देखो पृ० ६६८, टि० २।

(६) सलूंबरवालों का पूर्वज।

रहा। यहां से एक साबात पहाड़ी के बीच तक बनाई गई। तीसरे मोर्चे पर, जो क़िले के दक्षिण की तरफ़ चित्तोड़ी बुर्ज़ के सामने था, ख़्वाजा अब्दुल मजीद, आसफ़ख़ां आदि कई अफ़सरों सहित मुग़ल सेना खड़ी थी, जिसके मुकाबले में बल्लू सोलंकी आदि सरदार खड़े हुए थे[1]।

एक दिन दुर्ग के सब सरदारों ने मिलकर रावत साहिबखान चौहान[2] और डोडिये ठाकुर सांडा[3] को अकबर के पास भेजकर कहलाया कि हम वार्षिक कर दिया करेंगे और आपकी अधीनता स्वीकार करते हैं। कई मुसलमान अफ़सरों ने अकबर को यह संधि स्वीकार कर लेने के लिये कहा, परन्तु उसने राणा के स्वयं उपस्थित होने पर ही ज़ोर दिया[4]। संधि की बात के इस तरह बन्द हो जाने से राजपूत निराश नहीं हुए, किन्तु अदम्य उत्साह से युद्ध करने लगे। क़िले में कई चतुर तोपची थे, जो सुरंग खोदनेवालों और दूसरे मुसलमानों को नष्ट करते रहे। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि साबात की रक्षा में रहते हुए प्रतिदिन २०० आदमी मारे जाते थे। दिन दिन साबात आगे बढ़ाये जाते तथा सुरंगें खोदी जाती थीं। साबात बनने के समय भी राजपूत मौक़ा पाकर हमले करते रहे। तारीख़े अल्फ़ी से पाया जाता है कि "जब साबात बन रहे थे, उस समय राणा के सात-आठ हज़ार सवार और कई गोलंदाज़ों ने उनपर हमला किया। कारीगरों के बचाव के लिये गाय भैंस के मोटे चमड़े की छावन थी, तो भी वे इतने मरे कि ईंट-पत्थर की तरह लाशें चुनी गई"[5]। बादशाह ने सुरंग और साबात बनानेवालों को जी खोलकर रुपया दिया। दो सुरंगें क़िले की तलहटी तक पहुंचाई गईं; एक में १२०

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० २, पृ० ४६६-६७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ७५-७६।

(२) कोठारियावालों का पूर्वज।

(३) ऐसा प्रसिद्ध है कि अकबर ने डोडिया सांडा की बातों से प्रसन्न होकर उसे कुछ मांगने को कहा और बहुत आग्रह करने पर उसने यही कहा कि जब मैं युद्ध में मरूं तो बादशाह मुझे जलवा दें। कहते हैं कि अपना वचन निबाहने के लिये अकबर ने युद्ध में मरे हुए सब राजपूतों को जलवा दिया था।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६७।

(५) तारीख़े अल्फ़ी-इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, जि० ५, पृ० १७१-७३।

मन और दूसरी में ८० मन बारूद भरी गई। ता० १५ जमादिउस्सानी बुधवार (माघ वदि १ वि० सं० १६२४=१७ दिसम्बर ई० स० १५६७) को एक सुरंग उड़ाई गई जिससे ५० राजपूतों सहित किले की एक बुर्ज़ उड़ गई; तब शाही फ़ौज किले में घुसने लगी, इतने में अचानक दूसरी सुरंग भी उड़ गई, जिससे शाही फ़ौज के २०० आदमी मर गये। सुरंग के इस विस्फोट का धड़ाका ५० कोस तक सुनाई दिया। राजपूतों ने चित्तोड़ की बुर्ज़े, जो गिर गई थी, फिर बना ली[1]। उसी दिन बीकाखोह व मोर मगरी की तरफ़ आसफ़खां ने तीसरी सुरंग उड़ाई, जिससे केवल ३० आदमी मरे। अब तक युद्ध में कोई सफलता न हुई, कई बार तो अकबर मरते मरते बचा; एक गोली उसके पास तक पहुंची, परन्तु उससे पासवाला आदमी ही मरा। अन्त में राजा टोडरमल और कासिमखां मीर की देखरेख में साबात बनकर तैयार हो गया। दो रात और एक दिन तक दोनों सेनाएं लड़ाई में इस तरह लगी रहीं कि खाना-पीना भी भूल गई। शाही फ़ौज ने कई जगह क़िले की दीवार तोड़ डाली, परंतु राजपूतों ने उन स्थानों पर तेल, रुई, कपड़ा, बारूद इत्यादि जलाकर शत्रु को भीतर आने से रोका। एक दिन अकबर ने देखा कि एक राजपूत दीवार की मरम्मत कराने के लिये इधर-उधर घूम रहा है; उसपर उसने अपनी संग्राम नामक बंदूक से गोली चलाई, जिससे वह घायल हो गया[2]।

दीर्घ काल के अनन्तर दुर्ग में भोजन-सामग्री समाप्त होने पर राठोड़ जयमल मेड़तिये ने सब सरदारों को एकत्र करके कहा कि अब किले में भोजन का सामान नहीं रहा है, इसलिये जौहर कर दुर्ग-द्वार खोल दिये जावें और अब सब राजपूतों को बहादुरी से लड़कर वीर गति को पहुंचना चाहिये। यह सलाह सबको पसन्द आई और उन्होंने अपनी अपनी स्त्रियों और बच्चों को जौहर करने की आज्ञा दे दी। क़िले में पत्ता सिसोदिया, राठोड़ साहिबखान और ईसरदास चौहान की हवेलियों में जौहर की धधकती हुई अग्नि को देख-

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६८।

(२) वही, जि० २, पृ० ४६९-७२।

अबुलफ़ज़ल इस गोली से जयमल के मारे जाने का उल्लेख करता है, जो विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि वह अकबर की गोली से लँगड़ा हुआ था और अन्तिम दिन लड़ता हुआ मारा गया था, जैसा कि आगे पृ० ७२८ में बतलाया गया है।

कर अकबर बहुत विस्मित हुआ, तब भगवानदास (आंबेरवाले) ने उसे कहा कि जब राजपूत मरने का निश्चय कर लेते हैं, तो अपनी स्त्रियों और बच्चों को जौहर की अग्नि में जलाकर शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं, इसलिये अब सावधान हो जाना चाहिये, कल किले के दरवाज़े खुलेंगे[1]।

दूसरे दिन सुबह होते ही शाही फौज ने किले पर हमला किया और राजपूतों ने भी दुर्ग-द्वार खोलकर घोर युद्ध किया। बादशाह की गोली लगने के कारण जयमल लँगड़ा हो गया था, इसलिये उसने कहा कि मैं पैर टूट जाने के कारण घोड़े पर नहीं चढ़ सकता, परन्तु लड़ने की इच्छा तो रह गई है। इसपर उसके कुटुंबी कल्ला ने उसे अपने कन्धे पर बिठाकर कहा कि अब लड़ने की (अपनी) आकांक्षा पूरी कर लीजिये। फिर वे दोनों नंगी तलवारें हाथ में लेकर लड़ते हुए हनुमान पोल और भैरव पोल के बीच में काम आये, जहां उन दोनों के स्मारक बने हुए हैं। डोडिया सांडा घोड़े पर सवार होकर शत्रु-सेना को काटता हुआ गंभीरी नदी के पश्चिमी किनारे पर मारा गया[2]। इस तरह राजपूतों का प्रचण्ड आक्रमण देखकर अकबर ने कई सजाये हुए हाथियों को सूंडों में खांडे पकड़ाकर आगे बढ़ाया। कई हजार सवारों के साथ अकबर भी हाथी पर सवार होकर किले के भीतर घुसा। ईसरदास चौहान[3] ने एक हाथ से अकबर के हाथी का दांत पकड़ा और दूसरे से सूंड पर खंजर मारकर कहा कि गुणग्राहक[4] बादशाह को मेरा मुजरा पहुंचे। इसी तरह राजपूतों ने कई हाथियों के दांत तोड़ डाले और कइयों की सूंडें काट डालीं, जिससे कई हाथी वहीं मर गये और बहुतसे दोनों तरफ़ के सैनिकों को कुचलते हुए भाग निकले। पत्ता चूंडावत (जग्गावत) बड़ी बहादुरी से लड़ा, परन्तु एक हाथी ने उसे सूंड से पकड़कर पटक दिया, जिससे वह

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जिल्द २, पृ० ४७२।

(२) वीरविनोद, भाग २, पृ० ८०-८१।

(३) बेदलेवालों के पूर्वज राव संग्रामसिंह का छोटा भाई।

(४) ऐसी प्रसिद्धि है कि ईसरदास की वीरता देखकर बादशाह अकबर ने एक दिन उसको अपने पास बुलाया और जागीर का लालच देकर अपना सेवक बनाना चाहा, परन्तु उस समय वह यह कहकर चला गया कि मैं फिर कभी आपके पास उपस्थित होकर मुजरा करूंगा। उसी वचन को निभाने के लिये उसने बादशाह को गुणग्राहक कहकर यहीं मुजरा किया।

सूरज पोल के भीतर मर गया[1]। रावत साईंदास, राजराणा जैता सज्जावत, राजराणा सुलतान आसावत, राव संग्रामसिंह, रावत साहिबखान, राठोड़ नेतसी आदि राजपूत सरदार मारे गये[2]। सेना के अतिरिक्त प्रजा का भी बहुत विनाश हुआ, क्योंकि युद्ध में उसने भी पूरा भाग लिया था, इसलिये अकबर ने क़त्ले-आम की आज्ञा दी थी। हि० स० ६७५ ता० २६ शाबान (वि० सं० १६२४ चैत्र वदि ११ = ता० २५ फ़रवरी ई० स० १५६८) को दोपहर के समय अकबर ने किले पर अधिकार कर लिया और तीन दिन वहां रहकर अब्दुल मजीद आसफ़खां को किले का अधिकारी नियत कर वह अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ[3]। जयमल और पत्ता की वीरता पर मुग्ध होकर अकबर ने आगरे जाने पर हाथियों पर चढ़ी हुई उनकी पाषाण की मूर्तियां बनवाकर किले के द्वार पर खड़ी करवाई[4]। पहाड़ों में चार मास रहकर महाराणा रहे-सहे राजपूतों के साथ उदयपुर आया

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४७३-७५।

(२) वीरविनोद, भाग २, पृ० ८१; और ख्यातें।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि जो राजपूत यहां मारे गये उनके यज्ञोपवीत तोलने पर ७४॥ मन हुए। तभी से व्यापारियों की चिट्ठियों पर प्रारंभ में ७४॥ का अंक इस अभिप्राय से लिखा जाता है कि यदि कोई अन्य पुरुष उनको खोल ले तो उसे चित्तोड़ के उक्त संहार का पाप लगे (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८३)। यह कथन कल्पित है; न तो चित्तोड़ पर मरे हुए राजपूतों के यज्ञोपवीतों का तोल इतना हो सकता है और न उक्त अंक से चित्तोड़ के संहार के पाप का अभिप्राय है। उस अंक के लिये भिन्न भिन्न विद्वानों ने जो भिन्न भिन्न कल्पनाएं की हैं, वे भी मानने योग्य नहीं हैं। प्राचीन काल में किसी भी लेख के प्रारंभ करने से पूर्व बहुधा 'ॐ' लिखा जाता था, जैसा आजकल श्रीगणेशाय नमः, श्री रामजी आदि। प्राचीन काल में 'ओं' का सांकेतिक चिह्न हिन्दी के वर्तमान ७ के अंक के समान था (भारतीय प्राचीनलिपिमाला, लिपिपत्र १६, २०, २२, २३)। पीछे से उसके भिन्न भिन्न परिवर्तित रूपों के पास शून्य भी लिखा जाने लगा (वही, लिपिपत्र २७), जो जल्दी लिखे जाने से कालान्तर में ४ की शकल में पलट गया। उसके आगे विराम की दो खड़ी लकीर लगाने से ७४॥ का अंक बन गया है, जो प्राचीन 'ओं' का ही सूचक है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों तथा जैनों, बौद्धों की हस्तलिखित पुस्तकों आदि के प्रारंभ में बहुधा 'ओं' अक्षर लिखा हुआ मिलता है।

(३) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० २, पृ० ४७५-७६।

(४) ये मूर्तियां वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) तक विद्यमान थीं और फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने भी इन्हें देखा था (बर्नियर्स ट्रैवल्स, पृ० २५६-स्मिथ-संपादित)। पीछे से संभवतः औरंगज़ेब ने इन्हें धर्मद्वेष के कारण तुड़वा दिया हो।

और अपने महलों को, जो अधूरे पड़े थे, पूरा कराया[1]।

अकबर का रणथंभोर लेना

चित्तोड़ की विजय से एक साल बाद अकबर ने महाराणा के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग रणथंभोर[2] को, जहां का क़िलेदार राव सुरजन हाड़ा था, विजय करने के लिये आसफ़ख़ां को सैन्य सहित भेजा, परन्तु फिर उसे मालवे पर भेजकर स्वयं बड़ी सेना के साथ ता० १ रज्जब हि० स० ९७६ (पौष सुदि २ वि० सं० १६२५=२० दिसम्बर ई० स० १५६८) को रणथम्भोर की ओर रवाना हुआ। अबुल्फ़ज़ल का कथन है—'वह मेवात और अलवर होता हुआ ता० २१ शाबान हि० स० ९७६ (फाल्गुन वदि ८ वि० सं० १६२५=८ फ़रवरी ई० स० १५६९) को वहां पहुंचा[3]। किला बहुत ऊंचा होने से उसपर मंजनीक[4] (मकरी यन्त्र) काम नहीं दे सकते थे। तब बादशाह ने रण[5] की पहाड़ी का

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३।

(२) मालवे के अन्य प्रान्तों के साथ रणथंभोर का क़िला भी विक्रमादित्य के समय बहादुरशाह की पहली चढ़ाई की शर्तों के अनुसार उक्त सुलतान को सौंप दिया गया था। उसका सेनापति तातारख़ां वहीं से हुमायूं पर चढ़ा था। बहादुरशाह के मारे जाने पर गुजरात की अव्यवस्था के समय यह क़िला शेरशाह सूर के अधिकार में आ गया। शेरशाह के पीछे सूरवंश की अवनति के समय महाराणा उदयसिंह ने उधर के दूसरे इलाक़ों के साथ यह क़िला भी अपने अधिकार में कर लिया (तबक़ात अकबरी—इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० २६०)। फिर उसने सुरजन को वहां का क़िलेदार नियत किया था (देखो पृ० ७१८, टि० ४)।

(३) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४८९-९०।

(४) प्राचीन काल के युद्धों में पत्थर फेंकने का एक यंत्र काम में आता था, जिसे संस्कृत में मकरी यंत्र, फ़ारसी में मंजनीक और अंग्रेज़ी में Catapult कहते थे। तोपों के उपयोग से पूर्व यह यंत्र क़िले आदि में पत्थर बरसाने का मुख्य साधन समझा जाता था। इससे फेंके हुए बड़े बड़े गोलों के द्वारा दीवारें तोड़ी जाती थीं और निशाने भी लगाये जाते थे। चित्तोड़, रणथंभोर, जूनागढ़ आदि के क़िलों में कई जगह पत्थर के कुछ छोटे और बड़े गोले हमारे देखने में आये। बड़े से बड़े गोलों का वज़न अनुमान मन भर होगा। क़िलों में ऐसे गोलों का संग्रह रहा करता था। जूनागढ़ के क़िले में ऐसे गोलों से भरे हुए तहख़ाने भी देखे।

(५) रणथंभोर का क़िला अंडाकृतिवाले एक ऊंचे पहाड़ पर बना है, जिसके प्रायः चारों ओर अन्य ऊंची ऊंची पहाड़ियां आ गई हैं, जिनको इस क़िले की रक्षार्थ कुदरती बाहरी दीवार कहें, तो अनुचित न होगा। इन पहाड़ियों पर खड़ी हुई सेना शत्रु को दूर रखने में समर्थ हो सकती है। इनमें से एक पहाड़ी का नाम रण है, जो क़िले की पहाड़ी से कुछ नीची है और क़िले तथा उसके बीच बहुत गहरा खड्डा होने से शत्रु उधर से तो दुर्ग पर पहुंच ही नहीं सकता।

निरीक्षण किया, किले पर घेरा डाला[1], मोर्चेबन्दी की और तोपों का दागना शुरू हुआ[2]। रण की पहाड़ी तक एक ऊंचा साबात बनवाकर पहाड़ी पर तोपें चढ़ाई गईं और वहां से किले पर गोलंदाज़ी शुरू की[3], जिससे किले की दीवारें टूटने और मकान गिरने लगे। उस दिन रमज़ान का आख़िरी दिन था और दूसरे दिन ईद थी। बादशाह ने कहा कि यदि क़िलेवाले आज शरण न हुए तो कल क़िले पर हमला किया जायगा[4]।

राजा भगवानदास कछवाहा[5] और उसके पुत्र मानसिंह तथा अमीरों के बीच में पड़ने से राव ने अपने कुंवर दूदा और भोज को बादशाह के पास भेजा। अकबर ने ख़िलअत देकर उन्हें उनके पिता के पास लौटा दिया। सुरजन ने भी यह इच्छा प्रकट की कि यदि बादशाह का कोई दरबारी मुझे लेने को आवे, तो मैं उपस्थित हो जाऊं। उसकी इच्छानुसार उसे लाने के लिये हुसेन कुलीख़ां भेजा गया, जिसपर उसने ता० ३ शव्वाल हि० स० ९७६ (चैत्र सुदि ४ वि० सं० १६२६=२१ मार्च ई० स० १५६९) को बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर मुजरा किया

(१) चित्तोड़ के क़िले को घेर लेना तो सहज है, परन्तु रणथंभोर को घेरना ऐसा कठिन कार्य है, कि बहुत बड़ी सेना के बिना नहीं हो सकता।

(२) अकबरनामे में अबुल्फ़ज़ल ने लिखा है कि जिन तोपों को समान भूमि पर बैलों की दो सौ जोड़ियां भी कठिनाई से खींच सकती थीं और जिनसे साठ साठ मन के पत्थर तथा तीस तीस मन के गोले फेंके जा सकते थे, वे बहुत ऊंची तथा खड्डों और घुमाववाली रण की पहाड़ी पर कहारों के द्वारा चढ़ाई गईं (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० ४९४)। यह सारा कथन कल्पित ही है। जिन्होंने रण की पहाड़ी देखी है, वे इस कथन की अप्रामाणिकता अच्छी तरह समझ सकते हैं। अकबर के समय में ऐसी तोपें न थीं, जो साठ मन के पत्थर या तीस मन के गोले फेंक सकें और जिनको चार चार सौ बैल भी समान भूमि पर कठिनता से खींच सकें, ऐसी तोपों का उस समय की दशा देखते हुए कहारों द्वारा उक्त पहाड़ी पर चढ़ाया जाना माना ही नहीं जा सकता।

(३) यदि रण की पहाड़ी पर तोपें चढ़ाई गई हों, तो वे बहुत छोटी होनी चाहियें। रण की पहाड़ी का भी हस्तगत करना बहुत ही कठिन काम था। वहां से तोपों के गोले फेंकने की बात भी ऊपर के (टिप्पणवाले) कथन की तरह कल्पित ही प्रतीत होती है। वास्तव में उस क़िले पर घेरा डाला गया, परन्तु बिना लड़े ही राव सुरजन ने उसे अकबर को सौंप दिया था।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४९४।

(५) टॉ; रा; जि० ३, पृ० १४८१। मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र २७, पृ० २।

और किले की चाबियां उसे दे दीं। तीन दिन बाद किले से अपना सामान निकाल-कर उसने किला मेहतरखां के सुपुर्द कर दिया[1]। राव सुरजन ने महाराणा की सेवा छोड़कर[2] बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली, जिसपर वह गढ़कटंगा का किलेदार बनाया गया और पीछे से चुनार के किले का हाकिम नियत हुआ[3]।

अमरकाव्य और महाराणा उदयसिंह

महाराणा उदयसिंह के पौत्र अमरसिंह के समय के बने हुए अमरकाव्य की एक अपूर्ण प्रति मिली है, जिसमें उदयसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली नीचे लिखी बातें पाई जाती हैं, जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। उसने पठानों से अजमेर छीनकर राव सुरताण (बूंदी का) को दिया; आंबेर के राजा भारमल ने अपने पुत्र भगवानदास को उसकी सेवा में भेजा। रावत साईदास को गंगराड़, भैंसरोड़, बड़ोद और बेगम (बेगूं); ग्वालि-यर के राजा रामसाह तंवर[4] को बारांदसोर, मेड़ते के राठोड़ जयमल को १०००(?) गांव सहित बदनोर और राव मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह को १०० गांव समेत

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६४–६५।

(२) राव देवीसिंह के समय से लेकर सुरजन तक बूंदी के स्वामी मेवाड़ के राणाओं के अधीन रहे और जब कभी किसी ने स्वतन्त्र होने का उद्योग किया तो उसका दमन किया गया, जैसा कि ऊपर कई जगह बतलाया जा चुका है। पहले पहल राव सुरजन ने मेवाड़ की अधी-नता छोड़कर बादशाही सेवा स्वीकार की थी। कर्नल टॉड ने राव सुरजन के बिना लड़े रणथम्भोर का किला बादशाह को सौंप देने के विषय में जो कुछ लिखा है, वह बूंदी के भाटों की ख्यात से लिया हुआ होने के कारण अधिक विश्वासयोग्य नहीं है। किला सौंपने में जिन शर्तों का बादशाह से स्वीकार कराना लिखा है, वे भी मानी नहीं जा सकतीं; क्योंकि ऐसा कोई सुल-हनामा बूंदी में पाया नहीं जाता और कुछ शर्तें तो ऐसी हैं, जिनका उस समय होने का विचार भी नहीं हो सकता (ना० प्र० प; भाग २, पृ० २५८–६७)। मुहणोत नैणसी के समय तक तो ये शर्तें ज्ञात नहीं थीं। उसने तो यही लिखा है कि सुरजन ने इस शर्त के साथ गढ़ बादशाह के हवाले किया कि 'मैंने राणा की दुहाई दी है, इसलिये उसपर चढ़कर कभी नहीं जाऊंगा" (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)। आगे चलकर नैणसी ने यहां तक लिखा है कि अकबर ने हाथियों पर चढ़ी हुई जयमल और पत्ता (जिन्होंने चित्तोड़ की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग किया था) की मूर्तियां बनवाकर आगरे के किले के द्वार पर खड़ी करवाईं और सुरजन की मूर्ति कूकर (कुत्ते) की-सी बनवाई, जिससे वह बहुत लज्जित हुआ और काशी में जाकर रहने लगा (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)।

(३) ब्लॉकमैन: आइने अकबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० ४०९।

(४) रामसाह ग्वालियर के तंवर राजा विक्रमादित्य का पुत्र था। अकबर के सेनापति

कैलवे का ठिकाना दिया। खीचीवाड़े और आबू के राजा उसकी सेवा में रहते थे[1]।

महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर बसाना आरंभ कर महलों का कुछ अंश[2] और पीछोला तालाब के पश्चिमी तट के एक ऊंचे स्थान पर उदयश्याम[3] का मंदिर बनवाया। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५६) से उसने उदयसागर तालाब बनवाना शुरू किया, जिसकी समाप्ति वि० सं० १६२१ में हुई।

महाराणा उदयसिंह के बनवाये हुए महल, मंदिर और तालाब

चित्तोड़ छूटने के बाद महाराणा बहुधा कुंभलगढ़ में रहा करता था, क्योंकि उदयपुर शहर पूरी तरह से बसा न था। वि० सं० १६२८ में वह कुंभलगढ़ से गोगूंदा गांव में आया और दसहरे के बाद बीमार होने के कारण फाल्गुन सुदि १५ (२८ फ़रवरी ई० स० १५७२) को वहीं उसका देहान्त हुआ, जहां उसकी छत्री बनी हुई है।

महाराणा का देहान्त

बड़वे की ख्यात में महाराणा उदयसिंह के २० राणियों से २५ कुंवरों—प्रतापसिंह, शक्तिसिंह[4], वीरमदेव[5], जैतसिंह, कान्ह, रायसिंह, शार्दूलसिंह, रुद्र-

---

इकबालखां से हारने पर वह अपने तीन पुत्रों (शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह) सहित महाराणा उदयसिंह की सेवा में आ रहा था (हिन्दी टॉड राजस्थान; प्रथम खण्ड, पृ० ३४२-४३)।

(१) मूल पुस्तक; पत्र ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८७। अमरकाव्य का उपलब्ध अंश उदयपुर के इतिहास-कार्यालय में विद्यमान है, परन्तु इस इतिहास के लिखते समय हमें वह प्राप्त न हो सका, अतएव वीरविनोद से ही उपर्युक्त अवतरण लिया गया है।

(२) नौचौकी महिल पानेड़ा, रायआंगण, नेका की चौपाड़, पांडे की ओवरी और ज़नाना रावला (जिसको अब कोठार कहते हैं) उदयसिंह के बनवाये हुए हैं। उसकी एक राणी झाली ने चित्तोड़ में पाडल पोल के निकट एक बावडी बनवाई, जो झाली की बावड़ी नाम से प्रसिद्ध है।

(३) मुहणोत नैणसी लिखता है कि राणा राव सुरजन सहित द्वारिका की यात्रा को गया। उस समय रणछोड़जी का मन्दिर बहुत साधारण अवस्था में था; राव सुरजन ने दीवाण (राणा) से आज्ञा लेकर नया मन्दिर बनवाया, जो अब तक विद्यमान है (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)।

(४) शक्तिसिंह से शक्तावत नामक सिसोदियों की प्रसिद्ध शाखा चली। उसके वंश में भींडर और बानसी के ठिकाने प्रथम श्रेणी के, बोहेड़ा, पीपल्या और विजयपुर दूसरी श्रेणी के सरदारों में और तीसरी श्रेणी के सरदारों में हींता, सेमारी, रूंद आदि कई ठिकाने हैं। शक्तों का मुख्य वंशधर भींडर का महाराज है।

(५) वीरमदेव के वंश में द्वितीय श्रेणी के सरदारों में हमीरगढ़, खैराबाद, महुआ, सनवाड़ आदि ठिकाने हैं।

महाराणा उदयसिंह की सन्तति

सिंह, जगमाल[1], सगर[2], अगर[3], सीया[4], पंचायण, नारायणदास, सुरताण, लूणकरण, महेशदास, चंदा, भावसिंह, नेतसिंह, सिंहा, नगराज[5], वैरिशाल, मानसिंह और साहिबखान—तथा २० लड़कियों[6] के होने का उल्लेख है।

उदयसिंह एक साधारण राजा हुआ—न वह बड़ा वीर था और न राजनीतिज्ञ। प्रारंभिक जीवन विपत्तियों में बीतने पर भी उसने उससे कोई विशेष शिक्षा न ली। अकबर ने राजपूतों के गर्व और गौरव रूप चित्तोड़ के क़िले पर आक्रमण किया, उस समय ४६ वर्ष का होने पर भी वह अपने राज्य की रक्षार्थ, क्षत्रियोचित वीरता के साथ रण में प्राण देने का साहस न कर, पहाड़ों में जा रहा। वह विलासप्रिय और विषयी था। हाजीखां पठान को विपत्ति के समय उसने सहायता दी, जिसके बदले में उससे उसकी प्रेयसी (रंगराय) मांगकर उसने अपनी लम्पटता का परिचय दिया। अन्तिम समय अपनी प्रेमपात्री महाराणी भटियाणी के पुत्र जगमाल को, जो राज्य का अधिकारी नहीं था, अपना उत्तराधिकारी बनाने का प्रपञ्च रचकर उसने अपनी विवेकशून्यता प्रकाशित की।

महाराणा उदयसिंह का व्यक्तित्व

इन सब बातों के होते हुए भी वह विक्रमादित्य से अच्छा था, चित्तोड़ से दूर पहाड़ों से सुरक्षित प्रदेश में उदयपुर बसाकर उसने दूरदर्शिता का परिचय

(१) जगमाल अकबर की सेवा में जा रहा। उसका परिचय आगे दिया जायगा।

(२) यह भी बादशाही सेवा में जा रहा, जिसका वृतान्त आगे प्रसंगवशात् आयगा। इसके वंशज मध्यभारत के उमटवाड़े में उमरी, भदोड़ा और गणेशगढ़ के स्वामी हैं।

(३) अगर के वंशज अगरावत कहलाये।

(४) सीया के वंशज सीयावत कहलाये।

(५) नगराज को मगरा ज़िले में झाडोल (सलूंबर के ठिकाने के अन्तर्गत) के आसपास का इलाक़ा जागीर में मिला हो; ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि उसका स्मारक वहीं बना हुआ है, जिसपर के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १६५२ माघ वदि ७ को उसका देहान्त झाडोल गांव मे हुआ। उसके साथ सात स्त्रियां और दो खवास (उपपत्नियां) सती हुईं, जिनके नाम उक्त लेख में खुदे हुए हैं।

(६) इन बीस पुत्रियों में से हरकुंवरबाई का विवाह सिरोही के स्वामी उदयसिंह (रायसिंह के पुत्र) के साथ हुआ था और वह अपने पति के साथ सती हुई थी।

दिया और विक्रमादित्य के समय गये हुए इलाक़ों में से कुछ फिर अपने अधिकार में कर लिये।

प्रतापसिंह

वीरशिरोमणि प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह का, जो भारत भर में राणा प्रताप के नाम से सुप्रसिद्ध है, जन्म वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि ३ रविवार (ता० ९ मई ई० स० १५४०) को सूर्योदय से ४७ घड़ी १३ पल गये हुआ था[1]।

अपनी राणी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण महाराणा उदयसिंह ने उसके पुत्र जगमाल को अपना युवराज बनाया था[2]। सब सरदार उदयसिंह की दाहक्रिया करने गये, जहां ग्वालियर के राजा रामसिंह ने जगमाल को वहां न पाकर कुंवर सगर से पूछा कि वह कहां है? सगर ने उत्तर दिया, क्या आप नहीं जानते कि स्वर्गीय महाराणा उसको अपना उत्तराधिकारी[3] बना गये हैं? इसपर अखैराज सोनगरे ने रावत कृष्णदास[4] और सांगा[5] से कहा कि आप चूंडा के वंशधर हैं, अतएव यह काम आपकी ही सम्मति से होना चाहिये था[6]। बादशाह अक-

प्रतापसिंह का राज्य पाना

(१) हमारे पासवाले ज्योतिषी चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में महाराणा प्रताप की जन्मपत्री विद्यमान है। उसी के आधार पर उक्त तिथि दी गई है। वीरविनोद में वि० सं० १५९६ ज्येष्ठ सुदि १३ दिया है, जो राजकीय (श्रावणादि) होने से चैत्रादि संवत् १५९७ होना चाहिये; परन्तु तिथि तेरस नहीं किन्तु तृतीया थी, क्योंकि उसी दिन रविवार था, तेरस को नहीं। उक्त तिथि को शुद्ध मानने का दूसरा कारण यह भी है कि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र था, न कि तेरस के दिन। जन्मकुंडली में चन्द्रमा मिथुन राशि पर है, जिससे आर्द्रा नक्षत्र में उसका जन्म होना निश्चित है।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८६।

(३) मेवाड़ में यह रीति है कि राजा का उत्तराधिकारी उसकी दाहक्रिया में नहीं जाता।

(४) कृष्णदास (किशनदास) चूंडा का मुख्य वंशधर और सलूंबरवालों का पूर्वज था; उससे चूंडावतों की किशनावत (कृष्णावत) उपशाखा चली।

(५) रावत सांगा चूंडा के पुत्र कांधल का पौत्र तथा देवगढ़वालों का पूर्वज था। उसी से चूंडावतों की सांगावत उपशाखा चली।

(६) जब से चूंडा ने अपना राज्याधिकार छोड़ा तभी से "पाट" (राज्य) के स्वामी

घर जैसा प्रबल शत्रु सिर पर है, चित्तोड़ हाथ से निकल गया है, मेवाड़ उजड़ रहा है ऐसी दशा में यदि यह घर का बखेड़ा बढ़ गया तो राज्य नष्ट होने में क्या सन्देह है। रावत कृष्णदास और सांगा ने कहा कि ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह ही, जो सब प्रकार से योग्य है, महाराणा होगा। इस विचार के अनन्तर महाराणा की उत्तर-क्रिया से लौटकर सब सरदारों ने उसी दिन प्रतापसिंह को राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया और जगमाल से कहा कि आपकी बैठक गद्दी के सामने है, अतएव आपको वहां बैठना चाहिये। इसपर अप्रसन्न होकर जगमाल वहां से उठकर चला गया और सब सरदारों ने प्रतापसिंह को नज़राना किया। फिर महाराणा प्रताप गोगूंदे से कुंभलगढ़ गया, जहां उसके राज्याभिषेक का उत्सव हुआ[1]।

जगमाल का अकबर के पास पहुंचना

वहां से सपरिवार चलकर जगमाल जहाज़पुर गया तो अजमेर के सूबेदार ने उसको वहां रहने की आज्ञा दी। वहां से वह बादशाह अकबर के पास पहुंचा और अपना सारा हाल कहने पर बादशाह ने जहाज़पुर का परगना उसको जागीर में दे दिया[2]।

इन दिनों सिरोही के स्वामी देवड़ा सुरताण और उसके कुटुंबी देवड़ा बीजा में परस्पर अनबन हो रही थी। ऐसे में बीकानेर का महाराजा रायसिंह सोरठ जाता हुआ सिरोही राज्य में पहुंचा। सुरताण और देवड़ा बीजा, दोनों रायसिंह से मिले और उससे अपनी अपनी सहायता करने के लिये कहा। महाराजा ने सुरताण से कहा कि यदि आप अपना आधा राज्य बादशाह अकबर को दे दें, तो मैं बीजा देवड़ा को यहां से निकाल दूं। सुरताण ने यह बात स्वीकार कर ली और बादशाह ने सिरोही का आधा राज्य जगमाल को दे दिया। इस प्रकार एक म्यान में दो तलवारों की तरह सिरोही में दो राजा राज्य करने लगे, जिससे उनमें परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया, इसपर जगमाल बादशाह के पास पहुंचा

महाराणा और "ठाट" (राज्यप्रबन्ध) के अधिकारी चूंडा तथा उसके मुख्य वंशधर माने जाते थे। "भोजगड" (राज्यप्रबन्ध) आदि का काम उन्हीं की सम्मति से होता चला आता था। इसी से अखैराज सोनगरे ने चूंडा के वंशजों से यह बात कही थी।

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० १४६।

(२) वही; भाग २, पृ० १४६।

careful and illuminating work. I am much pleased to see that you do not share the opinion of Vincent Smith about the origin of the Rajputs. I have never been able to see the force of the arguments adduced by Vincent Smith and Bhandarkar What I have seen of the Rajputs has strengthened me in my belief that they are the inheritors of the civilization of the Vedic Aryans.

Professor E. J. Rapson, M. A., University of Cambridge.

Allow me to congratulate you on the appearance of this first portion of your great work.

The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, July 1926.

This large volume is the first instalment of an ambitious project, a very voluminous history of Rajputana in six or seven similar volumes, based on the latest archæological and epigraphical research, which may serve to correct, amplify and bring up to date the historical material collected by Colonel Tod for his well-known *Annals and Antiquities of Rajasthan......* Tod's famous book is now nearly a century old, and most of his accounts are based upon local traditions and bardic sources, the reliability of which cannot be rated very high. The writer of the present book is well-qualified by life-long work connected with Rajputana, by prolonged researches into the subject of the history of the Rajputs, and also by the study of epigraphical materials, to deal with the subject which he has chosen for his *magnum opus.......* I am inclined to the opinion that it will be found to be of considerable value, being based upon a foundation of learning, industry, and sobriety of judgment.......

H. H. Raja Sir Ram Singhji Bahadur, K. C. I. E., Sitamau (Central India).

You have rendered a great service indeed to the Rajput community by successfully refuting the attacks made upon it, on the strength of the cold logic of facts by indifferent writers. I note with pleasure that this work is comprehensive and embodies the result of your scholarly searching and impartial study for

the whole life. This will have made up the deficiency, that has for so long been felt, of a trustworthy and an authoritative account of my community.

Mahamahopadhyaya Dr. Ganga Nath Jha, M. A., C. I. E., Vice-Chancellor, University of Allahabad.

I shall read it with the greatest interest and, I feel sure, with the greatest profit. It is wonderful how you can even at this advanced age of yours carry on such important and laborious work

Prof A. B. Dhruva, M. A., LL. B., Pro-Vice-Chancellor, Benares Hindu University.

.... Rajasthan which Col. Tod wrote was based on bardic tales and like the Rāsamālā (Forbes') of Gujrat, it lacked the qualities which go to make a truly reliable record of historical facts. I am glad you, who have had such splendid opportunities to study the subject, have decided to work upon the materials you have so assiduously collected. I have no doubt it will be a great service to the motherland ....

आवश्यक सूचना

इस खंड के साथ राजपूताने के इतिहास की पहली जिल्द से संबंध रखनेवाले १८ चित्र अलग लिफ़ाफ़े में भेजे जाते हैं, जिनको पाठकगण भूमिका के साथ पृ० ५६ में दी हुई चित्र-सूची के अनुसार यथास्थान लगाकर पहली जिल्द (जो ५४८वें पृष्ठ में समाप्त हुई है) बँधवा लें। दूसरी जिल्द से संबन्ध रखनेवाले चित्र आदि उसकी समाप्ति पर भेजे जावेंगे।

इतिहास-प्रेमियों से निवेदन है कि हमारे इस इतिहास का प्रथम खंड कई मास से अप्राप्य हो गया है और दूसरे खंड की भी केवल उतनी ही प्रतियां छापी गई हैं, जितनी पहले खंड की। हिन्दी-प्रेमियों की मांग बराबर आ रही है, अतएव पहली पूरी जिल्द का परिशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होगा। जो महाशय उसके ग्राहक बनना चाहें, वे अपना नाम और पूरा पता (डाकखाने के नाम सहित) शीघ्र लिख भेजने की कृपा करें, ताकि उनके नाम नवीन संस्करण की ग्राहक-श्रेणी में दर्ज किये जा सकें।